# Führer durch die Opern

220

OPERNTEXTE

ihrem Inhalte nach

wiedergegeben

HAROLD B. LEE LIBRARY
BRIGHAM YOUNG UNIVERSITY
PROVO, UTAH

MT
95
M42
1901

# Führer

durch die

# OPERN.

---

## 220 Operntexte

nach Angabe des Inhalts, der Gesänge, des Personals und Szenenwechsels.

---

Herausgegeben

von

**Leo Melitz**

Direktor des Stadttheaters zu Basel.

---

Bis zur Gegenwart ergänzt von Henning von Koß.

---

Neue verbesserte und vermehrte Auflage.

Berlin W.

Globus Verlag G. m. b. H.

HAROLD B. LEE LIBRARY
BRIGHAM YOUNG UNIVERSITY
PROVO, UTAH

# Vorwort.

Veranlaßt durch das vielfach an uns herangetretene Verlangen nach einem billigen und handlichen Opernführer, haben wir einen im praktischen Theaterleben wirkenden Schriftsteller mit der Abfassung des vorliegenden Werkes betraut.

Es unterliegt wohl keinen Zweifel, daß jeder Opernbesucher und jeder, der sich über den textlichen Inhalt einer Oper zu orientieren wünscht, erfreut sein wird, einen leicht faßlichen und übersichtlichen Plan in die Hand zu bekommen. Das ist es, was den vorliegenden Opernführer von anderen unterscheidet, daß er in kürzesten Worten einen klaren Bericht der Handlung bringt, die man kennen zu lernen wünscht.

Genaue Angabe der handelnden Personen, mit Beifügung der Gesangsstimme, des Dekorationen- und Szenenwechsels (welche in den üblichen Textbüchern nicht enthalten ist), ermöglichen einen genauen Ueberblick.

Wir haben bei der Aufnahme sämtlicher im Spielplan der deutschen Bühnen befindlicher Opern den weitesten Begriff angenommen und glauben wohl, daß man unter den 233 Opern des Buches keine vermissen wird, die sich irgendwo dauernd auf dem deutschen Theater erhalten hat.

Schließlich sei noch erwähnt, daß das vorliegende Werk, seit langer Hand vorbereitet, als eine Fortsetzung der in demselben Verlag erschienenen und mit Beifall aufgenommenen „Theaterstücke der Weltlitteratur" zu betrachten ist.

**Die Verlagsbuchhandlung.**

# Vorwort zur zweiten Auflage.

Bei der Herausgabe dieser neuen Ausgabe möge erwähnt werden, daß das populäre und weit verbreitete Werk in Bezug auf Inhalt und Ausstattung wesentlich vermehrt und verbessert worden ist und sich in dieser Gestalt zweifellos viele neue Freunde erwerben wird. —

Berlin 1901.

**Die Verlagsbuchhandlung.**

# Inhalts-Verzeichnis.

## A. Alphabetisch geordnet.


| | Seite |
|---|---|
| A basso porto | 1 |
| Abreise, die | 2 |
| Adlers Horst, des | 2 |
| Afrikanerin, die | 4 |
| Aida | 5 |
| Alceste | 6 |
| Alessandro Stradella | 7 |
| Amelia oder ein Maskenball | 8 |
| Angla | 9 |
| Aennchen von Tharau | 11 |
| Apotheker und Doktor | 12 |
| Armin | 12 |
| Armide | 13 |
| A Santa Lucia | 14 |
| Assarpai | 15 |
| Bajazzi, die | 17 |
| Barbier (der) von Bagdad | 18 |
| Barbier (der) von Sevilla | 19 |
| Bastien und Bastienne | 21 |
| Bärenhäuter (Wagner) | 21 |
| Bärenhäuter (Mendelsohn) | 23 |
| Beatrice und Benedict | 25 |
| Beichte, die | 26 |
| Beiden Schützen, die | 26 |
| Belisar | 27 |
| Belmonte und Konstanze | 28 |
| Benvenuto Cellini | 29 |
| Bettlerin von Pont des Artes, die | 30 |
| Bezähmte Widerspenstige, die | 32 |
| Blitz der | 32 |
| Bohême (Leoncavallo) | 33 |
| Bohême (Puccini) | 34 |
| Capuleti (die) und die Montecchi | 35 |
| Carlo Broschi | 36 |
| Carmen | 36 |
| Catarina Cornaro | 37 |
| Cavalleria rusticana | 38 |
| Cid, der | 39 |
| Cleopatra | 40 |
| Cornelius Schutt | 42 |
| Cortez | 43 |
| Cosi fan tutte | 43 |
| Dalibor | 44 |
| Dämon, der | 46 |
| Delila | 46 |
| Deutsche Michel, der | 48 |
| Dinorah | 49 |
| Djamileh | 50 |
| Doktor und Apotheker | 51 |
| Don Juan | 53 |
| Donna Diana | 55 |
| Don Pasquale | 56 |
| Don Quixote | 57 |
| Dorfbarbier, der | 59 |
| Drei Pintos, die | 60 |
| Ekkehard | 61 |

| | Seite |
|---|---|
| Enoch Arden (Erben) | 62 |
| Enoch Arden (Hansmann) | 62 |
| Enoch Arden (Raimann) | 64 |
| Entführung (die) aus dem Serail | 65 |
| Ernani | 66 |
| Eroberung (die) von Troja | 68 |
| Eugen Onegin | 68 |
| Euryanthe | 70 |
| Evangeliman, der | 72 |
| Evanthia | 73 |
| Faust | 74 |
| Falstaff | 75 |
| Favoritin, die | 77 |
| Feen, die | 78 |
| Feldlager (ein) in Schlesien | 79 |
| Feramors | 80 |
| Ferdinand Cortez | 80 |
| Fidelio | 82 |
| Figaros Hochzeit | 84 |
| Fliegende Holländer, der | 86 |
| Fra Diavolo | 88 |
| Freischütz, der | 90 |
| Freund Fritz | 92 |
| Folkunger, die | 93 |
| Gärtnerin, die | 94 |
| Gasthaus (das) zu Terracina | 94 |
| Geigenmacher v. Cremona | 94 |
| Genoveva | 95 |
| Glöckchen (das) des Eremiten | 96 |
| Glück | 97 |
| Goldene Kreuz, das | 98 |
| Götterdämmerung | 99 |
| Graf Armand | 99 |
| Gringoire | 99 |
| Gudrun | 100 |
| Guntram | 100 |
| Gustav oder der Maskenball | 102 |
| Gwendoline | 103 |
| Haideschacht, der | 164 |
| Hamlet | 105 |
| Hänsel und Gretel | 106 |
| Hans Heiling | 108 |
| Heimliche Ehe, die | 110 |
| Heimchen am Herd, das | 111 |
| Heinrich der Löwe | 111 |
| Hermione | 112 |
| Hexe, die | 113 |
| Hexenlied, das | 114 |
| Hiarne (Bronsart) | 115 |
| Hjarne (Marschner) | 116 |
| Hochzeitsmorgen | 118 |
| Hölzerne Schwert, das | 119 |
| Hugenotten, die | 120 |
| Husar, der | 122 |
| Idomeneus | 123 |
| Indra | 124 |
| Ingwelde | 125 |
| Iphigenia in Aulis | 127 |
| Iphigenia auf Tauris | 128 |
| Iris | 129 |
| Ivanhoe | 131 |
| Jakob und seine Söhne | 133 |
| Jessonda | 134 |
| Johann von Paris | 135 |
| Josef in Egypten | 136 |
| Jüdin, die | 137 |
| Kain | 139 |
| Kirke | 140 |
| König (der) hat's gesagt | 142 |
| Kinder (die) der Haide | 142 |
| Königin (die) von Saba | 143 |
| König (der) von Lahore | 144 |
| Kriegsgefangene (die) | 145 |
| Krondiamanten (die) | 146 |
| Kuß (der) | 147 |
| Lackmé | 150 |
| Landfrieden | 150 |
| Leben (das) für den Zar | 151 |
| Liebestrank, der | 152 |
| Lili Tse | 153 |
| Linda von Chamounix | 154 |
| Lobetanz | 155 |
| Lohengrin | 158 |
| Lucia von Lammermoor | 160 |
| Lucrezia Borgia | 161 |

| | Seite |
|---|---|
| Lustigen Weiber (die) von Windsor | 162 |
| Magd (die) als Herrin | 164 |
| Makkabäer, die | 164 |
| Mala vita | 167 |
| Manon | 166 |
| Manon Lescaut | 167 |
| Mara | 168 |
| Margarete (siehe Faust) | 74 |
| Marie, d. Tocht. d. Regim. | 169 |
| Markt (der) zu Richmond | 170 |
| Martha | 170 |
| Maskenball, der (Auber) | 102 |
| Maskenball, ein (Verdi) | 8 |
| Maurer und Schlosser | 177 |
| Medea | 178 |
| Medici, die | 178 |
| Mefistofele | 180 |
| Meistersinger, die | 181 |
| Meister Roland | 172 |
| Merlin (Goldmark) | 183 |
| Merlin (Rüfer) | 185 |
| Mignon | 185 |
| Mozart und Schikaneder | 186 |
| Mudarra | 174 |
| Nachtlager (das) in Granada | 187 |
| Nachtwandlerin, die | 188 |
| Nero | 189 |
| Nordstern, der | 190 |
| Norma | 191 |
| Nürnberger Puppe, die | 192 |
| Oberon | 192 |
| Odysseus' Heimkehr | 261 |
| Orpheus und Eurydike | 194 |
| Othello (Rossini) | 195 |
| Othello (Verdi) | 196 |
| Parsifal | 197 |
| Pfeifer (der) von Hardt | 200 |
| Pfeiffertag, der | 262 |
| Pique-Dame | 264 |
| Postillon (der) von Lonjumeau | 201 |
| Prinz (der) wider Willen | 267 |
| Prophet (der) | 203 |
| Rautzau, die | 204 |
| Ratbold | 270 |
| Ratcliff, William | 271 |
| Rattenfänger (der) von Hameln | 205 |
| Regina, oder die „Marodeure" | 273 |
| Regimentstochter, die | 169 |
| Rheingold, das | 206 |
| Rienzi | 207 |
| Rigoletto | 208 |
| Ring (der) des Nibelungen | 210 |
| Robert der Teufel | 216 |
| Romeo u. Julia (Bellini) | 218 |
| Romeo u. Julia (Gounod) | 218 |
| Rose (die) von Pontevedra | 219 |
| Rubin (der | 220 |
| Samson u. Delila | 46 |
| Sängerkrieg (der) auf der Wartburg | 225 |
| Schauspieldirektor, der | 221 |
| Schnee, der | 221 |
| Schwarze Domino, der | 222 |
| Siegfried | 223 |
| Silvana | 323 |
| Sizilianische Bauernehre | 38 |
| Somnambula (La) | 188 |
| Steinerne Gast, der | 53 |
| Stradella | 7 |
| Stumme (die) von Portici | 224 |
| Tannhäuser | 225 |
| Tell | 227 |
| Templer und Jüdin | 229 |
| Teufels Anteil, des | 231 |
| Titus | 232 |
| Tochter (die) des Regiments | 166 |
| Traviata (La) | 232 |
| Tristan und Isolde | 234 |
| Trojaner, die | 235 |
| Trojaner (die) in Karthago | 235 |
| Trompeter (der) von Säckingen (Kaiser) | 236 |
| Trompeter (der) von Säckingen (Neßler) | 237 |

| | Seite |
|---|---|
| Troubadour, der | 239 |
| Undine | 241 |
| Unmöglichste von Allem, das | 275 |
| Vampyr, der | 242 |
| Vasall (der von Szigeth | 244 |
| Verkaufte Braut, die | 244 |
| Versunkene Glocke | 278 |
| Vestalin die | 245 |
| Vicomte v. Letorières, der | 280 |
| Violetta | 246 |
| Waffenschmied, der | 246 |
| Waldmädchen, das | 247 |
| Walküre, die | 248 |
| Werther | 281 |
| Widerspenstigen Zähmung, der | 249 |
| Wilhelm Tell | 250 |
| Wasserträger, der | 248 |
| Weiße Dame, die | 257 |
| Wildschütz, der | 253 |
| Zamora | 255 |
| Zampa | 256 |
| Zanetto | 283 |
| Zar und Zimmermann | 257 |
| Zauberflöte, die | 258 |

## B. Nach Komponisten geordnet.


| | Seite |
|---|---|
| Abert: Ekkehard | 61 |
| Adam: Die Nürnberger Puppe | 192 |
| Der Postillon von Lonjumeau | 201 |
| Albert, d': Die Abreise | 2 |
| Kain | 139 |
| Der Rubin | 220 |
| Auber: Fra Diavolo | 88 |
| Gustav oder der Maskenball | 102 |
| Die Krondiamanten | 146 |
| Maurer und Schlosser | 177 |
| Der Schnee | 221 |
| Der schwarze Domino | 222 |
| Die Stumme v. Portici | 224 |
| Des Teufels Anteil | 231 |
| Beethoven: Fidelio | 82 |
| Becker: Ratbold | 270 |
| Bellini: Capuleti und Montecchi | 35 |
| (Romeo und Julia) | 218 |
| Die Nachtwandlerin | 188 |
| (La Somnambula) | 188 |
| Norma | 191 |
| Berlioz: Beatrice und Benedict | 25 |
| Benvenuto Cellini | 29 |
| Die Trojaner | 235 |
| a) Die Eroberung von Troja | 235 |
| b) Die Trojaner in Karthago | 235 |
| Bizet: Carmen | 36 |
| Djamileh | 50 |
| Boieldieu: Johann von Paris | 135 |
| Die weiße Dame | 251 |
| Boito: Mefistofele | 180 |
| Bornele: Mudarra | 174 |
| Bronsart: Hiarne | 115 |
| Bruch: Hermione | 112 |
| Brüll: Das goldene Kreuz | 98 |
| Gringoire | 99 |
| Der Husar | 122 |
| Landfrieden | 150 |
| Bungert: Kirke | 140 |
| Odysseus' Heimkehr | 261 |
| Chabrier: Gwendoline | 103 |
| Cherubini: Medea | 178 |
| Der Wasserträger | 248 |
| Cimarosa: Die heimliche Ehe | 110 |
| Cornelius: Der Barbier von Bagdad | 18 |
| Der Cid | 38 |
| Curti: Lili Tse | 153 |
| Deslibes: Der König hat's gesagt | 142 |
| Lackmé | 150 |
| Dittersdorf: Doktor und Apotheker | 51 |
| Donizetti: Belisar | 27 |
| Don Pasquale | 56 |

Seite

Die Favoritin . . . 77
Der Liebestrank . . 152
Linda von Chamounix 154
Lucia von Lammermoor 160
Lucrezia Borgia . . 161
Marie, die Tochter des Regiments . . . . 169
Enna: Die Hexe . . . 113
Cleopatra . . . . . 40
Erben: Enoch Arden . 62
Flotow: Alessandro Stradella . . . . 7
Indra . . . . . 124
Martha . . . . . 170
Forster: Die Rose von Pontevedra . . . 128
Giordano: Mala vita . 167
Gläser: Des Adlers Horst . . . . . 2
Glinka: Das Leben für den Zar . . . . 151
Gluck: Alceste . . . . 6
Armide . . . . . 13
Iphigenia in Aulis . 127
Iphigenia auf Tauris 128
Orpheus und Eurydike 194
Goldmark: Heimchen am Herd . . . . 111
Die Kriegsgefangene . 145
Die Königin von Saba 143
Merlin . . . . . 183
Götz: Der Widerspenstigen Zähmung . . . . 249
Gounod: Faust (Margarete) . . . . . 74
Romeo und Julia . . 218
Halévy: Der Blitz . . 32
Die Jüdin . . . . 137
Hansmann: Enoch Arden . . . . . 62
Hérold: Zampa . . . 256
Hofmann: Aennchen von Tharau . . . 11
Armin . . . . . 12
Donna Diana . . . . 55

Seite

Holstein: Der Haideschacht . . . . . 104
Hummel: Angla . . . 9
Assarpai . . . . . 15
Die Beichte . . . . 26
Mara . . . . . 168
Humperdinck: Hänsel und Gretel . . . 106
Hutay: Der Geigenmacher von Cremona 94
Kaiser: Das Hexenlied 114
Der Trompeter von Säckingen . . . . 236
Kaskel: Hochzeitmorgen 118
Die Bettlerin von Pont des Artes . . . . 30
Kienzl: Der Evangelimann . . . . . 72
Don Quixote . . . . 57
Klughardt: Gudrun . 100
Kretschmer: Die Folkunger . . . . . 93
Heinrich der Löwe . . 111
Kreutzer: Das Nachtlager in Granada . 187
Lachner: Catarina Cornaro . . . . . 37
Langer: Der Pfeifer von Hardt . . . . . 200
Leoncavallo: Die Bajazzi (Pagliacci) . 17
Bohème . . . . . 33
Die Medici . . . . 178
Lohse: Der Prinz wider Willen . . . . . 267
Lortzing: Die beiden Schützen . . . . 26
Regina oder die „Marodeure" . . . 273
Undine . . . . . 241
Der Waffenschmied . 246
Der Wildschütz . . . 253
Zar und Zimmermann 257

| | Seite |
|---|---|
| Maillart: Das Glöckchen des Eremiten | 96 |
| Marschner: Hans Heiling | 108 |
| Hjarne, der Sängerkönig | 116 |
| Templer und Jüdin | 229 |
| Der Vampyr | 242 |
| Mascagni: Cavalleria rusticana | 38 |
| Freund Fritz | 92 |
| Iris | 129 |
| William Ratcliff | 271 |
| Die Rantzau | 204 |
| Zanetto | 283 |
| Raimann, Enoch Arden | 64 |
| Massenet: Der König von Lahore | 144 |
| Manon | 166 |
| Werther | 281 |
| Méhul; Joseph in Egypten | 136 |
| Mendelssohn: Der Bärenhäuter | 23 |
| Meyerbeer: Die Afrikanerin | 4 |
| Dinohra | 49 |
| Ein Feldlager in Schlesien | 79 |
| Die Hugenotten | 120 |
| Der Nordstern | 190 |
| Der Prophet | 203 |
| Robert der Teufel | 216 |
| Mohr: Der deutsche Michel | 48 |
| Mozart: Bastien und Bastienne | 21 |
| Cosi fan tutte | 43 |
| Don Juan | 53 |
| Die Entführung aus dem Serail | 65 |
| Figaros Hochzeit | 84 |
| Die Gärtnerin | 94 |
| Idomeneus | 123 |
| Der Schauspieldirektor | 186 |
| Titus | 232 |
| Die Zauberflöte | 258 |
| Neßler: Der Rattenfänger von Hameln | 205 |
| Der Trompeter von Säckingen | 237 |
| Nicolai: Die lustigen Weiber von Windsor | 162 |
| Pergolesi: Die Magd als Herrin | 164 |
| Procházka: Glück | 97 |
| Puccini: Bohême | 34 |
| Manon Lescaut | 167 |
| Rossini: Der Barbier von Sevilla | 19 |
| Othello | 195 |
| Tell | 227 |
| Rubinstein: Der Dämon | 46 |
| Feramors | 80 |
| Die Kinder der Haide | 142 |
| Die Makkabäer | 164 |
| Nero | 189 |
| Rüfer: Merlin | 185 |
| Schenk: Der Dorfbarbier | 59 |
| Schillings: Ingwelde | 125 |
| Der Pfeifertag | 262 |
| Schumann: Genoveva | 95 |
| Smareglia: Cornelius Schutt | 42 |
| Der Vasall von Szigeth | 244 |
| Smetana: Dalibor | 44 |
| Der Kuß | 147 |
| Die verkaufte Braut | 244 |
| Spinelli: A basso porto | 1 |
| Spohr: Jessonda | 134 |
| Spontini: Ferdinand Cortez | 80 |
| Die Vestalin | 245 |
| Stierlin: Zamora | 255 |
| Strauß, R.: Guntram | 100 |
| St. Saëns: Delila | 46 |
| Sullivan: Ivanhoe | 131 |

| | Seite |
|---|---|
| Tasca: A Santa Lucia | 14 |
| Thomas: Hamlet | 105 |
| Mignon | 185 |
| Thuille: Lobetanz | 156 |
| Tschaikowsky: Eugen Onegin | 68 |
| Pique-Dame | 264 |
| Umlauft: Evanthia | 73 |
| Ursprung: Das Unmöglichste von Allem | 275 |
| Verdi: Aida | 5 |
| Amelia oder ein Maskenball | 8 |
| Ernani | 66 |
| Falstaff | 75 |
| Othello | 196 |
| Rigoletto | 208 |
| La Traviata (Violetta) | 232 |
| Der Troubadour | 239 |
| Wagner Siegfr.: Der Bärenhäuter | 21 |
| Wagner: Die Feen | 78 |
| Der fliegende Holländer | 86 |
| Götterdämmerung | 214 |
| Lohengrin | 158 |
| Die Meistersinger | 181 |
| Parsifal | 197 |
| Das Rheingold | 206 |
| Rienzi | 207 |
| Der Ring des Nibelungen | 210 |
| Siegfried | 213 |
| Tannhäuser | 228 |
| Tristan und Isolde | 234 |
| Die Walküre | 261 |
| Weber: Die drei Pintos | 60 |
| Euryanthe | 70 |
| Der Freischütz | 90 |
| Oberon | 192 |
| Silvana (Das Waldmädchen) | 223 |
| Zichy: Meister Roland | 172 |
| Zoellner: Das hölzerne Schwert | 119 |
| Die versunkene Glocke | 278 |
| Zepler: Vicomte von Letorières | 280 |

## A basso porto.

Lyrisches Drama in 3 Akten von Niccola Spinelli. Text nach Goffredo Cognetti von Eug. Checchi. Deutsch von Ludwig Hartmann.

Personen: Mutter Maria = Sopran; Ihre Kinder: Sesella = Sopran, Luigino = Tenor; Ciccillo = Bariton; Pascale, Wirt = Baß; Pichillo = Tenor. – Ort: Neapel. Zeit Gegenwart.

Köln 1894.

**1. Akt.** Straße Acquaquilia „am unteren Hafen". Pichillo, Pascale und Luigino spielen mit anderen Camoristen.*) Maria versucht vergeblich, ihren Sohn von der Leidenschaft des Spieles zu befreien. Ciccillo, allein bezichtigt sich selbst, aus Herrschsucht das Haupt der Camorra den Behörden verraten zu haben. Er gerät mit den Genossen in Streit, während in einer andern Gruppe Maria und Sesella auf den Sohn und Bruder zum Guten einzuwirken versuchen, was dieser damit erwidert, daß er seine Schwester wegen ihrer Liebe zu Ciccillo verspottet. Dieser hält, nachdem die Andern gegangen sind, Sesella zurück, um sie zu gemeinsamer Flucht zu bestimmen. Luigino, der gelauscht hat, dringt mit dem Messer auf Ciccillo ein, wird aber von Maria und Sesella zurückgehalten. Ciccillo will Maria, die er früher geliebt hat, an ihren Kindern strafen, indem er Sesella zur Dirne, Luigino zum Sträfling macht. Pascale stürzt herein und berichtet den Verrat des Häuptlings der Camorra. Ciccillo bleibt ruhig, während Maria in ihm den Verräter ahnt.

**2. Akt.** Das Innere der Wirtschaft des Pascale. Pichiollo und Luigino singen unterstützt vom Chor Lieder, als Ciccillo eintritt und Luigino eine schallende Ohrfeige versetzt. Dieser will Rache nehmen, wird aber von seinen Gefährten hinausgedrängt. Ciccillo bezichtigt ihn des Verrates. Dann, als er allein ist, beklagt er sein Leben, das er nur noch der Rache widmen will. Abermals bestimmt er Sesella zur Flucht, bis Maria dieser die Augen über den wahren Charakter Ciccillos öffnet und ihr vertraut, daß dieser Verrat geübt hat. Die Camoristen treten zur Beratung zusammen, verurteilen Ciccillo zum Tode und beauftragen Luigino mit der Vollstreckung der Strafe.

**3. Akt.** Straße wie im 1. Akt. Maria betet, daß Luigino das Urteil nicht auszuführen brauche, da er sonst

*) Camoristen = Anhänger der „Camorra", einer weitverzweigten italienischen geheimen Gesellschaft, die die Erpressung und Rache in wohlorganisirter Weise pflegt.

als Mörder selbst sterben muß. Aus diesem Grunde will sie den eintretenden Ciccillo zur Flucht verleiten. Dieser jedoch, der die Camorristen wiederum der Behörde denunziert hat, glaubt sie schon von Truppen umzingelt und verhöhnt deshalb die Warnung Marias. Als er die Verfolger der Camorristen herbeirufen will, reißt Maria ein Messer aus der Tasche und ersticht ihn.

## Die Abreise.

Musikalisches Lustspiel in 1 Akt von Eugen d'Albert. Text von A. von Steigentesch. Eingerichtet von Ferdinand Graf Sporck.

Personen: Gilfen = Bariton; Louise, seine Frau = Sopran; Trott = Tenor; — Ort: ein Lustschloß in Mitteldeutschland. Zeit: Ende des achtzehnten Jahrhunderts.
Frankfurt a. M. 1898.

Gilfen zählt an den Knöpfen seines Rockes ab, ob er reisen soll. Seinem Wunsche gemäß verneint das Orakel. Er scheut sich, seinen Freund Trott mit seiner Frau allein zu lassen. Dieser versucht auf jede mögliche Art Gilfen zur Abreise zu bewegen. Da er sich jedoch durch allzu laute Schwärmerei für Louise verrät, erfindet Gilfen immer neue Hindernisse, die Trott zu bewältigen sucht.

Als Louise diesem in einem kurzen Liede klagt, daß des Weibes Herz „versteht, duldet und entbehrt", gesteht er ihr seine Liebe. Als es ihm endlich gelingt, Gilfen zur Abreise zu bewegen, glaubt er sich schon am Ziele. Aber der Freund tritt bald darauf wieder ein, da angeblich sein Wagen gebrochen ist. Heimlich gesteht er jedoch seiner Frau, daß dies nur ein Vorwand ist und er aus Liebe zu ihr geblieben sei. Trott wird von ihnen hinauskomplimentiert und auf einem Zettel, den ihm Louise hinwirft, steht, daß sie nur ihren Mann liebe.

## Des Adlers Horst.

Oper in 3 Akten (Singspiel) von Franz Gläser. Text von K. von Holtei.

Personen: Vater Renner, Baudenwirt = Baß; Veronika, seine Frau = Mezzosopran; Anton, beider Sohn = Tenor; Marie, ihre Pflegetochter = Sopran; Rose = Sopran; Richard, Förster = Bariton; Cassian und Lazarus, Pascher = Tenor u. Baß. — Im Riesengebirge 1830.
1833 in Berlin zuerst aufgeführt im alten Königstädtischen Theater.

**1. Akt.** Gegend im schlesischen Gebirge. Rose ist auf der Bühne; zu ihr kommen Renner, Veronika, Marie und

Anton, die nach einem Dankgebet wieder weiter gehen. Rose allein (Arie: „Und sei das Herz auch ganz verlassen"). Cassian kommt (Lied: „Mit grünem Laub zu kränzen das Leben"). Da er Rose attakiert, nimmt der herzueilende Anton Partei für das Mädchen, gegen den Willen seiner Mutter, die ihn von der Magd trennt. Gleich darauf muß sie erfahren, daß auch ihr Mann das Mädchen in Schutz nimmt und sogar nichts gegen eine Heirat mit Anton hätte. Darauf besteht Veronika aber auch auf ihren Willen, daß Marie und der Förster Richard ein Paar würde. — Richard kommt (Arie: „O, daß der Felsen starre Kluft"). In der folgenden Szene tritt zu Tage, daß Richard und Rose in vertrautem Verhältnisse stehen. — Nach Anton treten Landleute auf (Chor: „Es begrüßen wieder heute"). Als sie bewirtet werden und Rose dazu tritt, erkennen sie in ihr eine Landsmännin, die einst entehrt und beschimpft entwichen ist.

**2. Akt.** Rose gesteht dem gütigen Renner, daß sie Richards Weib sei und ihr Kind im Gebirge versteckt halte. Sie macht ihrem Kummer Luft (Arie: „Wo der Wiese grünes Band zwischen Klippen liegt"). Renner verspricht sie zu schützen und in der folgenden Szene weist Rose Antons Liebe zurück und weist ihn auf Marie, die ihn liebt. Renner ist dies recht, da er Veronikas Wunsch, Marie mit dem Förster zu verbinden, abhold ist. — Mit Paschern feiert Renner ein Trinkgelage (Terzett: „Die Flaschen zur Hand, nun prüft mit Verstand"). Veronika kommt dazu, wird aber von Renner für den neuen Plan gewonnen. — Die Bühne wird leer — man sieht einen Adler mit einem Kind in die Lüfte steigen. Entsetzt stürzen die Leute heraus (Chor: „Der Adler, er hat ein Kind geraubt"). Rose ruft: „Gott des Erbarmens, das Kind ist mein!" Nach kurzem Besinnen macht sich alles zur Rettung auf.

**3. Akt.** Felsenspitze mit Adlerhorst. Richard erscheint (Arie: „Und immer finstrer steigen Wolken auf"). Auf einer falschen Felsspitze taucht Rose auf, erschreckt ihren Irrtum wahrnehmend. Dem wieder nahenden Richard entdeckt sie das Geschehene. Er will den Adler schießen, das Kind retten und so Roses Verzeihung erlangen; doch seine Faust bebt, sein Blick ist unstät, er vermag nicht zu zielen. Da bricht ein Gewitter aus, der Blitz fällt einen Baum, der nun eine Brücke zum Horst bildet. Rose geht auf den Horst zu, der Adler erhebt sich drohend; doch nun schießt und trifft Richard. „Triumph", ruft Rose, „mein Kind ist gerettet". Sämtliche Personen der Oper klettern herauf und unter ihrem Jubelgesang versöhnen sich Richard und Rose.

## Die Afrikanerin.

Große Oper in 5 Akten von G. Meyerbeer, Text von Scribe.

Personen: Don Pedro, Rat des Königs von Portugal = Baß; Don Diego, Admiral = Baß; Ines, dessen Tochter = Sopran; Vasco de Gama, Offizier = Tenor; Don Alvar = Tenor; Großinquisitor = Baß; Nelusco = Bariton; Selica = Sopran; Oberpriester der Brahmanen = Baß. — Handlung: 1. Akt: Ratssaal in Lissabon. 2. Akt: Gefängniß in Lissabon. 3. Akt: An Bord des Admiralschiffes. 4. u. 5. Akt: In Indien.

Geschrieben wurde die Oper bereits im Jahre 1860, aber erst 1865, ein Jahr nach dem Tode des Komponisten, in Paris zum ersten Male aufgeführt.

**1. Akt.** Ines liebt Vasco de Gama, soll jedoch den Don Pedro heiraten. Ihr Geliebter ist mit Barth. Diaz zur See, den Wasserweg nach Indien zu finden (Romanze). Diego und Pedro treten auf. Letzterer erklärt ihr den Tod Vascos (Terzett). Hierauf beginnt die Sitzung des Rates, die sich mit Diaz beschäftigt. Indessen ist dieser zu Grunde gegangen, nur ein Offizier kehrt von der Expedition zurück, es ist Vasco de Gama, der als Beweis vom Dasein des gesuchten Landes zwei Sklaven mitbringt, Nelusco und Selica. Vasco bittet um ein neues Schiff, wird abgewiesen und da er heftig wird, zum Kerker verdammt. Pedro findet Vascos Karten.

**2. Akt.** Vasco schläft im Gefängnis; Selica, die ihn liebt, bewacht ihn (Arie: „In meinem Schoß laß ruhn dein Haupt".) Sie rettet sein Leben vor Nelusco, der aus Rache und Eifersucht Vasco töten will. In dem folgenden Duett verrät Selica dem Geliebten den Weg zu ihrer Heimat, da aber Vasco Ines liebt, so schenkt er dieser die Sklavin, um keinen Verdacht aufkommen zu lassen, als sei er Selica zugethan. Ines, die mit Pedro kam, bringt die Befreiung Vascos, die sie dadurch erlangt, daß sie Pedros Weib wird. Pedro hat das Kommando der neuen Expedition erhalten und nimmt den sich anbietenden Nelusco als Steuermann mit.

**3. Akt.** Auf dem Admiralschiff Pedros führt Nelusco das Steuer; zwar warnt Don Alvar vor dem Indier, aber Pedro glaubt an ihn. Neluscos Freude giebt sich im Gesang kund („Adamastor dem König der Wellen"). Vosco ist in einem zweiten Schiff gefolgt, naht sich in einem Boot, um zu warnen, doch läßt ihn Pedro in Ketten legen. Während nun aber das Schiff von den Indiern überfallen und alles niedergemetzelt wird, rettet Selica, welche die Königin des Stammes ist, Vasco.

**4. Akt.** Großes Fest der Indier mit Ballet. Obwohl Selica dem Oberpriester nun schwören muß, alle Fremden töten zu lassen, rettet sie doch den vom Lande entzückten Vasco (Arie: „Land so wunderbar"), indem sie ihn zu ihrem Gatten erklärt. Vasco ist von Selicas Aufopferung, da sie ihn heimlich entfliehn lassen will, so entzückt, daß er beschließt, als ihr Gatte zu bleiben. Von schwachem Charakter jedoch, reißt er sich los, als er die Stimme der zum Tode geführten Ines hört.

**5. Akt.** Die großmütige Selika läßt Vasco und Ines kommen und befiehlt dann Nelusco, das Liebespaar auf ein Schiff zu bringen. — Die Schlußverhandlung spielt unter dem Tod verbreitenden Manzanillobaum, wo Selica nach der Nachricht des Nelusco, daß Vasco und Ines gerettet seien, stirbt.

---

## Aida.

Große Oper in 4 Akten von G. Verdi. Text von A. Ghislanzoni.

Personen: Der König von Egypten = Baß. Amneris, seine Tochter = Mezzosopran. Aida, äthiopische Sklavin = Sopran. Radames = Tenor. Der Oberpriester = Baß. Amonasro, König von Äthiopien = Bariton. — Die Handlung ist in Egypten zur Zeit der Pharaonen.

Für ein Honorar von 80 000 Franken schrieb Verdi diese Oper für Ismael Pascha, den Khedive von Egypten, die 1871 in Kairo zum ersten Male aufgeführt wurde.

**1. Akt.** Aida, die unerkannte Tochter des Königs Amonasro, weilt als Sklavin in Memphis. Um sie zu befreien, hat ihr Vater einen Einfall in Egypten gemacht, Aida liebt den jungen Radames, doch hat sie eine gefährliche Nebenbuhlerin in der Königstochter Amneris. — Der Oberpriester erklärt Radames als den von der Göttin Isis erwählten Feldherrn gegen Amonasro und dies und seine Liebe zu Aida beglückt den Jüngling. Mit der von Amneris erhaltenen heiligen Fahne zieht Radames an der Spitze des Heeres mutig in den Krieg. — In Zwiespalt, für wen sie flehen soll, für den Vater oder für den Geliebten, bleibt Aida zurück.

**2. Akt.** Saal bei Amneris. Festgesang und Tanz. Heuchlerisch empfängt die Prinzessin ihre Sklavin und entlockt dieser das Geständnis ihrer Liebe zu Radames.

Verwandlung: Radames hat die Feinde geschlagen und kehrt als Sieger zurück. Großer Triumphzug. Amonasro ist gefangen; außer Aida erkennt ihn aber niemand als König, den er selbst für tot erklärt. Auf Radames Bitte werden die Gefangenen freigegeben und der dankbare

König von Egypten erklärt den Sieger zu seinem Nachfolger und zum Gemahl seiner Tochter.

**3. Akt.** Am Ufer des Nil, in der Nähe des Isistempels, Amonasro und Aida mußten als Geiseln zurückbleiben, und der König zwingt die Tochter, von Radames zu entlocken, wie die Kampfaufstellung des egyptischen Heeres sei. Amneris fleht die Götter um des Radames Liebe an, aber dieser willigte nur scheinbar ein, ihr Gatte zu werden, da er Aida über alles liebt, sodaß er ihr sogar das Geheimnis der Heeresaufstellung mitteilt. Als nun aber Amonasro erklärt, wer er ist und mit Aida entflieht, läßt der verzweifelnde Radames sich willig gefangen nehmen.

**4. Akt.** Saal bei der Gerichtshalle. Amneris will den Geliebten retten; in sein Schicksal ergeben, weist er sie zurück und wird zum Tode verurteilt. Der Spruch lautet auf: Lebendig begraben werden.

Verwandlung: Der untere Teil der Bühne zeigt das finstere Grabgewölbe im Vulkantempel; im Etagenbau darüber den Tempel selbst. Aida hat sich in das Gewölbe geschlichen, um mit Radames zu sterben. Während die Liebenden unten dem Tode entgegen gehen, betet oben Amneris auf dem Grabe inmitten derpriesterlichen Trauerfeier.

---

## Alceste.

Oper in 3 Akten von Gluck. Text von Calzabigi.

Personen: Admetos, König von Pherä = Tenor. Alceste, seine Gattin = Sopran. Evander = Tenor. Oberpriester Apollos = Baß. Herakles = Baß. Apollo = Bariton. Thanatos, der Gott des Todes = Baß. – Die Handlung geht in und bei Pherä, im Alterthum, vor sich.

Unter den vielen Opern, welche dieses Sujet behandeln, ist die Gluckſche, welche 1767 in Wien das Licht der Lampen erblickte, allein noch lebensfähig. Die Handlung ist die bekannte Sage von Alkestis, die für ihren Gatten Admetos in den Tod geht und von Herakles aus der Unterwelt zurückgebracht wird.

**1. Akt.** Das Volk betet für den sterbenden Admetos im Verein mit Alceste, die sich an Apollo um Hilfe wendet.

Verwandlung: Im Tempel Apollos. Nach dem Gebet der Priester bringt Alceste ihre Bitte vor und die Stimme Apollos ertönt: „Dem Styx ist Admetos geweiht, wenn ein andrer für ihn nicht zum Opfer sich beut". Das Volk flieht erschreckt, Alceste bietet ihr Leben und der Priester verkündet, daß der Gott das Opfer annehme.

**2. Akt.** Im Palast. Admetos ist genesen, das Volk jubelt. — Ballet. — Als Admetos erfährt, wodurch er gesund geworden, will er das Opfer nicht annehmen.

**3. Akt.** Vor dem Palast. Trauer des Volkes. Ad-

metos will mit Alceste sterben. Da erscheint Herakles, der seinen Freund Admetos heimsuchen will, erfährt von Evander, was geschehen und beschließt, dem Orkus zum Trotz, ihm die Beute zu rauben.

Verwandlung: Eingang zur Unterwelt. Die Todesgötter verweisen die zum Opfer erschienene Alceste bis zum Abend, aber schon kommt Admetos, ihr Schicksal zu teilen. Als die Todesgötter den Liebesstreit enden und Alceste fortschleppen, stürzt Herakles herein und ringt des Freundes Gattin dem Tode ab, wozu der friedliche Apollo seinen Segen giebt. — Das Volk eilt herbei und schließt mit großem Jubel.

## Alessandro Stradella.

Spieloper in 3 Akten von Fr. v. Flotow. Text von W. Friedrich.

Personen: Stradella, Sänger = Tenor. Bassi, ein reicher Venetianer = Baß. Leonore, ein Mündel = Sopran. Malvoglio und Barbarino, Banditen = Tenor und Baß. — Venedig und Rom 1675.

1844 in Hamburg zuerst aufgeführt.

**1. Akt.** Venedig, vor dem Hause Bassis. Es ist Karneval. Stradella fährt mit seinen Schülern vor. Chor und Recitativ: „Wir sind zur Stelle, wo die Teure weilet". Stradella bringt seiner Geliebten eine Serenade: „Horch Liebchen! horch, es singt der Traute". Leonore erscheint auf dem Balkon; sie klagt, daß sie sich schon morgen mit dem Vormund vermählen solle. Stradella fordert sie auf, ihm zu folgen (Notturno: „Durch die Thäler über Hügel"). Im Maskengewühl entfliehen sie. Bassi will ihnen nach, doch vom Maskentrubel umtobt kommt er zu spät (Chor: „Vivat hoch, Prinz Karneval").

**2. Akt.** Vor einem Landhaus bei Rom. Leonore tritt auf in Freude über das erreichte Ziel (Arie: „Seid meiner Wonne stille Zeugen"). Stradella kommt mit den Freunden, sie zum Altar zu holen (Glockenchor: „Hört die Glocken freundlich locken"). Nachdem alles abgegangen, kommt erst der Bravo Malvoglio, dann der Bravo Barbarino (Duett: „An dem linken Strand der Tiber"). Beide sind gedungen, Stradella zu töten und vereinigen sich nach eiferjüchtigem Streit zur selben That. Als Wallfahrer mischen sie sich unter die rückkehrende Gesellschaft. Stradella ist mit Leonore verbunden, bewirtet seine Gäste, nimmt auch die Banditen auf, die ein Trinklied zum Besten geben („Raus mit dem Naß aus dem Faß"). Aufgefordert, trägt Stradella das Lied von Salvator Rosa vor, mit dem vom Chor wiederholten Refrain: „'s ist nichts so schlimm, als

man wohl denkt", woran sich unter allgemeinem Jubel eine Reprise des Trinkliedes anschließt.

**3. Akt.** Gemach im Landhause. Wechselgesang zwischen Stradella, Leonore, Barbarino und Malvoglio: „Italia, mein Vaterland". Von einem Pilgerchor angezogen, eilen Stradella und Leonore hinaus. Der alte Bassi schleicht herein und verhandelt mit den Banditen, für den Mord Stradellas reichen Lohn bietend (Terzett: „Sag doch an, Freund Barbarino"). Schließlich sagen die Banditen zu. Stradella ist allein, Bassi schleicht mit den Banditen herein, fordert sie auf, mehrere Male heben diese ihre Messer, werden aber von dem seelenvollen Gesang Stradellas gebannt (Hymne: „Jungfrau Maria!"). Bei dem Ende der Hymne: „Selbst dem Sünder sei vergeben" werfen die Banditen die Messer fort, sinken reumütig in die Knie und Bassi muß sich fügen. Schlußchor: „Fromme Menge im Gedränge".

---

## Amelia oder ein Maskenball.

Oper in 3 Akten von G. Verdi. Text von F. M. Piave.

Personen: Graf Richard, Gouverneur von Boston = Tenor. Renato, ein Sekretär = Bariton. Amelia, Renatos Gattin = Sopran. Ulrica, Wahrsagerin = Alt. Oskar, Page = Sopran. Silvan, Matrose = Bariton. Samuel und Tom, Verschworene = Baß. — Handlung: In und bei Boston Ende des 17. Jahrhunderts.

Zuerst aufgeführt in Rom 1859. Der Text war ursprünglich mit anderer Unterlage in „Gustav III." für Rossini geschrieben, dann von Auber komponiert (siehe Gustav oder der Maskenball). Das Scribesche Original wurde dann auf Verdis Wunsch von Piave umgearbeitet.

**1. Akt.** Saal. Offiziere und Bürder drücken ihre Liebe für Graf Richard aus, während Samuel, Tom und ihre Freunde ihren Haß kundthun. — Richard kommt und auch Amelia ist darunter, die Richard liebt. Amelias Gemahl erhält vom Pagen Oskar die Liste eingeladener Gäste; mahl tritt auf und warnt den Grafen vor Verrat. Der erste Richter bringt die Nachricht, daß man Ulrica verbanne, weil sie wahrsage. Richard beschließt, die Zukunftsverkündigerin verkleidet zu besuchen, was die Verschworenen als günstige Gelegenheit benützen wollen.

Verwandlung: Bei Ulrica. Beschwörungsszene in Gegenwart von Frauen und Kindern. Richard kommt als Fischer, doch Ulrica erkennt ihn; auch Amelia naht und Ulrica schickt alle andern fort; Richard belauscht die Szene und hört, daß er geliebt wird, doch Amelia verlangt von der Zauberin Vergessenheit. Ulrica bezeichnet ihr ein Kraut, das sie in der Geisterstunde an grauenvoller Stelle pflücken soll, worauf Amelia geht. Nun läßt sich Richard prophe-

zeien und hört, daß der Tod seiner harrt und der, welcher heute seine Hand zuerst drücke, würde sein Mörder sein. Renato kommt und reicht Richard die Hand — auch das Volk bringt ein und umjubelt den erkannten Grafen.

**2. Akt.** Mitternacht, einsame Gegend. Amelia kommt und spricht sich Mut zu, da naht Richard und beide gestehen ihre Liebe. Unerwartet kommt Renato, um den Grafen vor den Verschworenen zu beschützen. Er erkennt die verhüllte Gattin nicht und verspricht, nachdem er mit Richard den Mantel getauscht, sie zu geleiten. — Die Verschworenen sehen sich getäuscht, enthüllen aber Amelias Schleier und entsetzt erkennt Renato sein Weib. — Renatos Ergebenheit für den Grafen verwandelt sich in Haß und er fordert die Verschwörer auf, morgen zu ihm zu kommen. Darauf hält er sein Wort und bringt Amelia zur Stadt.

**3. Akt.** Zimmer bei Renato. Renato, der seine Gattin töten will, ändert seinen Sinn und beschließt, den Frevel an Richards Blut zu löschen. Den Verschwörern verspricht er nun seine thätige Hilfe. Er zwingt Amelia, ein Los zu ziehen; es ist sein Name und Amelia ahnt, was er vorhat. Oskar überbringt eine Einladung zum Maskenball, die Richard annimmt.

Verwandlung: Maskenfest beim Grafen. Richard beschließt, Renato mit Amelia nach England ziehen zu lassen, um die Ehre und Pflicht zu wahren. Maskengewühl. Die Verschworenen suchen den Grafen, der von Amelia gewarnt wird, doch Richard nimmt Abschied von ihr, da er sein Herz opfert und sich trennen will. Wie er ihr aber Lebewohl sagt, empfängt er von Renato, der sich herbeigeschlichen, den Todesstoß. Sterbend beteuert Richard Amelias Unschuld und verzeiht Renato.

---

## Angla.

Oper in 1 Akt von Ferd. Hummel. Text von Axel Delmar.

Personen: Kaiser Karl der Große, als Mönch gekleidet = Baß. Bischof Balduin, sein Gesandter = Tenor. Widukind, Sachsenherzog = Tenor. Hereford, Wotanspriester = Bariton. Angla, Widukinds Geliebte = Sopran. — Ort: der Wotanshain. — Zeit: 800 n. Chr.
Berlin, 1893.

Widukind, der heidnische Sachsenherzog und Gegner Karls des Großen, schlummert im Zelt, von seiner Geliebten, Angla, bewacht. Indessen lauscht der Wotanspriester Hereford auf das Orakel der Wotan geheiligten Eiche, welche die Mitte des Platzes im Hain einnimmt (Chor: „Wotan,

Allvater, wir rufen" und Hereford: „Hehre Stimmen in den Zweigen hör' ich leise Zwiesprach halten"). Der Baum rauscht, Widukind hört es im Traum und Angla wiegt ihn durch ihren Gesang: „Blühenden Lenzes süßes Kosen" wieder ein. Dann erwacht der Herzog; er hat vom Sturz des heiligen Baumes geträumt, als er aber den Waffenruf der Sachsen hört, springt er voll Schlachtmut empor, zugleich Anglas Bangen beruhigend (Widukind: „Bangst Du meiner, trautes Lieb" und Anglas Antwort: „Mein hoher Held, in Bangen und Furcht bleib' ich zurück"). Sie hat Friedenstrahlen leuchten gesehen und fordert Widukind auf, Wotan zu entsagen, den Christenglauben anzunehmen. Widukind fürchtet, im Glaubenszwiespalt die Geliebte zu verlieren und sinkt ihr schmerzvoll zu Füßen. Da verkündet Hereford zum Schrecken der Sachsen Unheil aus dem Rauschen der Wotanseiche und aus der Ferne ertönt ein Gesang fremder Frauen: „Friedensboten sind die Frauen". Erstaunt blicken die Sachsen auf. Es ist der Gesandte Kaiser Karls, der Bischof Balduin, der mit einer Schar christlicher Frauen daherzieht, in seiner Begleitung, als unscheinbarer Pilger gekleidet, der Kaiser selbst (Balduin: „Nach des Kaisers weisem Willen ein Gesandter vor Dir steht"). Er bietet Widukind Frieden an, doch Hereford erinnert den Sachsenherzog an das Blutbad an der Aller („Willst Du Boten denn empfahn von dem Todfeind Deiner Lande" und Sachsenchor: „Wehrlos wurdet Ihr erschlagen"). Der Wotanspriester verlangt, daß man diese Christenfrauen als Blutschuld dem Wotan opfern soll. Hier tritt Kaiser Karl dazwischen. Er allein will die schwere Blutschuld sühnen und enthüllt sich seinen Feinden. Unter dem Rauschen der Eiche verkündet er seinen Traum, daß eine Frau schön und wert erschienen, die sein Schwert ergriffen und die heilige Eiche gefällt. Nun hat er die reinsten Frauen aus seinem Reich erwählt und mit ihnen die Pilgerfahrt hierher gemacht. Balduin erklärt er den Traum dahin, daß die holde Frau das Christentum sei und verlangt von den Sachsen, daß sie die Probe wagen sollen. Hereford hofft, daß den, der den Baum berühre, Thors Hammer treffen würde und giebt die Erlaubnis. Als aber die Eiche geheimnisvoll aufrauscht, erfaßt ein Grausen die Christenfrauen und sie weichen zurück. Schon will Hereford triumphieren, da erbittet Angla das Schwert des Kaisers und fällt unter Anrufung Gottes des Vaters, des Sohnes und des heiligen Geistes den Baum, dessen Blätter sie einen Augenblick verdecken, dann aber sinken und den Blick eröffnen auf ein von der Morgensonne beschienenes Kreuz, das an der Stelle der Eiche sich er-

hebt. Widukind neigt sich, geht mit Angla zur Quelle und läßt sich von Bischof Balduin taufen. Schlußchor: „Den rechten Weg hast Du gewiesen".

---

## Aennchen von Tharau.

Oper in 3 Akten von Heinrich Hofmann. Text von R. Feld.

Personen: Simon Dach, Professor = Bariton. Neander, Pastor zu Tharau = Baß. Annchen, seine Tochter = Sopran. Gretchen, Tochter der Wirtin = Sopran. v. Hennewitz, kurfürstlicher Werbeoffizier = Baß. Johannes von Berkow = Tenor. – Handlung: in Tharau, Ende des 30jähr. Krieges. Hamburg 1878.

**1. Akt.** Simon Dach, der Dichter des Liedes „Aennchen von Tharau" liebt die Tochter des Pastors Neander. — Zur Zeit, als Simon dem Vater seine Liebe gesteht und Billigung findet, kommen brandenburgische Werbesoldaten durch Tharau unter Anführung des Jost von Hennewitz. Es entwickelt sich lustiges Leben. Der Student der Theologie Johannes von Berkow, ein Tharauer Kind, kommt dazu und erzählt an Hennewitz seine Liebe zu Aennchen. — In Tharau wird heute das Fest der Grundsteinlegung einer Kirche unter Leitung Simon Dachs gefeiert. Während des Festes erhält Simon Aennchens Jawort, doch als das junge Mädchen ihren Jugendfreund Johannes erblickt, eilt sie mit ihm jubelnd zum Tanz.

**2. Akt.** Im Garten des Pfarrhauses. Aennchen liebt Johannes und ist betrübt über das Jawort, das sie Dach gegeben. Gretchen hat das von dem Professor verfaßte Lied gefunden, bringt es Aennchen und diese hält Johannes für den Dichter. — Das lustige Gretchen schäkert mit dem Werbeoffizier. Als Johannes kommt, erhält er von Gretchen das Papier mit dem Gedicht, liest es laut, von Simon belauscht und es beginnt ein Streit zwischen den Männern. Aennchen soll entscheiden, wen sie liebt; sie bleibt zwar ihrem Worte treu und reicht Simon die Hand, kann aber vor Gretchen ihre Thränen nicht zurückhalten. — Johannes will davoneilen, als eine Deputation von Königsberg dem Simon Dach die Ernennung zum Rektor der dortigen Universität bringt. Die dargereichte Versöhnungshand weist der junge Student zurück und als Aennchen ihren Verlobten vor seinen Beschimpfungen schützt, wirft er sich den Werbesoldaten in die Arme.

**3. Akt.** Im Pfarrhause. Resigniert duldet das kranke Aennchen die Zärtlichkeit Simons, bittet ihn aber, Johannes von den Soldaten zu befreien. An ihrem heißen

Flehen erkennt Dach, wie sehr sie den Jüngling liebt. — Der nicht mehr junge Rektor fühlt, daß er mit Aennchen sein Paradies verliere. Als er nun gar belauscht, wie das durch Johannes von Marodeuren befreite Aennchen in ihrer Liebe glücklich ist, gebraucht er seine akademische Macht, befreit den Nebenbuhler vom Soldatendienst und legt Aennchen in die Arme des Geliebten.

## Apotheker und Doktor.

(Siehe Doktor und Apotheker.)

## Armin.

Oper in 4 Akten von Heinrich Hofmann. Text von Felix Dahn.

Personen: Varus, röm. Feldherr = Baß. Fulvia, seine Tochter = Sopran. Vala und Lucius, seine Legaten = Tenor und Baß. Armin = Tenor. Segest = Baß. Thusnelda = Sopran. Katwald, Armins Freund = Bariton. Albrun, eine junge Priesterin = Sopran. Germanische Fürsten. — Germanien im Jahre 9 nach Chr.

Dresden 1877.

**1. Akt.** Das Lager der Römer. Varus sitzt mit Armin an der Tafel, umgeben von Römern und Germanen. Armin sucht die Römer einzuschläfern, denn er ist gewillt, das Joch der Feinde zu brechen. Er ermahnt die Germanen zur Geduld und sucht sich mit dem römerfreundlichen, ihm feindlichen Segest zu versöhnen, indem er dessen Tochter Thusnelda zur Frau verlangt. — Als Römer und Germanen dennoch in Streit auszubrechen drohen, weiß Armin dies noch einmal zu verhindern.

**2. Akt.** Thusneldas Gemach. Thusnelda liebt und hofft auf Armin. Als Segest mit dem Römer Vala kommt, dem er sie zur Gemahlin bestimmt, weist sie diesen trotzig ab. — Sie läßt sich von Armin entführen, der sie gegen Segest und Vala verteidigt.

**3. Akt.** Fulvias Gemach im römischen Kastell. Fulvia hat Armin vermocht, zu ihr zu kommen, indem sie ihn mit Enhüllung eines Geheimnisses lockt. Sie liebt den Germanen und mischt ihm einen Liebestrank. Armin kommt und trinkt; sie verrät ihm, daß Varus die beim Sonnenwendfeste versammelten Germanen töten lassen will; Armin ruft der betroffenen Fulvia zu, daß er nicht sie, sondern sein Weib Thusnelda liebe und eilt durch das Fenster fort, den Freunden zu Hilfe.

Verwandlung: Germanischer Opferhain. Reli-

giöses Fest und Tanz. Die Römer nehmen die Germanen gefangen; doch der herzueilende Armin weiß die Feinde so listig zu bethören und zu gewinnen, daß man ihm selbst die Obhut der Gefangenen anvertraut.

**4. Akt.** Wald. Thusnelda ist allein und wird von Fulvia, die mit römischen Soldaten kommt, überwältigt und fortgeführt.

Verwandlung: Im Urwald des Wesergebirges. Armin befreit die gefangenen Germanen und kettet die begleitenden Römer. Er enthüllt seinen Befreiungsplan und begeistert waffnen sich die Germanen.

Verwandlung: Schlachtfeld. Auf Valas Meldung von der Befreiung der Germanenfürsten, eilen die Römer unter Varus in den Kampf. — Fulvia kommt, um in Armins Nähe zu sein. Der verwundete Varus kehrt aus der Schlacht zurück und als er Armins Verrat entdeckt, stürzt er sich verzweifelnd in sein Schwert. — Vala schleppt die gefangene Thusnelda herein, Fulvia will sie erdolchen, doch zur rechten Zeit kommen die Germanen unter Armin und Katwald. Fulvia giebt sich selbst den Tod; die Germanen triumphiren.

---

## Armide.

Große Oper in 5 Akten von Gluck. Text, nach Tasso's „befreitem Jerusalem", von Quinault.

Personen: Armide = Sopran. Phenice und Sidonie, ihre Vertrauten = Sopran. Hidroat, König von Damaskus = Bariton. Aront, sein Feldherr = Baß. Rinald, Feldherr im Heere Gottfrieds v. Bouillon = Tenor. Artemidor, ein Ritter = Tenor. Ubaldo = Bariton. Ein dänischer Ritter = Tenor. Die Furie des Hasses = Alt. Dämon als Lucinde = Sopran. Dämon als Melissa = Sopran. Eine Najade = Sopran.

Paris 1777.

**1. Akt.** Die schöne, mit Zauberkunst begabte Armide klagt ihren Freundinnen Phenire und Sidonie, daß der tapfere Rinaldo gegen ihre Reize unempfindlich sei. — Da ihr Oheim Hidroat darauf dringt, daß sie einen Gatten wähle, erklärt sie, dem Besieger Rinaldos die Hand reichen zu wollen. — Es folgt ein großes Fest mit Tanz. — Aront, der die gefangenen Kreuzfahrer bringen sollte, kommt verwundert, denn Rinaldo hat die Gefangenen befreit. Mit Racherufen schließt der Akt.

**2. Akt.** Wald. Rinaldo erklärt dem von ihm befreiten Artemidor, daß Gottfried von Bouillon ihm zürne und er darum nun allein auf Abenteuer ausziehen wolle. Als Rinaldo allein ist, umgaukelt ihn der Zauber Armidens; der Wald verwandelt sich in einen Wundergarten. Den ent-

schlafenen Rinaldo will Armide töten, aber da der Liebeszauber mächtiger ist, so führt sie den Helden mit sich fort.

**3. Akt.** Halle in Armidens Palast. Armide will ihre Liebe gewaltsam unterdrücken und ruft die Furie des Hasses herbei; dieselbe kündet aber, daß sie nie zurückkehren werde, da Armide sie von sich weist.

**4. Akt.** Zauberwald. Die Kreuzfahrer haben Ubaldo und einen dänischen Ritter abgesandt, Rinaldo zurückzurufen. Den Zauberspuk, womit Armide ihr Annähern verhindern will, bannt Ubaldo durch ein geweihtes Scepter. Die Geliebten der beiden Ritter zeigen sich ihren Blicken, doch auch diesen Zauber besiegt Ubaldo.

**5. Akt.** Armidens Palast. Armide und Rinaldo in Liebeslust. — Ballet. — Als Armide, durch Unruhe getrieben, den Geliebten verläßt, kommen die Kreuzritter zu Rinaldo, zeigen ihm im blanken Schild sein Spiegelbild. Der Held ermannt sich und greift zum Schwert, nimmt von der herzueilenden Armide kurzen Abschied und läßt sie in Verzweiflung zurück, da, wie einst der fliehende Haß gedroht, Liebespein sie verzehrt. Sie schwört ihren Zauber ab, die Dämonen zerstören den Palast und unter den Ruinen findet sie ihr Grab.

---

## A Santa Lucia.

Melodrama in 2 Akten von P. Tasca. Text nach dem gleichnamigen Werke des G. Cognetti von E. Golisciani.

Personen: Totonno, Austernhändler = Bariton. Cicillo und Concettina, dessen Kinder = Tenor und Sopran. Rosella = Mezzosopran. Nannina, deren kleines Mädchen. Maria = Alt. Tore, Polizeiagent = Baß. Ein Fischer = Tenor. – Neapel in der Gegenwart.
Berlin 1892.

**1. Akt.** A Santa Lucia in Neapel. Des Austernhändlers Totonno Sohn Cicillo, der mit Maria verlobt ist, steht in einem innigen Liebesverhältnis zu Rosella, mit der er auch schon ein Kind erzeugt hat. Maria ahnt das und sucht Rosella zu verderben. Totonno stellt sich gegen die Geliebte seines Sohnes kalt, weiß auch nichts von ihrer Liebe, ist aber heimlich dem Mädchen sehr zugethan, da sie seiner Jugendgeliebten gleicht, deren Tochter Rosella ist. In einem Streit, den Maria hervorruft, reizt diese Rosella derart, daß sie das Messer zieht und dadurch von dem Polizeispion Tore, der von Maria bestochen ist, verhaftet wird. Totonno bewirkt ihre Freilassung und während Cicillo als Matrose seiner Staatspflicht genügt und ferne

weilt, nimmt er sie in sein Haus. Cicillo hat vor seiner Abreise der Geliebten geschworen, sie nach seiner Rückkehr zu heiraten.

**2. Akt.** Dieselbe Dekoration. Maria glaubt, daß Rosella mit Totonno ein Liebesverhältniß eingegangen, was um so wahrscheinlicher ist, als Totonno gar kein Hehl aus seiner Neigung zu Rosella macht und sie wirklich zu heiraten denkt. Maria benutzt dies, um den heimkehrenden Cicillo aufzureizen und in seiner eifersüchtigen Wut glaubt dieser an die Untreue Rosellas, macht seinem Vater eine Szene und stößt die freudig nahende Geliebte zurück. Als Rosella erfährt, welche entsetzliche Anklage Cicillo erhebt, daß sie zugleich die Geliebte des Vaters und Sohnes sei und als ihre Beteuerungen der Unschuld keinen Glauben finden, stürzt sie sich in das Meer. Cicillo eilt ihr zwar nach, holt aber nur eine Sterbende aus der Flut, die nur noch die Worte hauchen kann: „Es ist nicht wahr!"

---

## Assarpai.

Oper in 3 Aufzügen von Ferd. Hummel. Dichtung nach einer Wildenbruchschen Ballade von Dora Duncker.

Personen: Atahualpa, letzter König aus dem Geschlechte der Inka; Assarpai, seine Tochter; Odahia, ihre Gefährtin; Pizarro, Oberbefehlshaber der Spanier; Ines, seine Tochter; Alonzo, spanischer Offizier; Pedro, Troßbube. – Ort: Peru; Zeit: 1533.

**1. Akt.** Thal von Quito. Atahualpa nimmt Abschied von seiner Tochter, um gegen die Spanier zu kämpfen, und läßt sie in der Obhut Odahias zurück, die die Sprache verloren hat und in Assarpai ihre Retterin aus Todesgefahr verehrt. Sie giebt durch Zeichen zu verstehen, daß Gefahr droht; Assarpai glaubt nicht, daß jemand in das verborgene Thal kommen könne, sieht sich aber plötzlich Alonzo gegenüber. Beide stehen wie gebannt da; Odahia beobachtet das Mädchen scharf. Assarpai ist noch nie aus ihrem Thale herausgekommen und läßt sich mit immer steigender Theilnahme vom Meere und von fremden Ländern erzählen. Auf Alonzos Wunsch schickt sie Odahia, die sich zwischen beide drängt, weg. Das stumme Mädchen geht widerwillig, und Alonzo erfährt, daß Assarpai sie ei..st aus einem brennenden Hause gerettet habe; in jener Schreckensnacht habe sie die Sprache verloren. Es ist dunkel geworden, Alonzo zieht Assarpai trotz ihres Sträubens an sich, und beider Herzen finden sich rasch. Nach langer Umarmung scheidet Assarpai.

**2. Akt.** Freie Gegend, Zelt des Pizarro. Es ist Nacht. Der verschmitzte Troßbube Pedro macht Pizarro den

Vorschlag, den unbesieglichen Yuka dadurch zu bezwingen, daß man ihm sein höchstes Gut, seine Tochter, raube. Er habe Schleichwege, die in das Thal führten, aufgefunden, und ein Trupp Soldaten unter Alonzos Führung könne das Wagstück unternehmen. Pizarro, der in Alonzo seinen zukünftigen Schwiegersohn sieht, ist damit einverstanden und teilt ihm seinen Auftrag mit. Alonzo ist noch in träumerischer Stimmung und hört anfangs kaum hin; als er aber erfährt, worum es sich handelt, schreit er entsetzt auf und weigert sich, den Befehl auszuführen. Pizarro ist über dieses Benehmen sehr verwundert und droht ihm mit dem Kerker, im andern Falle verspricht er ihm seine Tochter zum Weibe. Aber dies macht auf Alonzo keinen Eindruck, und auch als Ines selbst sanft auf ihn einredet, behält er seine kalt abweisende Haltung bei. Auf Pizarros nochmaligen strengen Befehl gehorcht er wie gebrochen.

Verwandlung: Thal von Quito, wie im 1 Akte. Assarpai grüßt die aufgehende Sonne („Dich grüß' ich, Tag") und verliert sich dann im Dickicht. Alonzo mit Pedro und einigen Soldaten schleicht sich heran, kaum seiner Sinne mächtig. Sein Benehmen fällt den übrigen auf, und als Assarpai auf einem Hügel sichtbar wird und langsam hinabsteigt, vermag er keinen Befehl mehr zu ertheilen. Assarpai erschrickt, als sie plötzlich die Soldaten sieht, aber Alonzos Anblick überzeugt sie, daß sie nichts Böses vorhaben können. Erst als sie auf Pedros Geheiß gebunden werden soll, erkennt sie ihre Lage und schleudert die Angreifer zurück. Natürlich unterliegt sie bald der Uebermacht, und ihre flehende Bitte, Alonzo möge sie befreien, bleibt unerhört. Odahia sucht sie vergeblich zu befreien; Alonzo gestattet, daß sie die Freundin begleiten möge.

**3. Akt.** Lager der Spanier am Meere. Der Feldaltar, an dem Alonzo mit Ines getraut werden soll, steht schon bereit, aber fast reut es den Vater, sein Kind dem weichmütigen Manne versprochen zu haben. Ungeduldig erwartet er Pedro, den er zum Inka geschickt hat. Endlich kommt der Bursche und berichtet, daß Atahualpa sich geweigert habe, sich zu ergeben, auch wenn man seine Tochter verbrenne, wie Pizarro gedroht hatte. Zornig läßt Pizarro den Scheiterhaufen schichten und Assarpai herbeiholen. Sie schreitet stolz auf Pizarro zu und hat für seine höhnische Begrüßung keine Antwort. Ihre Gedanken weilen bei ihrem Vater, und als Pizarro ihr berichtet, daß dieser selbst sie preisgebe, bleibt sie unbewegt wie vorher; sie meint, sie hätte von Spanien schlimmeres als den Tod erlitten. Pizarro kann mit seiner Bewunderung ihrer Schönheit und ihres

Muthes nicht zurückhalten und bietet ihr eine Gnadenfrist an, um ihren Vater umzustimmen; sie weist auch dies zurück und erregt Pizarros Zorn durch ihre unverhohlene Verachtung. Er verläßt sie, um seine Tochter zum Altar zu geleiten; Assarpai wird beim Anblicke des Meeres von Erinnerungen ergriffen („Aus fernen Landen") dann wird sie von der Wache abgeführt und an den Pfahl gebunden. Der Hochzeitszug naht, der Holzstoß wird angezündet. Sobald die verzweifelte Odahia Alonzo sieht, reißt sie ihn wütend nach vorn, und mit einem gellenden Schrei kommt ihr die Sprache wieder. Allgemeine Erregung; Alonzo stürzt sich verzweifelt in die Flammen und findet mit Assarpai gemeinsam den Tod.

---

## Die Bajazzi

(auch unter dem Titel: „Der Bajazzo" und wie im italienischen Original: „Pagliacci"). Oper in 2 Akten und einem Prolog von R. Leoncavallo. Der Text nach einer wahren Begebenheit vom Komponisten.

Personen: Canio, Haupt einer Dorfkomödiantentruppe, Bajazzo = Tenor. Nedda, sein Weib, Colombine = Sopran. Tonio, Taddeo = Bariton. Beppo, Harlekin = Tenor. (Die zweiten Bezeichnungen sind die Namen der Rollen der im zweiten Akt aufgeführten Komödie.) Silvio, ein junger Bauer = Tenor. — Ort der Handlung: Bei Montalto in Kalabrien, 15. August 1865.

**1. Akt.** Platz vor dem Dorf. Während der Ouvertüre hebt sich der Hauptvorhang und aus einem zweiten Vorhang tritt Tonio als Prolog, erklärt den Inhalt des Stückes auf ergreifende Weise, worauf das Vorspiel kurz endet und die Handlung beginnt. Auf einem Platze ist das primitive Theater der Dorfkomödianten aufgeschlagen. Diese selbst ziehen, in marktschreierischer Weise kostümiert, mit einem Eselwagen ein, vom Volke lustig empfangen. Tonio, der schon im Dorfe weilt, will Nedda beim Absteigen helfen, erhält aber dafür von Canio eine Ohrfeige und drückt sein Rachegefühl aus. Die Bauern fordern die Komödianten zu einem Trunk auf, was Canio und Beppo annehmen, während Tonio bei Nedda zurückbleibt. Auf den gutmütigen Spott des Volkes erklärt Canio mit furchtbarem Ernst, daß er als Bajazzo jeden Scherz verstehe, aber in der Eifersucht als Gatte keinen Spaß kenne. Sein heißes Temperament zeigt sich dabei in eminentester Art. Nedda, die ihrem Gatten nicht treu ist, bebt bei Canios Worten zusammen, singt aber, allein, um ihre Furcht zu zerstreuen, ein Lied: „Wie die Vöglein schweben". Als ihr der zurückgebliebene häßliche Tonio mit Liebesanträgen naht und zudringlich wird, schlägt sie ihn

mit der Peitsche, was ihn in neue Wut versetzt. Rache drohend geht er ab. — Silvio kommt zu Nedda; beide lieben sich und Silvio gewinnt die zaudernde Nedda durch seine starke Liebe, mit ihm in dieser Nacht zu entfliehen. Der lauschende Tonio ruft Canio und Beppo herbei und nur mit Mühe entrinnt Silvio unerkannt dem wütend nachsetzenden Bajazzo. Zurückgekehrt verlangt Canio, mit dem Dolch in der Hand, von Nedda den Namen ihres Geliebten. Da sie sich weigert, verhindert blos das Dazwischentreten Beppos und Tonios den Tod Neddas. Tonio flüstert Canio zu, daß der Bursche sicher zur Komödie zurückkommen würde, dann könne er ihn treffen. Verzweifelnd geht Canio daran, sich für die Vorstellung zu rüsten.

**2. Akt.** Vor versammeltem Volke beginnt die Komödie. Nedda sammelt im Kostüm der Colombine Geld ein und warnt den anwesenden Silvio. Dann beginnt das Spiel, in Verlauf dessen Canio aus der Rolle fällt, abermals von Nedda den Namen des elenden Verführers verlangt und als sie mit Spott antwortet, vom Tisch ein Messer ergreift, womit er die ins Publikum flüchtende Nedda ersticht. Als Silvio zu Hilfe eilen will, wendet sich Canio zu ihm, erkennt ihn und stößt den Dolch in sein Herz. Entsetzen ergreift alle, selbst Tonio sagt tonlos zu dem Volke, sie möchten nach Hause gehen, denn die Komödie sei aus.

---

## Der Barbier von Bagdad.

Komische Oper (Singspiel) in 2 Akten von Peter Cornelius.
Text vom Komponisten.

Personen: Der Kalif = Bariton. Baba Mustapha, ein Kadi = Tenor. Margiana, dessen Tochter = Sopran. Bostana, eine Verwandte des Kadi = Mezzosopran. Nureddin = Tenor. Abul Hassan, Barbier = Baß. — Die Handlung spielt in den Häusern Nureddins und des Kadi in Bagdad.

1859 wurde die Oper in Weimar zuerst aufgeführt und nicht beifällig aufgenommen, während sie sich heute größerer Wertschätzung erfreut.

**1. Akt.** Ein Zimmer bei Neureddin. Der kranke Nureddin schwärmt von Margiana und hofft von ihr Gesundung. Als Bostana ihm die freudige Nachricht bringt, daß Margiana ihn sehen will, läßt er einen Barbier holen, der in dem schwatzenden Abul erscheint. Nach verschiedenen Intermezzis, wobei Abul von der Liebe Nureddins zu Margiana hört, vollendet der Barbier endlich die Arbeit, ohne sich indessen wegzubegeben, da er selbst alleingelassen immer weiter schwatzt. Er will sogar Nureddin zu Margiana begleiten und dieser weiß keinen andern Rat, als Abul seinen

Dienern als Kranken zu übergeben, sodaß der Barbier auf einem Divan zurückgehalten wird.

**2. Akt.** Zimmer beim Kadi. Margiana ist selig, daß Nureddin kommt und ebenso freudig ist der Kadi, der seinen Freund aus Damaskus erwartet, welchem er Margiana als Weib zugedacht hat. Als der Kadi zum Gebet geht, kommt Nureddin, doch die Liebesfreude wird bald gestört; erst durch des Barbiers Gesang auf der Straße, dann durch Bostana, welche die Nachricht von der frühzeitigen Rückkehr des Kadi bringt. Nureddin versteckt sich, indem er in eine Kiste steigt; Abul stürzt herein, da er das Geschrei eines vom Kadi geschlagenen Dieners für Nureddins Rufe gehalten. Der Kadi verhindert die von Bostana gewünschte Fortschaffung der Kiste, das Geschrei hat Volk herbeigelockt und auf den steigenden Tumult erscheint auch der Kalif. — Abul klagt den Kadi des Mordes Nureddins an und als der Kalif die Kiste öffnen läßt, findet man den halb erstickten Nureddin. Auf das Verlangen des Kalifen vereinigt der Kadi das Liebespaar, während der für toll gehaltene Barbier als Märchenerzähler zum Herrscher gebracht wird.

---

## Der Barbier von Sevilla.

Komische Oper in 2 Akten von Rossini. Text nach dem gleichnamigen Lustspiel des Beaumarchais von C. Sterbini.

Personen: Graf Almaviva = Tenor; Bartholo, Arzt = Baß; Rosine, sein Mündel = Sopran; Basilio, Musikmeister = Baß; Marzelline = Sopran; Figaro = Bariton; Fiorillo, des Grafen Diener = Tenor. Ein Notar. Ambrosio, Bartholos Diener. — Ort: Sevilla. Zeit: 17. Jahrh.

Der Text ist von Paesiello, Isouard und Rossini komponiert, und obwohl die erste Oper zur Zeit über die Rossinische triumphirte, hat sich doch die letztere als allein lebensfähig erwiesen und gehört zum eisernen Bestand des Opernrepertoires. Zuerst aufgeführt in Rom 1816.

**1. Akt.** Sevilla, Platz vor Bartholos Haus. Almaviva bringt der geliebten, von Bartholo, der sie selbst des Geldes wegen heirathen will, eifersüchtig bewachten Rosine ein Ständchen („Sieh schon die Morgenröthe"). Als die Musikanten entlassen sind, naht trällernd Figaro (Arie: „Ich bin das Faktotum der schönen Welt"). Der Graf, der den lustigen Barbier kennt, gewinnt ihn für den Plan, zu Rosine zu gelangen (Duett: „Strahlt auf mich der Blitz des Goldes"). Figaro rät dem Grafen, sich als Soldat verkleidet Eingang zu verschaffen, betrunken zu stellen und bekommt reichen Lohn.

Verwandlung: Zimmer bei Doktor Bartholo. Kavatine Rosines: „Frag' ich mein beklomm'nes Herz". Sie

schreibt an den Grafen, den sie indessen nur unter dem Namen Lindoro kennt, ein Briefchen und verläßt das Zimmer, als Bartholo mit Basilio eintritt. Basilio erklärt, wie man den Grafen, den Bartholo in Verdacht hat, unschädlich machen kann (Arie: „Die Verleumdung ist ein Lüftchen"). Als sie gegangen, kommt Rosine und Figaro. Letzterer bittet um ein paar Zeilen für Lindoro, die Rosine schon geschrieben (Duett: „Also ich, meinst Du wirklich?"). Von Bartholo überrascht, weiß Rosine den alten Narren geschickt zu übertölpeln, aber er ist doch auf seiner Hut (Arie: „Einen Doktor meinesgleichen"). — Als die Bühne leer ist, will Marcelline durch die Ausgangsthür gehen, da tritt ihr der als Soldat verkleidete Graf entgegen und sie stürzt zu Bartholo, da sie an die fingierte Trunkenheit glaubt. Bartholo will den Soldaten zurückweisen, da er frei von Einquartierung ist, aber Almaviva spielt den Trunkenen weiter und bleibt. Er erreicht auch, Rosine zu sehen und flüstert ihr zu, daß er Lindoro sei, steckt ihr ein Briefchen zu, wofür Rosine dem aufhorchenden Bartholo den Wäschezettel giebt. Als auch Basilio, Figaro und Marcelline dazukommen, wird der Lärm so arg, daß die Ronde einschreitet. Während aber Bartholo glaubt, daß der Soldat nun zur Wache geführt wird, giebt sich Almaviva dem Offizier leise zu erkennen und er bleibt frei. Darüber vollständige Erstarrung Bartholos und Basilios, die beide von Figaro gehänselt werden.

**2. Akt.** Almaviva erscheint beim Doktor in einer anderen Verkleidung als Schüler und Stellvertreter des vorgeblich erkrankten Basilio, um Rosine Unterricht zu ertheilen. Um ihn aber nicht mit dem Mädchen allein zu lassen, läßt er sich während des Unterrichts von Figaro barbieren (Quintett: „Wie, Basilio! Ha, was seh' ich?"). Als plötzlich Basilio erscheint, läßt er sich durch eine gefüllte Börse von Figaro bestimmen, den Kranken zu spielen. Schließlich kommt aber Bartholo hinter die Schliche, treibt alle hinaus und läuft spornstreichs zu einem Notar, um den Ehekontrakt für sich und Rosine aufsetzen zu lassen. Die Bühne bleibt während einer Gewittermusik leer, dann steigen der Graf und Figaro zum Fenster herein und als Basilio mit dem von ihm gerufenen Notar kommt, wird er wieder bestochen und unterschreibt als Zeuge, wie Figaro, den von dem Notar ausgefertigten Ehekontrakt zwischen dem Grafen Almavia und Rosine. Der geprellte Doktor Bartholo wird zufriedengestellt, indem man ihm die Mitgift seiner Mündel überläßt.

## Baſtien und Baſtienne.

Singſpiel in 1 Akt von Mozart. Text nach dem Franzöſiſchen der Madame Favart von A. Schachtner, neu bearbeitet von Max Kalbeck.

Perſonen: Baſtien = Tenor. Baſtienne = Sopran. Colas = Baß. – Ort: Auf dem Lande. Zeit: 18. Jahrhundert.

Von Mozarts Jugendwerken (Mozart geboren 1756) „Das fürnehmſte Gebot" (1767), „Apollo et Hyacinthus" (1767), „Baſtien und Baſtienne" (1768), „La finta semplice" (1768), „Mitridate, re di Ponto" (1770), „Ascanio in Alba" (1771), „Il sogno di Scipione" (1772), „Lucio Silla" (1772), „La finta giardiniera" (ſiehe: „Die Gärtnerin", 1775), „Il re pastore" (1775) und „Zaide" (1779) ſind die beiden Opern „Baſtien und Baſtienne" und „Die Gärtnerin" neuerdings auf den deutſchen Bühnen erſchienen.

Baſtien und Baſtienne iſt textlich eine Art Parodie von Rouſſeaus „Devin du village", ſpielt auf dem Lande vor der Hütte des Wahrſagers Colas. Baſtienne will Colas um Rat fragen, da Phyllis ihr den geliebten Baſtien abſpenſtig macht. Er rät ihr, ſcheinbar Gleiches mit Gleichem zu vergelten. — Colas bearbeitet daraufhin den Baſtien, der aber Phyllis garnicht liebt, nun aber, da Baſtienne kommt, ebenſo Phyllis lobt, wie Baſtienne den vorgeſchobenen Damon. Bald aber ſind beide von ihrer gegenſeitigen Liebe wieder überzeugt und loben Colas, der ſie aufs Neue zuſammengebracht.

---

## Bärenhäuter (Wagner).

Oper in 3 Akten von Siegfried Wagner. Text vom Componiſten.

Perſonen: Hans Kraft = Tenor; Melchior Fröhlich = Baß; deſſen Töchter: Lene = Sopran, Gunda = Sopran, Louiſe = Sopran; Pfarrer Wippenbeck = Bariton; Nikolaus Spitz = Tenor; Anna = Mezzo-Sopran; Oberſt Muſſel = Baß; Kaspar Wild = Baß; der Fremde = Bariton; der Teufel = Baß-Buffo. Ort: in den Bayreuther Landen. Zeit: Dreißigjähriger Krieg.
München 1899.

**1. Akt.** Hans Kraft aus dem Kriege heimgekehrt, findet ſeine Mutter tot und keiner der Bauern will ihm Unterkunft geben. Er will es ſich erzwingen, allein der Teufel, der ihn belauſcht hat, lacht ihn aus und bietet ihm eine Stelle als Keſſelheizer in der Hölle. Er ſoll zunächſt ein Jahr dienen, dann bekommt er Gold, ſoviel er will, entflieht aber eine Seele, ſo muß er die Strafe erdulden, die der Teufel über ihn verhängt. Er beſchwört das nach kurzem Beſinnen und ſie fahren zur Hölle. Der Teufel zeigt ihm ſeine Arbeit und läßt ihn allein. Hans ſchürt das Feuer, als „der Fremde"

kommt und ihn zum Würfelspiel verleitet. Sie würfeln um die Seelen, Hans verliert alle. Der Fremde verspricht ihm, bevor er geht, ihm, wenn er seine Strafe verbüßt hat, mit Rat und That zu helfen. Mit furchtbarem Donnergebrause fährt der Teufel zur Hölle nieder und findet all seine Seelen entflohen. Er bestraft Hans furchtbar, indem er ihn teufelsähnlich, schwarz berußt durch die Welt wandern läßt. Erlösung kann er nur finden, wenn eine Maid sich in ihn verliebt und ihm drei Jahre die Treue hält. Auf des Teufels Geheiß kommen allerhand Fratzen, und verunstalten Hans.

**2. Akt.** Hans wird wegen seiner Ungestalt von den Bauern für den Teufel gehalten. Nur der Wohlgestalt seiner Füße verdankt er den Einlaß. Der Teufel hat ihm einen Sack gegegeben, aus dem ihm ungezähltes Gold fließt. Er ist sehr freigebig und bezahlt sogar des Bürgermeisters Zechschulden, der ihm zum Dank dafür eine seiner Töchter zum Weibe verspricht. In der Nacht will der Wirt den Sack stehlen, aber es kommen lauter Spuckgestalten heraus, vor denen er schreiend flieht. Hans befreit ihn lachend. Am anderen Morgen kommt der Bürgermeister mit seinen Töchtern, aber die beiden ältesten lachen den Bärenhäuter aus und singen ihm ein Spottlied vor. Louisel, die Jüngste, sieht die Thränen in seinem Auge und fühlt inniges Mitleid mit ihm. Sie teilt seinen Ring mit ihm und hängt ihn an einem Bande um den Hals. Wenn sie ihn drei Jahre getragen hat und das Gold nicht erblichen ist, so hat sie ihn erlöst. Hans warnt sie noch einmal, aber sie bleibt fest. Der Wirt hat sich die Bauern zu Hilfe geholt und sie dringen bewaffnet auf den Teufelsgesellen ein. Nur auf Louisels Bitten geben sie ihn frei.

**3. Akt.** Die drei Jahre sind verronnen. Die Teufel bemühen sich, Hans seine alte Wohlgestalt wiederzugeben. Nur im Traum kann er der Versuchung noch unterliegen, allein es mißlingt und erwachend hält er den glänzenden Ring in der Hand. Nun ist er erlöst. Er hat drei Wünsche beim Teufel frei. In einer Glücksstimmung wählt er sie billig. Bei verhängter Bühne folgt nun ein Orchesterzwischenspiel. Beim Aufgehen des Vorhangs sieht man Hans und den Fremden vorbeiwandern. Der Fremde giebt ihm den einst versprochenen Rat, die Plassenburg vor dem Wallensteiner zu retten. Hans befolgt ihn auch und wird zum ruhmbedeckten Befreier von Burg und Stadt. Im Orchester wird sein Kommen durch ein Motiv angedeutet. Er findet Louisel treu und seiner harrend. Unerkannt naht er ihr, als sie erfährt, wer er ist, sinkt sie ihm jubelnd als seine Braut in die Arme. Die Bauern erkennen ihn wieder und ein fröhlicher Chor leitet zum Ende.

## Bärenhäuter (Mendelssohn).

Oper in 3 Akten von Arnold Mendelssohn, Dichtung von Hermann Wette.

Personen: Ruppert, ein Bauernknecht; Frieder, Gastwirth und Dorfschulze; Anna, seine Tochter; Junker Kunz von Knausen; der Satan; Frau Hallja, seine Großmutter. – Ort: Ein niederdeutsches Dorf und die Hölle. Zeit: Mittelalter.

**1. Akt.** Zunächst hat er es auf Ruppert und Anna abgesehen, die in der Küche beschäftigt sind (Duett, „Kaum noch, daß der Hahn gekräht.") Das Mädchen weist Rupperts Werbungen neckend zurück; er fürchtet, daß ihr Vater sie an Kunz von Knausen verkaufen wolle, und beide machen sich über den alten, geckenhaften Junker lustig.. In der Ueberzeugung, daß Anna ihn liebt, bricht Ruppert in lauten Jubel aus („Hurrah, sie liebt mich!") wird aber von dem mit Knausen und anderen Gästen eintretenden Frieder, den er ohne weiteres als Schwiegervater anredet, arg angelassen. Als nun Anna gar in ihrer schüchternen Angst es nicht wagt, für ihn einzutreten, gerät er in solche Wut, daß Frieder ihn mit Schimpf und Schande aus dem Hause jagt. Draußen trifft er Satan und geht auf dessen Vorschlag ein, ihm ein Jahr in der Hölle zu dienen, dann wolle er ihm zur Rache verhelfen. Er muß außerdem schwören, sich weder zu waschen, Haar, Bart und Nägel zu schneiden, noch sich umzuziehen; nur der Kuß einer reinen Jungfrau vermag ihn vom Bunde mit der Hölle zu lösen. Trotz der Warnungen der guten Geister willigt er ein, nachdem ihm der Teufel im Zauberspiegel Anna im Arme des Junkers gezeigt hat; des Teufels Gesellen hüllen ihn in eine Bärenhaut und legen sein Wamms an den Teich, damit Anna denken soll, er habe sich ertränkt. Unter Donner und Blitz fahren beide in die Hölle.

**2. Akt.** Höllenküche mit großen Kesseln, unter denen Feuer lodert. Ruppert, jetzt ein schmutziger, zotteliger Bärenhäuter legt Holz unter und verrichtet andere derartige Arbeiten (Lied: „In seiner Werkstatt"), die Höllenmädchen warnen ihn vor Frau Hellja, und diese verbietet ihm das Singen. Ihm ist das Leben in der Hölle leid geworden und er will zur Erde zurück; sie lacht ihn aus: er wisse nicht, wie er aussehe, sonst würde er es nicht thun, denn Anna würde ihn fliehen, sobald sie ihn sähe. Schließlich zeigt sie ihm sogar Annas Bild und bestärkt ihn dadurch nur noch in seinem Entschlusse, zur Erde zurückzukehren. — Hölliſches Ballet mit Chören. — Ruppert

erklärt dem Teufel, daß der Pakt aus sei, und fordert seinen Lohn: die verheißene Macht, sich an seinen Feinden zu rächen. Satan lacht ihn aus und meint, dann müsse er selber ein Teufel werden; doch zeigt er ihm Frieder und den Junker, die inzwischen verdorben und gestorben sind, in ihren Höllenqualen. Erschüttert bereut Ruppert es, daß er sich von Gott abgewendet hat, und fleht um Erbarmen; er will seine Sünden abbüßen, verzichtet auf jeden weiteren Lohn und will versuchen, durch den Kuß einer reinen Maid erlöst zu werden. Zum Schlusse zeigt ihm Satan aber noch sein Bild im Spiegel, und erschrocken bricht er zusammen.

**3. Akt.** Am Dorfteiche. Die Dorfbewohner feiern das Erntefest. (Chor: „Die Saaten, sie fielen.") Ruppert, vom Teufel gefolgt, tritt herzu; alle laufen erschrocken fort. Satan, in dem sicheren Glauben, daß kein Mädchen sich finden werde, die ihn befreit, verhöhnt ihn und hofft, ihn bald wieder in der Hölle zu sehen. Ruppert wirft sich verzweifelt zu Boden, da ertönt wieder der Gesang der guten Geister („Schweife nicht in weite Fernen") und ergriffen faltet er die Hände zum Gebete. Bleich und vergrämt naht Anna sich; er verbirgt sich im Schilfe des Teiches. Sie will in den Tod gehen und singt ein Abschiedslied („Somer verschied") da hört sie ihren Namen rufen. Sie erkennt Rupperts Stimme und gesteht, daß sie ihn nie vergessen habe — meint sie doch, daß es nur die Stimme seines Geistes sei. Ruppert erzählt ihr, was er erlebt und geduldet hat, und verzweifelt eilt sie zum Wasser, um sich hinein-zustürzen. Da tritt er ihr entgegen, entzückt will sie sich in seine Arme werfen, aber Satan wirft volles Mondeslicht auf ihn, und ohnmächtig sinkt bei seinem Anblicke sie zusammen. Satan fährt mit ihm zur Hölle zurück.

Verwandlung. In der Hölle. Ruppert liegt schlafend da, von bösen Geistern bewacht, die ihn wegen seines Schicksals verhöhnen, während die guten Geister von der Höhe herab ihm tröstende und glückverheißende Worte zurufen. Von außen her erklingt Annas Stimme, die zu Gott fleht, daß er Ruppert den Kampf siegreich bestehen lassen möge. Hellja, jetzt in der Gestalt eines dämonisch-wilden Weibes, sucht sie zu verscheuchen; vor ihrem Winke verschwinden die Geister, die Uhr schlägt zwölf, es wird dunkel. Auf ihre Bitte an den Herrn der Tiefe steht sie dann plötzlich als strahlend-schöne Liebesteufelin vor Ruppert, der eben erwacht und von dem Anblicke wie geblendet ist. Mit allen Listen der Verführung sucht sie ihn zu umgarnen, um ihn mit Satans Hilfe auf ewig der Hölle zu unterjochen, („Komm, Holder, komm") und Ruppert ist nahe daran, der Versuchung nachzugeben. Unter dem begleitenden Gesange der guten Geister ermannt er sich jedoch:

(„Meine Seele ruht in Gott!“) das Höllenthor springt auf und in strahlendem Glanze erscheint Anna.. Rasch schreitet sie auf ihn zu, küßt ihn mit verschlossenen Augen auf den Mund, worauf die häßliche Hülle sofort von ihm abfällt, und führt ihn mitten zwischen den wie erstarrt dastehenden Teufeln hindurch zur Hölle hinaus, die rasch in den Abgrund versinkt. Am Dorfteiche finden sich die Liebenden wieder, und unter Glockenklang und Chorgesang der guten Geister schreiten beide der Kirche zu.

---

## Beatrice und Benedict.

Oper in 2 Akten von Hektor Berlioz. Text, nach Shakespeares Lustspiel „Viel Lärm um Nichts“, vom Komponisten.

Personen: Don Pedro = Baß. Leonato = Baß. Hero, dessen Tochter = Sopran. Beatrice, dessen Nichte = Sopran. Claudio, Offizier Don Pedros — Bariton. Benedict, Offizier = Tenor. Ursula, Heros Gesellschafterin = Alt. Somarona, Kapellmeister = Baß. — Ort: Messina, von Mittag bis Nachts. Zeit: 17. Jahrhundert.

**1. Akt.** Park. Don Pedro kehrt aus siegreichem Kampf zurück und wird von Leonato, Hero und Beatrice, wie von dem Volke jubelnd empfangen. Mit Freuden sieht Hero ihrem Geliebten Claudio entgegen, mit weniger angenehmen Gefühlen Beatrice dem streitsüchtigen Benedict. — Claudios Vermählung soll in der Nacht stattfinden, Benedict aber weist alle Anerbieten, auch in die Ehe zu treten, schaudernd zurück. Pedro, Leonato und Claudio machen sich aber den Spaß, Benedict glauben zu machen, daß Beatrice ihn liebe, während Hero und Ursula Beatrice dasselbe von Benedict beigebracht haben. Jetzt wandelt sich die Stimmung und sowohl Beatrice als Benedict schwärmen von Liebe.

**2. Akt.** Saal. Hero wird als Braut geschmückt und in die Kapelle geführt. Zu der einsam zurückbleibenden Beatrice kommt Benedict. Nachdem sie sich verständigt, kehrt der Hochzeitszug zurück, und als Claudio und Hero den Ehevertrag unterzeichnen, kehren sich Beatrice und Benedict nicht an den Spott der Freunde und unterschreiben ebenfalls einen Ehevertrag.

---

## Die Beichte.

Oper in einem Aufzuge von Ferdinand Hummel. Text von Axel Delmar.

Personen: Jacinto Herrera, ein Eremit = Tenor; Manuel, Mönch = Bariton; Beata = Sopran. — Ort: Portugiesische Felsenküste. Zeit: Anfang des 19. Jahrhunderts.

Felsenhöhle Jacintos. Dieser bittet, verzweifelt über seine Einsamkeit und von Gewissensbissen geplagt, an den Tod. Er bricht, vom Fieber gepackt, zusammen. Manuel und Beata treten auf. Diese will seinen Segen erbitten. Jacinto hält sie in heißen Fieberträumen für das von ihm in der Jugend geliebte Weib, mit der er seinen Freund Manuel, den er jetzt auch nicht wiedererkennt, hintergangen hat..

Manuel, der inzwischen Priester geworden ist, will die letzte Beichte Jacintos entgegennehmen. Die Musik begleitet die Verwandlung in Jacintos Herz und seine Beichte kommt scenisch zur Gestaltung. Er ist zwanzig Jahre jünger. Beata erscheint und wirbt um seine Liebe. Als er sie zurückstößt, gesteht sie ihm, daß er der Vater ihres Kindes sei und stirbt nach diesem Geständnis. Das Orchester geht von dem Liebesrhema in das Todesthema der ersten Scene über. Manuel ist gerührt, Jacinto umarmt seine Tochter Beata und stirbt.

---

## Die beiden Schützen.

Oper in 3 Akten von Lortzing (zuerst unter dem Titel: „Die beiden Tornister"). Text nach dem französischen Vaudeville „Les deux grenadiers" vom Komponisten.

Personen: Wall, Amtmann = Baß. Karoline, seine Tochter = Sopran. Wilhelm, sein Sohn, Soldat im 1. Schützenbataillon unter dem Namen Wilhelm Stark = Bariton. Peter, sein Vetter = Tenorbuffo. Busch, Gastwirt = Baß. Suschen, seine Tochter = Sopran. Gustav, sein Sohn, Soldat im 3. Schützenbataillon = Tenor. Jungfer Lieblich, Haushälterin = Mezzosopran. Schwarzbart, Dragoner = Baßbuffo. Barsch, Unteroffizier = Bariton. — Ort: Ein Landstädtchen.

**1. Akt.** Busch erwartet nach langer Zeit seinen Sohn Gustav von den Soldaten zurück. Die Bauern teilen seine Freude. Er läßt durch Jungfer Lieblich auch den Amtmann Wall einladen. — Wilhelm, der verschollene Sohn Walls, kommt als Soldat und verscheucht die jungen Mädchen Karoline und Suschen. Als er seinen Tornister öffnet, um ein Lotterieloos herauszunehmen, das soeben gewonnen hat, entdeckt er und sein Freund Schwarzbart, daß der Tor-

nister mit einer darin befindlichen Brieftasche nicht der seinige, sondern vertauscht ist. Daraus entwickelt sich nun die komische Handlung der Oper, da die Brieftasche die Papiere Gustavs enthält, für den Wilhelm nun genommen wird.

**2. Akt.** Wilhelm hat sich in Suschen verliebt, seinen Vetter Peter durchgeprügelt, als der richtige Gustav ankommt, der seinen Vater als Sohn begrüßen will und für verrückt gehalten wird, umsomehr, da sich aus den Papieren im Tornister ergiebt, daß er Wilhelm Stark heiße. Er wird, da das Gefängnis nicht aufnahmefähig ist, in Buschs Gartenhaus eingesperrt.

**3. Akt.** Amtmann Wall glaubt jetzt, da er die Papiere gelesen, daß Gustav sein Sohn Wilhelm sei, obwohl sie noch nichts verraten, treten Schwarzbart und Wilhelm in Aktion, und im Verein mit Karoline, welche Gustav liebt, zwingen sie den Tölpel Peter, den Gefangenen zu befreien.

Verwandlung: Zimmer im Gartenhause. Gustav weilt im Finstern. Karoline kommt, um ihm zur Flucht behilflich zu sein. Sie verbirgt sich, als Wilhelm kommt, der Suschen hierher bestellt hat. Da er mit Gustav zusammen gefunden wird, trennt sie der wachthabende invalide Unteroffizier Barsch und nimmt aus Versehen Gustav mit fort, sodaß Wilhelm bleibt. Wilhelm findet Karoline, und als nun Suschen naht, verlöscht diese das Licht, da sie Schritte hört. Im Finstern erscheinen Peter, Jungfer Lieblich, Schwarzbart und Gustav, und es beginnt ein tolles Spiel in der Dunkelheit. Endlich kommt Licht in die ganze Sache, da die übrigen Personen auftreten, und nun klären sich zur allgemeinen Zufriedenheit die Mißverständnisse auf.

---

## Belisar.

Oper in 3 Akten von Donizetti. Text nach dem gleichnamigen Schauspiel von Schenk von S. Cammarano.

Personen: Justinian, oströmischer Kaiser = Baß. Belisar, sein Feldherr = Bariton. Antonina, dessen Gattin = Sopran. Irene, seine Tochter = Sopran. Eudoxia, deren Freundin = Sopran. Alamir, Belisars Gefangener = Tenor. Eutropius, kaiserlicher Leibwächter = Tenor. Eusebius, Gefängnisaufseher = Baß. Ottavio, Führer der Alanen = Tenor. – Ort: Byzanz und Hämusgebirge. – Zeit: 6. Jahrhundert v. Chr.

**1. Akt.** Halle im Kaiserpalast. Irene eilt mit dem Volk jubelnd dem siegreich heimkehrenden Belisar entgegen. Antonina haßt ihren Gatten, weil Belisars Sklave Proklus im Tode bekannt, daß er auf Befehl seines Herrn ihren Sohn als Kind am Meeresstrande ausgesetzt und getötet

habe. Justinian begrüßt seinen Feldherrn und gewährt Belisars Bitte um Freilassung der Gefangenen. Der gefangene Alamir aber bleibt bei Belisar zurück, den er verehrte (Rezitativ und Duett: „Was seh' ich, verschmähet Alamir meine Gabe?"). Der Feldherr reicht ihm die Hand und nimmt ihn für den verlorenen Sohn an. Irene beglückwünscht ihren Vater, aber schon hat Antonina ihr Rachewerk begonnen, Belisar bei Justinian verleumdet, und als Hochverräter wird der Unschuldige auf das Zeugnis des eigenen Weibes ins Gefängnis geworfen.

**2. Akt.** Platz vor dem Gefängnis. Alamir klagt mit dem Chor um Belisar, den seine Feinde, ein Wort des Kaisers falsch deutend, des Augenlichts beraubten. Alamir gelobt Rache (Arie: „Zittere, Byzanzia, ich will vergelten"). Irene kommt als Jüngling gekleidet, um ihrem, dem Gefängnis entlassenen Vater ein Führer zu sein (Duett: „O du, der in dem grauenvollen Dunkel").

**3. Akt.** Im Gebirge. Irene führt Belisar in eine Höhle, da Waffenlärm ertönt. Alamir führt das Heer der Alanen gegen Byzanz. Belisar tritt ihm entgegen und erkennt jetzt an einem Amulet in Alamir seinen Sohn. Der Jüngling tritt auf des Vaters Mahnung aus dem Heer der Feinde, und die Alanen ziehen unter Ottavios Führung nach Byzanz, denn sie fürchten das Kaiserheer nicht mehr, da Belisar es nicht leitet.

Verwandlung: Saal in Byzanz. Antonia, von Reue ergriffen, gesteht dem Kaiser, daß sie gegen Belisar falsch gezeugt. Da kommt Irene mit der Nachricht des Sieges und daß Alamir ihr Bruder sei, der am Leben geblieben, nachdem der Sklave ihn ausgesetzt. Der blinde Belisar hat die Schlacht geleitet und die Alanen, welche schon Byzanz bedrohten, geschlagen; aber ein Pfeil hat ihn tötlich getroffen. Man bringt ihn sterbend, und der trauernde Kaiser gelobt, Alamir und Irene ein Vater zu sein.

---

## Belmonte und Konstanze.

(Siehe: Die Entführung aus dem Serail.)

---

## Benvenuto Cellini.

Oper in 3 Akten von Berlioz. Text von du Wailly und Barbier.

Personen: Kardinal Salviati = Baß. Balducci, Schatzmeister des Papstes = Baß. Teresa, seine Tochter = Sopran. Benvenuto Cellini, Florentinischer Goldschmied = Tenor. Ascanio, sein Lehrling = Mezzosopran. Francesco u. Bernardino, Künstler in Cellinis Werkstatt = Tenor und Baß. Fieramosca, Bildhauer des Papstes = Bariton. Pompeo, ein Raufbold = Bariton. – Ort: Rom 1532 unter Papst Clemens VII.

Die Oper wurde 1853 in Paris und London mit wenig Beifall aufgeführt, hatte aber in Weimar 1855 und in Hannover 1879 desto größeren Erfolg. Dauernd hat sich die Oper zwar nicht gehalten, doch wird sie an hervorragenden Bühnen von Zeit zu Zeit aufgeführt.

**1. Akt.** Saal im Palast Balducci. Cellini will Teresa Balducci entführen, die Verabredung wird aber von Fieramosca belauscht. Als Balducci kommt, vermag Cellini zu entfliehen, während Fieramosca als Eindringling behandelt wird.

**2. Akt.** Eine Taverne. Cellini erhält vom Papst Geld, seine Statue des Perseus zu vollenden. Da aber die Summe zu gering ist, so wollen die Schüler Cellinis an Balducci, dem Schatzmeister des Papstes, Rache üben. Cellini hat mit Teresa verabredet, unter einer Maskenkleidung zu entfliehen, was aber Fieramosca, der den Goldschmied haßt und abermals belauscht hat, vereiteln will.

Verwandlung: Maskentreiben auf dem Colonnaplatz. Als Fieramosca mit Pompeo in denselben Maskenkostümen kommen, wie Cellini und sein Lehrling Ascanio, entsteht Streit zwischen den Männern, Cellini ersticht den Pompeo, vermag aber zu entkommen, und man ergreift an seiner statt den Fieramosca.

**3. Akt.** Vor der Gießerei Cellinis. Cellini kommt mit Mönchen in einer Prozession, aber Balducci will Teresa zwingen, Fieramosca zu heiraten. Ein Kardinal will Cellini wegen Mordes verhaften, umsomehr als der Perseus nicht vollendet ist. Da läßt Cellini, weil es an Metall fehlt, alle seine Kunstwerke eingießen und den Guß vollenden. Er zerschlägt die Form, und alle stehen entzückt vor dem Meisterwerk des Perseus. Das bringt dem Meister Verzeihung.

## Die Bettlerin von Pont des Arts.

Lyrische Oper in 3 Akten und einem Vorspiel von Karl von Kaskel, Text nach Hauffs Novelle von F. W. Ludwig.

Personen: Frh. v. Faldern, ein deutscher Landedelmann = Baß; Fröben, sein Universitätsfreund = Tenor; Josepha, eine Bettlerin, später Falderns Frau = Sopran; Don Pedro y Genos, spanischer Oberst a. D. = Bariton; Dingo, sein Diener = Tenor; Arabella, Zofe = Sopran. Ort: Paris und Deutschland. Zeit: 1823.

**Vorspiel.** Paris, am Pont des Arts. Josepha steht frösteln und bettelnd an einem Brückenpfeiler und sinkt ein Lied („Laßt was ich litt"); Fröben und Faldern gehen vorüber und reichen ihr eine Gabe, treten aber dann bei Seite, um einem Maskenzuge Platz zu machen. (Chor: „Mag der Sturm die Lichter löschen.") Als er vorüber ist, macht der mitleidige Fröben sich wieder an die Bettlerin heran, und diese schildert ihre und ihrer Mutter Not, will aber weder ihre Wohnung nennen, noch ihr Gesicht zeigen. Fröben giebt ihr nochmals Geld, und sie läuft rasch weg, um Arzenei für ihre kranke Mutter zu kaufen. Faldern lacht den Freund aus und meint, er hätte sich von einer Dirne begaunern lassen. Die wegeilende Bettlerin wird von jungen Burschen belästigt; Fröben vertreibt diese und bittet Josepha, ihm Vertrauen zu schenken. Sie erzählt ihm („In meiner Kindheit"), daß ihr Vater in Spanien gekämpft habe, aber aus dem Kriege nicht zurückgekehrt sei. Mutter und Kind blieben im Elend zurück. Fröben zieht sie gerührt an sich (Duett: „O Kind, laß' mich in deinen Augen") und bittet sie, mit ihm nach Deutschland zu kommen, wo auch ihre Mutter geboren ist. Er küßt sie, schenkt ihr einen Ring und verspricht, zu Ostern wieder zu kommen.

**1. Akt.** Hotel in Stuttgart. Diego und Arabella sind in Liebeleien vertieft, er schwärmt ihr etwas von Spanien vor („Dort im Lande der Kastanien") und erzählt ihr, daß Don Pedro für Napoleon in Spanien gefochten habe. Als er nach langer Krankheit nachhause zurückkehrte, war seine Frau mit einem andern durchgegangen und hatte ihr Kind mitgenommen. Der Verführer sollte bei Marengo gefallen sein, und nun suche Don Pedro die ganze Welt nach Frau und Tochter ab. Hier in Stuttgart habe er das Bild einer Frau entdeckt, die seiner Gattin ähnlich sehe, und führe nun eine Copie davon überall mit sich herum. — Don Pedro erscheint und erklärt, er werde in einer Stunde nach Mainz abreisen. Vorher empfängt er aber noch Fröben, von dem er eine Spur erhalten hat. Dieser

erzählt ihm sein Pariser Abenteuer und fügt hinzu, daß er die Bettlerin bei seiner Wiederkehr nicht wieder angetroffen habe.

Verwandlung. Gemäldegallerie in Stuttgart. Der als Sonderling hier schon bekannte Don Pedro kommt mit Fröben, um noch einmal das Bild zu sehen, und verabschiedet sich dann. Fröben bleibt zurück, merkt nicht, daß er eingeschlossen wird, und hat eine Vision, wobei die Personen, die auf den Bildern dargestellt sind, aus ihren Rahmen treten und sich im Saale zu Gruppen ordnen. Endlich kommt Faldern, der den Freund gesucht hat, mit Saaldienern und befreit ihn. Fröben ist bleich und wie geistesabwesend; Faldern will ihn mit auf sein Gut nach dem Rhein nehmen.

**2. Akt.** Park in Falderns Gut. Fröben glaubt in Falderns Frau Josepha eine Aehnlichkeit mit der Bettlerin zu finden, Faldern bestreitet es und erklärt, sie habe keine Mutter, sondern eine Gräfin Landskron zur Beschützerin gehabt. Auch Josepha ist bei Fröbens Anblicke befangen, besonders als er ihr von einer Jugendschwärmerei für ein Bild erzählt; sie hat ihn gleich wiedererkannt und ist beglückt über seine Treue. Die derbe und mehr auf das Wirkliche ggerichtete Natur paßt schlecht zu Fröbens schwärmerischer Stimmung, und Josepha muß vermitteln. Zahreiche Gäste komlmen (Chor: „Gute Nachbarschaft") und beginnen ein Reimspiel; da Fröben verliert, muß er ein Lied singen. („Was ist ein Kuß?") Es fällt so anzüglich aus, daß Josepha in Ohnmacht sinkt; Faldern blickt mißtrauisch auf Fröben, die Gäste entfernen sich, Josepha kommt wieder zu sich und wird von ihrem Gatten ins Haus geführt. — Später betritt sie, das Gesicht von einer Maske bedeckt, wieder den dunklen Garten, (Lied: „Du Ringlein, das er mir gab"), wo Fröben in einer Laube entschlummert ist und steckt ihm seinen Ring an den Finger. Er erwacht, stellt sich aber schlafend, und als sie sich über ihn beugt, zieht er sie rasch an sich. Sie erzählt, daß damals ihre Mutter in derselben Nacht gestorben wäre; eine Gräfin Landskron hätte sie vor der Verzweiflung bewahrt und mit sich genommen, vier Jahre lang hätte sie ihn gesucht und schließlich resigniert Falderns Werbung angenommen. Zum letzten Abschied umarmen sich Beide noch einmal (Duett: „Es bleichen die Sterne") da tritt Faldern, der sie belauscht hat, hervor und fährt Josepha mit harten Worten an. Als er von Fröben hört, daß sie jene Bettlerin sei, weist er sie zornig aus dem Hause. Es kommt zu einem heftigen Auftritte, der schließlich zum Zweikampfe führt; Fröben wird verwundet und sagt Faldern, daß der eben herbeistürzende Don Pedro Josephas Vater sei. Faldern geht in voller Wut auch gegen Don Pedro los, fällt in dessen Degenspitze und sinkt tot zu Boden.

**3. Akt.** Terrasse am Schloß der Gräfin Landskron am Rhein. Don Pedro will nach Spanien zurückkehren und bedeutet Fröben, daß Josepha doch nie die seine werden könne noch wolle. Fröben hofft auf eine spätere Sinnesänderung; Don Pedro glaubt nicht daran. (Arie: „Ists Unrecht, was ich thu?") Er sieht Josepha kommen und zieht sich zurück. (Arie der Josepha: „Ohne Klagen.") Die Landleute treten zum Winzerfeste an, (Chor: „Dreht euch im Kreise") dann bleiben Fröben und Josepha allein, um Abschied zu nehmen. (Duett: „Nicht was das Weltall baut.") Aber sie kann ihn nicht lassen und wirft sich jubelnd an seine Brust; auch Don Pedro ist besiegt und giebt seine Einwilligung zum Bunde fürs Leben. (Schlußgesang: „Ueber allem ist die Liebe.")

---

## Die bezähmte Widerspenstige.

(Siehe: Der Widerspenstigen Zähmung.)

---

## Der Blitz.

Komische Oper in 3 Akten von Halévy. Text nach dem Französischen von Friederike Elmenreich.

Personen: Madame Darbel, eine junge Witwe = Sopran. Henriette, ihre Schwester = Sopran. Georg, deren Vetter = Tenor. Lionel Offizier = Tenor. – Ort: Eine Plantage bei Boston. Zeit 1797.
Diese nur von 4 Personen darzustellende Oper hat keinen Chor.

**1. Akt.** Zimmer im Landhause Henriettes. Henriette freut sich der Landluft, während Madame Darbel nur im Stadtgewühle Vergnügen findet. Ihr Vetter Gustav kam von England und teilt ihnen mit, daß der Oheim sie drei zu Erben eingesetzt unter der Bedingung, daß er nach 21 Tagen verheiratet sei und zwar mit einer der beiden Kousinen (Arie und Terzett: „Ich berief von Englands Küsten"). — Die Damen verlassen Gustav, er schläft ein, bis ein Gewitter ihn weckt. Henriette führt Lionel ein, den sie gerettet, als ein Blitz sein Boot zerschlug. Der Blitz hat dem Armen das Augenlicht geraubt.

**2. Akt.** Arie der Madame Darbel: „Ja, eben traf ich ein". Sie wird von ihren Verwandten begrüßt. Lionel kommt; sich allein wähnend, klagt er sein Leid (Quartett: „Nur leise, nur still, er erscheint"). Henriette, die ihn lieben gelernt hat, wendet sich zu ihm (Duett: „Ach, wie mein Herz Wonne durchbebt"). Inzwischen kommt die Zeit, da der Arzt den Blinden operiert. Die Kur gelingt, Lionel

sieht und hält Madame Darbel, zum Schmerz Henriettens für seine Geliebte.

**3. Akt.** Lionel hat seinen Irrtum eingesehen (Arie: „Als noch die Nacht mit dichtem Schleier"). Henriette kehrt von Boston, wohin sie geflohen, zurück und hält Lionel und ihre Schwester für ein Paar. Freude herrscht, als die Aufklärung erfolgt und während Henriette und Lionel sich liebend vereinen, reicht Madame Darbel ihrem Vetter Gustav die Hand.

---

## Bohême (Leoncavallo).

Lyrische Oper in 4 Akten von Luggiero Leoncavallo. Text vom Componisten. Deutsch von Ludwig Hartmann.

Personen: Marcell = 1. Tenor. Rudolf = 1. Bariton. Schaunard = 1. Bariton. Gustav Collin = 2. Bariton. Barbemuche = Baß comique. Graf Paul = 2. Bariton. Gaudenzio = 2. Tenor. Durand = 2. Tenor. Ein Herr aus der ersten Etage = 2. Tenor. Ein Müßiggänger von der Straße = 2. Tenor. Musette = 1. Mezzo. Mimi = 1. Sopran. Euphemia = 2. Mezzo. — Ort: Paris. Zeit: Vom Christabend 1837 bis ebenda 1838.

**1. Akt.** Im Café Momus. Der Wirt Gaudenzia versucht vergeblich die Bohème-Gäste, die nie bezahlen wollen und allerlei Unfug anrichten, herauszuweisen. Während dieses Gespräches wird wiederum ein Schabernack entdeckt, den die Bohèmiens ihm gespielt haben. Sie setzen sich dann zu einem Diner nieder, währenddessen Musette die Canzone (Mimi heißt meine süße Blonde) singt. Als sie die Rechnung bezahlen sollen, haben sie natürlich kein Geld dazu. Es kommt zwischen ihnen und dem Wirt, der das Küchenpersonal zu Hilfe ruft, zu einem komischen Kampf, der durch Barbemuche, der sich zur Bezahlung der Zeche erbietet, beendigt wird.

**2. Akt.** Hofraum in Musette's Haus. Musette's Liebhaber hat sie verlassen und weigert sich weiterhin für sie zu bezahlen. Infolgedessen wird ihr Mobiliar gepfändet und auf den Hof hinabgetragen. Als dies geschehen ist, kommt sie nach Hause; sie erwartet Gäste und kann sich nicht anders helfen, als daß sie dieselben auf dem Hofe empfängt. Hier feiern die in großer Zahl heranziehenden Bohèmiens ein tolles Fest. Die aus dem Schlaf aufgeschreckten Bewohner des Hauses verbitten sich vergeblich diesen Lärm. Schließlich kommt es zwischen den beiden Parteien zu einer allgemeinen Schlägerei.

**3. Akt.** Marcells Mansarde. Musette, die den Hunger und die Entbehrungen nicht länger ertragen kann, will entfliehen. Mimi, die während der Festlichkeit auf dem Hofe sich von dem Grafen Paul hat entführen lassen, kehrt von Liebe zu Rudolf getrieben zurück. Musette will sie vergeblich bestimmen

gleich wieder fortzugehen. Marcell und Rudolf weisen beide hinaus.

**4. Akt.** Rudolfs Mansarde. Mimi kommt todkrank zu Rudolf zurück. Musette, die zufällig auch wieder hinkommt, opfert ihre Schmucksachen, damit für Mimi Feuer im Ofen gemacht werden kann. Während die Weihnachtsglocken läuten, stirbt Mimi

---

## Bohême (Puccini).

Scenen aus Henry Murgers „Vie de Bohème" in vier Bildern von Giacomo Puccini. Text von G. Giacosa und L. Illica. Deutsch von Ludwig Hartmann.

Personen: Rudolf = Tenor; Schaunard = Bariton; Margell = Bariton; Collin = Baß; Bernard = Baß; Mimi Sopran; Musette = Sopran; Parpignol = Tenor; Alcindor = Baß; Sergeant bei der Zollwache = Baß. Ort: Paris. Zeit: Um 1830.

**1. Bild.** Mansarde. Marcell malt, Rudolf blickt zum Fenster hinaus. Da sie keine Feuerung haben, heizen sie mit Rudolfs Dramen-Manuskript. Collin tritt frierend ein, ihm folgen zwei Burschen mit Speisen, Brennholz und Zigarren. Schaunard, der nachkommt, erzählt, woher sein Reichtum stammt. Keiner hört ihm zu, sie fallen über das Essen her, das Schaunard wegräumt und ihnen nur den Wein überläßt. Während sie zechen, kommt Bernard, der Hauswirt, um von Marcell die Miete zu erheben. Durch Schmeicheleien dazu getrieben, berichtet er in der Trunkenheit seine Liebesabenteuer. Als er aber erzählt, er sei auch verheiratet, werfen sie ihn in komischer, moralischer Entrüstung heraus. Das Geld teilen sie, um es im Quartier latin zu verthun. Rudolf bleibt allein zurück, um zu arbeiten. Es klopft, Mimi, der auf der Treppe das Licht verlöscht ist, bittet Rudolf, es ihr anzuzünden. Dann geht sie, kehrt aber nach wenigen Minuten zurück, da sie ihren Schlüssel vergessen hat. Nun verlöschen beide Kerzen; sie tappen im Dunkeln, Rudolf findet den Schlüssel, den er einsteckt. Sie erzählen sich in zwei Liedern ihre bisherigen Schicksale. („Wer ich bin? So hört!" und „Gut, man nennt mich schlichtweg Mimi.") Die wartenden Freunde rufen ihn ungeduldig. Er will mit Mimi allein zu Haus bleiben, aber sie entschließt sich, mit ihm zu gehen. Sie singen ein Liebesduett, während sie hinausgehen.

**2. Bild.** Quartier latin. Großes Gedränge auf der Straße, Verkäufer preisen ihre Waren an. Die Freunde gehen in ein Café; während sie essen kommt Musette, ehemals Marcells Geliebte, mit ihrem reichen Verehrer Alcindor. Sie sucht

Marcells Aufmerksamkeit zu erregen, was ihr nach vieler Mühe gelingt. Sie heuchelt Fußschmerzen, und schickt Alcindor, um ihn loszuwerden, zum Schuhmacher. Während eines großen Ensembles fallen Musette und Marcell einander in die Arme. Nun wollen die Freunde die Rechnung bezahlen, finden aber zu ihrem Entsetzen Schaunards Reichtum verschwunden. Musette läßt die ganze Zeche für Alcindor aufschreiben. Man hört die Wachtparade kommen, der alles zustürzt. Marcell und Collin tragen Musette unter dem Beifall der Menge. Als alles fort ist, kommt Alcindor mit den Stiefeln und sucht Musette. Der Kellner überreicht ihm die Rechnung, bei deren Anblick er entsetzt in einen Stuhl fällt.

**3. Bild.** An der Zollschranke. Kleinhändler kommen zur Stadt. Mimi, stark hustend, will Marcell sprechen, der in einer kleinen Kneipe vor der Barrière lebt und für den Wirt Schilder malt. Sie erzählt ihm von ihrem schlechten Leben mit Rudolf, der sie heute Nacht verlassen hat. Marcell sagt sie, daß dieser im Wirtshaus schlafe. Er wacht gerade auf und kommt Marcell suchend. Mimi versteckt sich, Rudolf spricht von ihrer tötlichen Krankheit, Marcell sucht ihn zum Schweigen zu bringen, allein Mimi hat schon alles gehört. Ihr Husten verrät sie, Marcell geht zu Musette, Rudolf und Mimi wollen sich trennen, versöhnen sich aber schließlich. Musette erscheint mit Marcell, der eifersüchtig ist. Unter gegenseitigen Beschimpfungen trennen sie sich.

**4. Bild.** Mansarde. Marcell und Rudolf arbeiten scheinbar, Schaunard und Collin kommen mit Essen. Sie parodieren ein langes Diner, Tanz und Duell. Musette und die todkranke Mimi kommen. Alle helfen der Sterbenden. Die Liebenden, allein, sprechen von der Vergangenheit. Die andern kehren zurück und während Musette laut betet, stirbt Mimi.

---

## Die Capuleti und die Montecchi.

(Romeo und Julia) Oper in 3 Akten von Bellini. Text von Romani.

Personen: Capellio, Haupt der Capuleti = Baß. Giulietta, seine Tochter = Sopran. Romeo, Haupt der Montecchi = Alt. Tebaldo = Tenor. Lorenzo, Arzt = Bariton. — Ort: Verona. Zeit: 13. Jahrhundert. Venedig 1830.

**1. Akt.** Hof in Capellios Haus. Romeo will den Streit zwischen den feindlichen Häusern Capuleti und Montecchi beenden und sendet Botschaft an Capelli. Da aber Romeo seinen Sohn erschlagen, geht Capellio auf keine Vor-

schläge ein, bis er sich gerächt hat. Tebaldo, der Verlobte seiner Tochter Giulietta, soll das Rachewerk vollbringen.

Verwandlung: Giuliettas Zimmer. Romeo, der bei Capellio sein eigener Bote war, kommt zu Giulietta, denn heimliche Liebe hat beide verbunden.

**2. Akt.** Halle bei Capellio. Romeo kommt mit seinen Anhängern, das Hochzeitsfest Tebaldos und Giuliettas zu stören und die Geliebte zu rauben.

**3. Akt.** Zimmer bei Capellio. Giulietta hört von Lorenzo, daß Romeo mit den Seinigen zwar lebe, aber im Kampf unterlegen und geflohen sei. Der Heirat mit Tebaldo zu entgehen, nimmt sie einen Trank von einem befreundeten Arzt und gilt für tot. Auch Romeo, der sich hineinwagt, hört die Todesnachricht.

**4. Akt.** Grabgewölbe. Romeo nimmt am Sarge Giuliettas Gift und stirbt in den Armen der erwachten Geliebten, worauf sie sich mit einem Dolche ersticht. Entsetzt stehen die hereinstürmenden feindlichen Parteien vor dem Schauspiel, das sich ihnen bietet.

---

## Carlo Broschi.

(Siehe: des Teufels Anteil.)

---

## Carmen.

Oper in 4 Akten von G. Bizet. Text von Meilhac und Halévy, nach der Novelle Prosper Mérimée.

Personen: Zuniga, Leutnant = Baß. José, Sergeant = Tenor. Morales, Sergeant = Baß. Escamillo, Stierfechter = Baß. Dancairo u. Remendado, Schmuggler = Tenor u. Bariton. Carmen, Frasquita und Mercedes, Zigeunerinnen = Sopran und Mezzosopran. Micaëla, ein Bauernmädchen = Sopran. – Ort: Spanien. Zeit: Anfang des 19. Jahrhunderts.

Eine der beliebtesten neueren Opern, deren Erfolg der Komponist nicht mehr erlebte. 1875 in Paris zuerst aufgeführt.

**1. Akt.** Platz in Sevilla mit Brücke. Links die Wachtstube, gegenüber eine Zigarrenfabrik. Micaëla erscheint unter dem flanierenden Volk, sucht José, zieht sich aber vor den übermütigen Soldaten zurück. José kommt mit der Wache und löst Morales ab. Führer der Wache ist der Leutnant Zuniga. Zur Ruhepause treten die Arbeiterinnen aus der Fabrik. Carmen tritt auf, von allen umworben, außer von José, auf den sie es aber gerade abgesehen hat. Nachdem die Arbeiterinnen wieder zurückgegangen, bringt Micaëla, die José liebt, demselben Brief und Gruß von

der Mutter. Als sie wieder fort ist, erschallt Lärm in der Fabrik und Zuniga läßt Carmen, die mit dem Messer gedroht, verhaften. José soll sie zum Gewahrsam bringen, aber die kokette Zigeunerin bestrickt den jungen Sergeanten und er läßt sie nach ihrem geschickten Plan entfliehen.

**2. Akt.** Abend in einer Schmugglerschenke. Gesang und Tanz der Zigeunerinnen. Der Stierfechter Escamillo kommt und wird jubelnd empfangen. Begeistert singt man den Refrain seines Toreroliedes mit („Auf in den Kampf Torero"). Schmugglerquintett von Dancairo, Remendado, Carmen, Frasquita und Mercedes. Carmen weigert sich diesmal mitzuziehen, denn sie erwartet den heißgeliebten José, der ihretwegen verhaftet worden und heute den Arrest verläßt. José kommt und wird durch Carmens Liebe zurückgehalten, als das Abendsignal ihn zur Kaserne ruft. Von Zuniga überrascht, zieht er das Schwert gegen den Vorgesetzten; der Leutnant wird von den Schmugglern entwaffnet, und José beschließt, mit Carmen zu entfliehen.

**3. Akt.** Gebirgsschlucht. José kommt mit den Schmugglern, ist aber nicht glücklich, da Carmen ihn schon nicht mehr liebt, sondern ihr Herz zu Escamilla gewendet hat. Als Escamillo erscheint, verhindern nur die Schmuggler einen Zweikampf. Micaëla bringt die Nachricht, daß die Mutter im Sterben liege und mit Drohungen gegen Carmen verläßt José die Schmuggler.

**4. Akt.** Platz vor der Arena in Sevilla. Festlicher Aufzug der Stierfechter. Carmen gelobt sich Escamillo, wenn er siegen wird. Als sie in den Zirkus will, tritt ihr José bleich wie der Tod entgegen. Zum letztenmale fordert er Liebe und Treue. Da sie ihn kalt zurückweist, durchbohrt er sie und sie stirbt in dem Augenblick, da der umjubelte Escamillo als Sieger aus der Arena tritt.

---

## Catarina Cornaro.

Große Oper in 4 Akten von Franz Lachner. Text von St. Georges und A. Büssel.

Personen: Jakob v. Lusignan, König von Cypern = Tenor. Andrea Cornaro, Patrizier = Bariton. Onofrio, Mitglied des Rats der Zehn = Baß. Catarina Cornaro, Andreas Nichte = Sopran. Marco Onnero, ein junger Patrizier = Tenor. Spirido und Angelo, Banditen = Baß. — Ort: Venedig und Cypern. — Zeit: 1470.
München 1841.

**1. Akt.** Festsaal bei Cornaro. Catarina soll mit ihrem Bräutigam Marco vermählt werden, als Onofrio den Befehl des Rats bringt, Andrea Cornaro sollte seine Tochter

dem König von Cypern zur Gemahlin geben, da dies Cypern an Venedig kette. Unter großem Tumult der Gäste hebt Cornaro die Vermählungsfeier seiner Tochter mit Marco auf.

**2. Akt.** Catarinas Zimmer in Venedig. Die Drohungen ihres Vaters bestimmen Catarina, den vorgeschlagenen Fluchtversuch ihres Bräutigams zurückzuweisen, und als Marco dies erfährt, glaubt er, daß Catarina durch die Krone geblendet sei, und schwört dem König von Cypern Rache.

**3. Akt.** Saal bei Cornaro. Vermählung und Krönung Catarinas.

Verwandlung: Markusplatz. Marco will den König auf dem Gang zur Kirche töten. Als er den Dolch erhebt, erkennt er in Lusignan den Mann, der ihn selbst vor einiger Zeit aus Mörderhänden gerettet. Erschreckt wirft er den Dolch von sich, entflieht, und in der allgemeinen Erregung sinkt Catarina ohnmächtig nieder.

**4. Akt.** Palast auf Cypern. Zwei Jahre sind vergangen. Der Rat von Venedig tötet den König durch langsam wirkendes Gift, um durch Catarina in den Besitz von Cypern zu kommen. Marco erscheint als Gesandter der Republik, sieht, daß Catarina ihn noch immer liebt, und da er den Plan Venedigs kennt, will er den König retten. Die venetianische Partei bringt zwar Catarina in ihre Hände, aber Marco befreit die Königin, und der sterbende König erklärt ihn vor dem Volke zum Beschützer der Königin seines Sohnes. Catarina ist Herrscherin, Cypern für Venedig verloren.

---

## Cavalleria rusticana.

Oper in 1 Akt von P. Mascagni. Text nach dem gleichnamigen Werke G. Vergas von Targioni-Tozetti und Menasci.

Personen: Santuzza, eine junge Bäuerin = Sopran; Turiddu, ein junger Bauer = Tenor. Lucia, seine Mutter = Alt. Alfio, ein Fuhrmann = Bariton. Lola, dessen Frau = Mezzosopran. Ort: Ein sizilianisches Dorf. Zeit: Gegenwart.

Während der Ouvertüre singt Turiddu bei geschlossenem Vorhang die Siziliana: „O Lolo, hold wie Lenzesblütenpracht". Nachdem die Ouvertüre geschlossen, hebt sich der Vorhang. Man sieht den Platz vor der Kirche. Langes stummes Spiel der Kirchgänger; hinter der Szene Chor der Landleute. Endlich treten von verschiedenen Seiten Santuzza und Lucia auf. Santuzza ist die Geliebte Turiddus; sie hat ihm ihre Ehre gegeben und glaubt sich jetzt um Lola von ihm verlassen; sie hat ihn vor der Thür der jungen Frau

gesehen. — Mit dem Chor tritt jetzt Lolas Gatte, der Fuhrmann Alfio, auf und erklärt auch, Turiddu gesehen zu haben, ohne daß er aber dabei was Böses denkt. Da Lucia, die ihren Sohn um Wein nach Frankofonte geschickt hat, weiter fragen will, wird sie von Santuzza zum Schweigen aufgefordert. Nachdem der Chor mit Alfio abgegangen, erklärt Santuzza ihr Zeichen. Turiddu hat Lola geliebt und sie nach seiner Soldatendienstzeit mit Alfio vermählt gefunden, hat dann mit Santuzza ein Verhältnis angefangen und sich jetzt der alten Liebe wieder zugewendet. Die erschreckte Lucia geht mit den Landleuten zur Kirche, und Santuzza erwartet Turiddu, der sie aber kalt behandelt und ganz zur Verzweiflung treibt, als er, sie stehen lassend, mit Lola zur Kirche geht. „Du sollst mir blutige Ostern feiern", ruft sie und entdeckt dem rückkehrenden Alfio Lolas Untreue. Rachesschnaubend beschließt der Fuhrmann Turiddus' Tod und geht mit Santuzza fort. — Während des folgenden Orchestersatzes (Intermezzo) bleibt die Bühne leer. Turiddu, Lola und der Chor kommen aus der Kirche; Turiddu singt ein Trinklied, wird dann von Alfio nach sizilianischer Art zum Messerkampf aufgefordert und verspricht zu folgen. Er nimmt rührenden Abschied von der Mutter, empfiehlt ihr die unglückliche Santuzza und geht. Nach kurzer Weile stürzen mit Santuzza die Weiber auf die Bühne, und mit dem Schreckensrufe: „Turiddu ist tot" schließt die Oper grell ab.

---

## Der Cid.

Oper in 3 Akten von P. Cornelius. Text vom Komponisten.

Personen: Fernando, König von Castilien = Tenor. Calvo, Bischof = Baß. Chimene, Gräfin von Lozan = Sopran. Ruy Diaz, Graf von Vivar, genannt Campeador = Bariton. Alvar Fanez = Tenor. Herold = Baß. — Ort: Burgos in Spanien. Zeit: 1064.
Weimar 1865.

**1. Akt.** Am Hofe des Königs. Chimene klagt beim König den Ruy Diaz des Mordes ihres Vaters an und fordert Recht. Der vom Volke jubelnd begrüßte Diaz verteidigt sich, da er den Grafen von Lozan, der ihn geschändet, im offenen Zweikampf getötet; doch um der Tochter Herz zu befriedigen, will er sich einem Urteil unterwerfen. Er wirft seinen Handschuh hin, der für Chimene von Alvar aufgenommen wird. Jetzt tritt aber Bischof Calvo dazwischen und von ihm bewogen legt Diaz sein Schwert in Chimenes Hände. Nun aber kommt die Nachricht von einem furchtbaren Ein-

fall der Mauren, nur Diaz kann retten als der Führer, dem das Volk vertraut, und die Vaterlandsliebe siegt. Chimene giebt das empfangene Schwert dem König, der es dem jungen Helden überreicht.

**2. Akt.** Schloß Lozan. Chimene, im Kampf zwischen den Gedanken an Rache und aufkeimender Liebe zu Diaz, entläßt zwar ihren Ritter Alvar mit wiederkehrendem Gefühl der Rache, als aber Diaz kommt, um vor der Schlacht von ihr Abschied zu nehmen, gehen alle andern Gefühle in ihrer Liebe unter und Segenswünsche sendet sie dem Helden nach.

**3. Akt.** Vor den Thoren von Burgos. Der Campeador hat gesiegt und das Volk singt Siegeschöre. Die gefangenen Maurenfürsten preisen den Sieger als Herrn (Cid); als Diaz selbst nicht erscheint, wohl aber Alvar dessen Schwert Chimenen zu Füßen legt, gesteht diese in Schmerz um den Verlorenen laut ihre Liebe. Der Cid ist indessen nicht tot, Alvar kündet nur sein Nahen und vom König umarmt, von Chimenens Liebesarmen umfangen, erhält der Held seinen Lohn.

---

## Cleopatra.

Oper in 3 Aufzügen nebst einem Vorspiele von August Enna. Text nach Rider Haygard von Einar Christiansen. Deutsch von Emma Klingenfeld.

Personen: Cleopatra, Königin von Aegypten = Sopran; Harmaki, der letzte Pharaone = Tenor; Sepa, Oberpriester = Bariton; Charmion, seine Tochter, in Cleopatras Diensten = Sopran; Schafra, ägyptischer Fürst = Baß; Iras, Sklavin bei Cleopatra = Sopran. – Ort: Alexandrien.

**Vorspiel.** Unterirdisches Gewölbe. Der Oberpriester Sepa begrüßt Harmaki als den einzigen rechtmäßigen König Egyptens, da Cleopatra nur ein wilder Schößling an dem Stamme sei und die vaterländischen Sitten zu Gunsten der griechischen vernachlässige. Harmaki soll das Land von ihr befreien und es wieder glücklich machen; er erklärt sich bereit dazu. Auf Sepas Wink wird im Hintergrunde ein Vorhang beiseite geschoben und eine Thronhalle wird sichtbar. (Chor der Egypter: „Hathor, heilige Hathor") Sepa verkündet dem Volke seinen Plan; alle billigen ihn und huldigen Harmaki als ihrem Könige, wobei ihm Krone, Szepter und Geißel überreicht wird.

**1. Akt.** Garten vor Cleopatras Palast mit Aussicht auf das Meer. Charmion, die mit den Verschworenen im Einverständnis steht, träumt von dem künftigen Könige („Sie schäumen, die heiligen Wellen"). Sepa, der mit Harmaki zu

ihr tritt, bestärkt beide in ihrem Vorhaben (Terzett: „Leiht zu dem Werke") und geht dann ab. Charmion und Harmaki schließen in gegenseitiger Bewunderung einen Bund gegen die Königin. Die Sonne geht unter (Chor: „Golden hält noch die letzte Gut"), Cleopatra mit Gefolge tritt auf, Charmion stellt Harmaki als Stern- und Traumdeuter vor, dieser deutet der Königin sofort einen Traum in einem für das Heimatland günstigen Sinne. Sie will ihn an sich fesseln, und erschrocken bemerkt Charmion, daß er ihrem Zauber nicht zu widerstehen vermag. (Ensemble: „Komm denn, o Priester".)

**2. Akt.** Harmakis Sternturm. Harmaki fühlt, daß er von der Königin gefesselt ist und betet zu Isis, ihm Kraft zu geben, sich zu befreien. Charmion bringt ihm die Liste derer, die sterben müssen. Als er auch Cleopatras Namen darauf findet, schaudert er und will seine Hand nicht mit ihrem Blute beflecken, doch Charmion überredet ihn, nach dem Feste, das in der nächsten Nacht gefeiert werden soll, wenn die Königin ihn allein erwartet, ihr den Dolch in den Rücken zu stoßen. Als Cleopatra ihn in später Stunde aufsucht, verbirgt sich Charmion und muß es erbittert mit ansehen, wie er sich wieder dem Zauber der Fürstin hingiebt. In der nächsten Nacht soll er kommen und ihr aus den Sternen die Zukunft deuten. Als Cleopatra gegangen ist, macht Charmion ihm heftige Vorwürfe und er gesteht, daß er Cleopatra liebt. Erschüttert verläßt Charmion ihn.

**3. Akt.** Saal in Cleopatras Palast. — Ballet. — Cleopatra macht dem Feste ein Ende und läßt Harmaki rufen, um ihr die Sternkarte zu deuten. Mit dem Dolche tastet er hinter ihrem Rücken herum, vermag aber den tötlichen Stoß nicht zu führen. Sein sonderbares Wesen fällt ihr auf; sie singt ein Lied („Ich singe für dich") und sucht ihn mit allen Künsten der Verführung zu umgarnen. Endlich erliegt er der Versuchung und sinkt in ihre Arme, aber plötzlich entreißt sie ihm die an seiner Brust verborgene Waffe, stößt ihn triumphierend von sich und weist ihn höhnend zurück. Als er sich auf sie stürzen will, werden Sepa und andere Verschworene gefesselt in den Saal geführt und brechen in bittere Klagen aus, daß Harnaki sie und ihre Sache verraten habe. Cleopatra wirft ihm verächtlich den Dolch hin und läßt die Gefangenen wegführen. Als sich auch Charmion mutvoll den Schergen übergiebt, da sie gleichfalls schuldig sei, stößt sich Harnaki verzweiflungsvoll den Dolch ins Herz. Charmion beugt sich erschüttert über die Leiche.

## Cornelius Schutt.

Oper in 3 Akten von A. Smareglia. Text von L. Illica.

**Personen**: Cornelius Schutt, Maler = Tenor. Franz Hals, Maler. = Baß. Craesbecke, Maler = Bariton. Elisabeth von Thourenhoudt = Sopran. Gertrud = Mezzosopran. Kettel, Elisabeths alte Wärterin = Alt. – Ort: Antwerpen. Zeit 1630.

Prag 1893.

**1. Akt.** Vor einer Schenke in Antwerpen. Zechgelage der Maler, Verwunderung über Cornelius Schutt, von dem seine Geliebte Gertrud selbst nicht weiß, wo er weilt und was er treibt. Unerwartet erscheint Cornelius, aber in seltsamer Stimmung. — Beim Abendspaziergang sieht er Elisabeth, deren Begleiterin Kettel von seinem Freund Craesbecke beschäftigt wird, sodaß er das Mädchen, für welches er in Feuer gerät, zwar nicht allein sprechen kann, aber ohne etwas zu erreichen. Als jedoch Elisabeth später auf dem Balkon ihres Hauses erscheint, gesteht sie dem heraufschwingenden Cornelius ihre Liebe.

**2. Akt.** Landhaus. Nachdem Cornelius zwei Jahre mit Elisabeth hier geweilt, erwacht in ihm die Schaffenskraft und Sehnsucht nach der Welt. Im bunten Maskengetriebe einer Kirmeß kommt Kettel mit Geld für ein Werk des Malers. Die Freunde sind der Alten aber gefolgt, entdecken den Versteck und Cornelius zieht mit ihnen fort.

**3. Akt.** Geteilte Bühne im Schiff der Carmeliterkirche. Der eine Teil wird von Schutts Maleratelier eingenommen; dort sitzt der Meister vor einer leeren Staffelei, er kann nicht arbeiten. Auch Gertrud, zu der er zurückgekehrt, kann ihm nichts bieten, er versinkt ganz in Schwermut. Nicht einmal die Freunde Craesbecke und Frans Hals vermögen was über ihn. Man läßt ihn allein.

Im andern Teil der Bühne, der Kirche, naht Elisabeth als Nonne. Sie nahm den Schleier, da Cornelius sie verlassen. Der Maler hört ihre Stimme im Gebet, eilt zu ihr und erweckt durch seine Leiden noch einmal ihre Zärtlichkeit. Als aber der Gesang der Nonnen ertönt, reißt sich Elisabeth los, denn sie ist nun tot für ihn. Er eilt zur Staffelei, entwirft eine Madonna, die die Züge der Geliebten trägt, singt dann zurück und als die Freunde kommen, finden sie den Meister tot.

## Cortez.

(Siehe: Ferdinand Cortez.

---

## Cosi tan tutte

(oder „La scuola degli amanti", „Die Schule der Liebenden", oft auch unter dem deutschen Titel: "So machen es Alle").

Komische Oper in 2 Akten von Mozart. Text von da Ponte.

Personen: Fiordiligi = Sopran. Dorabella, ihre Schwester = Sopran Ferrando, Offizier = Tenor. Guglielmo, Offizier = Bariton. Alfonso, ein Hagestolz = Baß. Despina, Kammermädchen = Sopran. — Ort: Neapel. Zeit 18. Jahrhundert.

Auf Veranlassung Josef II. gedichtet und komponiert, erlebte die Oper ihre erste Aufführung in Wien 1790. Der Handlung liegt eine wahre Begebenheit zu Grunde. Das bedenkliche Libretto ist oft verbessert resp. verändert worden. 1791 in Frankfurt: (Titel: „Liebe und Versuchung"). Prag 1792 („Eine macht's wie die Andere"). 1794 von Giesecke in Wien („Die Schule der Liebe"). München 1795 („Die Wette"). 1805 in Berlin von Bretzner („Mädchenträume"). 1814 in Wien von Treitschke („Die Zauberprobe"). 1816 Stuttgart („Mädchen sind Mädchen"). 1820 Berlin („Die verfängliche Wette"). 1856 Stuttgart („Sind sie treu?"). 1860 in Karlsruhe von E. Devrient („So machen es Alle"). 1871 Dresden („Alle wie Eine"). Französisch erschien die Oper, in der Handlung nach Shakespeares „Verlorene Liebesmüh'", unter dem Titel „Peines d'amour perdues" von Barbier und Carré.

**Handlung: 1. Akt.** Don Alfonso geht mit den Offizieren Fernando und Guglielmo eine Wette ein, wonach sie ihre Bräute Fiordiligi und Dorabella einen Tag lang auf die Probe stellen sollen. Die Offiziere nehmen nun scheinbar Abschied von den Mädchen, kommen dann aber in Verkleidungen zurück, als reiche Albanesen. Sie vertauschen dabei die bestimmten Bräute und werben um Liebe. Sie gewinnen sicheren Boden, da Alfonso sie als Freunde vorstellte. Das Kammermädchen Despina sucht zwar ihre Herrinnen zu bewegen, den reichen Fremden zu willfahren, noch aber bleiben die Schwestern standhaft. — Alfonso will seine Wette nicht verlieren, besticht Despina und als die Albanesen sich vor den Augen der Damen scheinbar vergiften, kommt das Kammermädchen in der Verkleidung eines Arztes und rettet auf Charlatanweise durch Magnetismus die Vergifteten.

**2. Akt.** Durch Despina bearbeitet, giebt zuerst Dorabella des verkleideten Guglielmos Werben nach und giebt

ihm ihres Bräutigams Fernandos Bild. Da gewinnt Fernando Fiordiligi. Jetzt verkleidet sich Despina auf Alfonsos Anordnung als Notar und bringt Ehekontrakte. In diesem Augenblick kommt die Nachricht von der Rückkehr der beiden Offiziere. Die von den Schwestern ängstlich versteckten Albanesen machen sich davon, um sich in ihrer wahren Gestalt zeigen zu können. Sie erwischen nun Despina als Notar, zeigen den treulosen Bräuten die Ehekontrakte, geben sich dann aber zu erkennen und Alfonso, der die Wette gewonnen, stiftet Versöhnung.

---

## Dalibor.

Oper in 3 Akten von Friedrich Smetana. Text von Josef Wenzig, deutsch von Max Kalbeck.

Personen: Wladislaw, König von Böhmen; Dalibor; Budiwoj, Befehlshaber der Wache; ein Richter; Benesch, Kerkermeister; Veit, Dalibors Knappe; Milado, Schwester des von Dalibor getödteten Burggrafen; Jutta, ein Waisenmädchen. – Ort: Prag; Zeit: 15. Jahrhundert.

**1. Akt.** Hofraum der Burg in Prag. Jutta und der Chor des Volkes preisen Dalibors Heldentum, obwohl er heute noch als Empörer vom Könige selbst gerichtet werden soll; (Arie: „Erbarmen fühlt' er"). Das Mädchen hofft ihn jedoch befreien zu können. Der König mit Gefolge tritt auf, nimmt den Richterplatz ein und heißt Milada erzählen, wie Dalibor nachts die Burg ihres Bruders plötzlich überfallen und diesen erschlagen habe. (Arie: „Spät war es schon".) Dalibor wird hereingeführt; Milada ist erstaunt über seine männliche Schönheit. Er vertritt seine That ohne Furcht, (Arie: „Nicht werd' ichs leugnen") denn der Burggraf hatte Dalibors besten Freund Zdenko, der ein Sänger und ein Held war, im Kampfe gefangen genommen und grausam hingeschlachtet; den Kopf schickte er ihm als Antwort auf sein Angebot, Lösegeld zu zahlen. Für diese That habe er Rache geschworen und seinen Schwur gehalten. Milada wird von Mitleid mit ihm ergriffen und bewundert seinen Mut, dem Könige mit stolzen Worten zu drohen. Den Tod fürchtet er nicht, aber die Richter erkennen auf lebenslängliche Kerkerstrafe und lassen ihn abführen. Milada fleht den König vergebens um Erbarmen an, und Jutta, die bald merkt, daß sie Dalibor liebt, verbindet sich mit ihr, um ihn zu befreien.

**2. Akt.** Straße in Prag. Aus dem Wirtshause ertönt der Gesang der Knappen („Ein rechter Soldat"); Jutta erwartet ihren Liebsten, Dalibors Knappen Veit (Duett: „Ach schon zu lange") und bespricht mit ihm den Rettungsplan.

Milada ist in Männerkleidern auf der Burg erschienen und hat den Kerkermeister Benesch bereits bethört, so daß er sie als Helfer angenommen hat. Veit teilt den treuen Knappen das Gehörte mit, und alle sind froher Hoffnung voll.

Verwandlung: Offene Halle auf der Burg. Budiwoj fürchtet einen Versuch der Anhänger Dalibors, diesen zu befreien und schärft Benesch doppelte Wachsamkeit ein. (Arie des Benesch: „Zwischen diesen düstern Mauern"). Milada (in Männerkleidung) hat dem Kerkermeister ein leckeres Mahl bereitet, der mitleidige Alte will aber erst Dalibor eine Geige bringen, um die dieser ihn gebeten hat, und duldet es sogar, daß Milada den Auftrag ausrichtet. (Arie der Milada: „So wär' es wahr?")

Verwandlung: Finsterer Kerker. Dalibor sieht im Traume seinen Freund Zdenko, der auf der Fiedel spielt. (Arie: „Verschwunden bist Du.") Milada bringt ihm die Geige, giebt sich ihm zu erkennen (Arie: „Erfaßt von Mitleid") und teilt ihm ihre Absicht mit. (Liebesduett: „Mein schöner Traum.")

**3. Akt.** Königshalle. Budiwoj berichtet dem Könige, daß es im Volke gähre und daß fremde Soldaten im Lande wären, um Dalibor zu befreien. Benesch muß von Miladas mißglücktem Versuche erzählen; sie war plötzlich verschwunden, nachdem sie die Kerkerthüre geöffnet hatte, zum Glück habe er dies noch rechtzeitig bemerkt. (Arie: „Ihr seht mich, Herr.") Der König bestimmt, daß Dalibor um der Ruhe des Landes willen heute noch sterben solle, (Arie: „Ja, der Empörung Schlange") läßt ihn gefesselt vorführen und teilt ihm das Urteil mit. Dalibor bleibt unerschüttert (Arie: „Was säum' ich noch?") und wird wieder abgeführt.

Verwandlung: Freier Platz vor der Burg. Es ist Nacht. Milada, kriegerisch gerüstet, zieht mit Dalibors Getreuen heran, und wartet auf den Ton seiner Geige, da sie glaubt, daß er frei sein müsse. Als sie nichts hört, wird sie unruhig, und als das Armsünderglöckchen ertönt, begreift sie entsetzt alles. Entschlossen fordert sie ihre Gefährten auf, ihn mit Gewalt zu befreien, („Wohlan, ergreift die Waffen!") im Sturmschritt geht es gegen die Burg, und nach heftigem Kampfe kehren sie mit Dalibor zurück, der die tötlich verwundete Milada trägt. Mit dem Gesange: „Wo bin ich" und einem letzten, liebevollen „Dalibor!" stirbt sie in seinen Armen (Schlußchor: „Aus dem Erdenthal").

## Der Dämon.

Phantastische Oper in 3 Akten von Anton Rubinstein. Text nach dem gleichnamigen Gedicht Lermontoffs von Wiskowatoff.

Personen: Fürst Gudal = Baß; Tamara, dessen Tochter = Sopran; Fürst v. Sinodal, deren Verlobter = Tenor; Tamaras Amme = Alt; ein alter Diener des Fürsten v. Sinodal; der Dämon = Bariton; ein Engel = Sopran. — Ort: Im Kaukasus.
Russisch aufgeführt in Petersburg 1875, deutsch in Hamburg 1880.

**1. Akt.** Sturm in wilder Gegend. Der Engel fordert den Dämon zur Erringung des Himmels durch die Liebe auf, doch höhnische Zurückweisung erfolgt. Die überirdischen Mächte verschwinden, der Sturm endet. Tamara kommt mit ihren Mädchen; ihr allein wird der Dämon sichtbar und pflanzt unruhige Gedanken in ihre Seele.

Verwandlung: Gebirge. Der Fürst von Sinodal zieht zu Tamara, seiner Braut. Als er entschlummert, kommen durch des Dämons Walten Tartaren herbei, überfallen und tödten den Fürsten.

**2. Akt.** Schloßsaal bei Gudal. Das Hochzeitsfest wird vorbereitet, als die Trauerbotschaft vom Tod des Bräutigams kommt. Der Dämon will Tamara abermals berücken, aber sie verlangt, aufs höchste erregt, in ein Kloster zu treten. Der alte Fürst Gudal beschließt Rache für den Gemordeten.

**3. Akt.** Kloster. Wieder naht der Dämon dem von ihm gehaßten Opfer; da erscheint der Engel und weist ihn vom Gotteshaus fort.

Verwandlung: Tamaras Klosterzelle. Der Dämon erscheint nun, obwohl er sich freien Willens dünkt, liebeflehend, und Tamara vermag nicht mehr zu widerstehen. Als sie seinen Kuß empfängt, sinkt sie entseelt zu Boden, und der Dämon glaubt sie sein. Er muß aber den Engeln weichen, die Tamara zum Himmel führen.

---

## Delila.

Oper in 3 Akten von Camille Saint-Saëns; Text von Ferdinand Lemaire, deutsch von Richard Pohl.

Personen: Delila = Mezzosopran. Samson = Tenor. Oberpriester des Dagon = Bariton. Abimelech, Satrap von Gaza = Baß. Ein alter Hebräer = Baß. Kriegsbote der Philister = Tenor. Ort: Gaza in Palästina. Zeit: 1150 v. Chr.

**1. Akt.** Die Israeliten flehen um Rettung aus der Gewalt der Philister. (Chor: „Gott Israels".) Samson sucht sie zu

trösten und verheißt ihnen baldigen Sieg. Abimelech verhöhnt sie und meint, daß ihr schwacher Gott ihre Niederlage doch nicht habe verhindern können. Samsons Siegeshoffnung bricht umso stärker hervor (Arie: „Du lästerst den Gott unsrer Väter"), und steigert sich zu einem begeisterten Triumphgesange, der die Hebräer derartig erregt, daß Abimelech in Besorgnis gerät. Als er den losbrechenden Aufruhr mit Gewalt dämpfen will, fällt er von Samsons Hand, seine Begleiter wagen nicht, den Thäter zu ergreifen. Dieser eilt davon, um sein Werk zu vollenden, und bald meldet ein Bote dem Oberpriester, daß die Israeliten allenthalben im vollen Aufruhre seien (Arie des Oberpriesters: „Fluch ihm"!). Die Philister fliehen, die siegreichen Israeliten stimmen Danklieder an (Chor: „Lobet den Herren"). Delila mit ihren Frauen begrüßt listig den Sieger (Chor: „Des Lenzes volle Blütenpracht"), und vergebens sucht sich Samson trotz der Warnungen eines alten Hebräers ihren verführerischen Reizen, denen er früher schon einmal erlegen ist, zu entziehen (Terzett: „Gegrüßt sei mir")! Ein Tanz der Frauen und Delilas Lied: „Die Sonne sie lachte" vollenden die Umgaukelung des Helden, er vermag nicht mehr zu widerstehen.

**2. Akt.** Delilas Wohnung im Thale Sorek. Delila, festlich geschmückt, erwartet Samson (Arie: „Samson! Diese Nacht muß ihn bringen"). Der Oberpriester ermahnt sie unnötigerweise, den Feind ihres Volkes den Philistern auszuliefern: sie hat Samson, weil er sie verlassen hat, schon längst Rache geschworen, und ihre Liebe ist nur erheuchelt (Duett: „Ich will meinen Haß kühlen"). — Samson erscheint, das Herz von Zweifel und Reue erfüllt, und selbst ihrem verlockenden Gesange: „Sieh', mein Herz erschließet sich" gelingt es nicht, ihm sein Geheimnis zu entlocken. Aber ihrem Zorne, ihrer Verachtung widersteht er nicht und folgt ihr willenlos in das Gemach; Delila schneidet ihm das Haar ab, ruft die Philister, die schon in der Nähe auf der Lauer liegen, herbei, und Samson wird überwältigt.

**3. Akt.** Gefängnis in Gaza. Samson, geblendet, schmachtet in Ketten und wird von bittrer Reue gequält („O sieh' mein Elend, Herr!"). Die Vorwürfe seiner draußen stehenden Landsleute dringen in seine Zelle und vermehren noch seine Qual. Dann wird er von den Philistern fortgeschleppt, um bei dem Siegesfeste als Trophäe zu dienen.

Verwandlung. Das Innere des Dagontempels. Chor („Die Sonne erwacht") und Ballet. Samson wird von einem Knaben hereingeführt und soll auf den Befehl des Oberpriesters ein Lied zum Preise Delilas singen. Diese selbst erinnert ihn höhnend an vergangene selige Zeiten („Ich biete dir zum Gruß die Hand"). Ingrimmig bittet er Jehovah, ihm nur noch ein-

mal das Augenlicht und seine alte Kraft zurückzugeben; die Philister haben nur Spott und Hohn für ihn. Das Siegesfest beginnt (Duett mit Chor: „Dagon, Dir sei Dank!"); immer rauschender wird die Luft, und ein Trankopfer nach dem andern wird dem Gotte dargebracht. Samson hat nach einem nochmaligen inbrünstigem Gebete zwei Marmorsäulen des Tempels erfaßt, kraftvoll zusammengedrückt, und unter den Trümmern des zusammenstürzenden Gebäudes findet er mit seinen Feinden den Tod.

---

## Der deutsche Michel.

Oper in 3 Akten von Adolf Mohr. Text nach dem gleichnamigen Schauspiel von Louis Nötel.

Personen: Hans Michel von Obertraut, Generalleutnant im protestantischen Unionsheere = Bariton; Konrad von Frankenstein, Fähnrich = Tenor; Philipp Buseck, Wachtmeister = Baß; Gerhard Quenzel Bürgermeister von Nienburg = Baß; Peter Krumbach, Ratsherr = Baß; Margarete von Delp, Blumenhändlerin, Witwe = Sopran; Gretchen, ihre Tochter = Sopran; Frau Christiane, ihre Wirtschafterin = Mezzosopran; Veitel, ein jüdischer Hausierer = Tenor; der Schulmeister = Baß; ein Ratsbote = Baß; ein Bürger = Tenor. — Ort: Nienburg a. d. Weser. Zeit 1625.

**1. Akt.** Straße in Nienburg. Marktgewühl. Tilly, der die Stadt bedrohte, ist vom General Obertraut, genannt „Der deutsche Michel", geschlagen, und dieser wird mit seinem Regiment in der Stadt erwartet. Der Krämer Veitel warnt die Frauen vor Michels Freund Buseck, einem Weiberfeind, der sogar schon einmal einer Frau die Ohren abgeschnitten haben soll (Lied: „Es zieht durch alle Gauen ein Kriegsmann bös' und wild"). Als Margarete v. Delp das Nahen Obertraut hört, pocht ihr Herz stürmisch, denn er ist es, den sie zu Heidelberg einst geliebt, und den sie eines anderen Mannes wegen hat verlassen müssen. In freudiger Stimmung macht sie ihrer Tochter Gretchen Mitteilung von ihrer Jugendliebe (Lied: „Zu Heidelberg in der grünen Pfalz"). Verwundet weilt in ihrem Hause der Fähnrich Konrad v. Falkenstein, der Pflegesohn Michels, und unausgesprochen waltet ein Liebesverhältnis zwischen ihm und Gretchen. — Obertraut zieht mit seinem Regiment festlich begrüßt ein, sieht Gretchen, glaubt in ihr seine Jugendliebe wiederzufinden und quartiert sich in Margaretens Haus ein.

**2. Akt.** Zimmer in Margaretens Haus. Gretchen denkt an Konrad, ihre Gedanken durch ein Lied unterbrechend: „Drei Lilien, drei Lilien, die pflanzt ich auf mein Grab". Als Falkenstein kommt und um sie wirbt, fliegt sie an sein Herz. — Die alte Christiane glaubt in dem groben, aber

herzensguten Buseck ihren verstorbenen Mann wiederzufinden, als es sich aber herausstellt, daß es nur sein Bruder ist, sucht sie ihn in Bande zu fesseln, was der Weiberfeind aber auch zurückweist. — Obertraut ist wie umgewandelt; da in Gretchen das Bild seiner Jugendliebe wieder lebendig geworden, will er sie heiraten. Hier stößt er aber auf die Nebenbuhlerschaft Konrads, und als dieser in Liebesschmerz sich gegen den General vergeht, läßt der wie umgewandelte Michel seinen Pflegesohn gefangen fortführen.

**3. Akt.** Frau Margaretens Garten. Der Schulmeister bringt mit den Schulkindern dem General ein Ständchen, da heute dessen Hochzeit mit Gretchen gefeiert werden soll (Kinderchor: „Der Tag ist da, der Tag voll hoher Lust"). Michel ist gerührt davon, aber seine Stimmung ist umgeschlagen, sein Herz schwer. Durch Buseck läßt er Konrad zu sich bescheiden und versöhnt sich mit ihm, da er hört, daß dieser fort will (Duett: „Mein General, Du hast befohlen"). Als Gretchen, zur Hochzeit geschmückt, zu Michel tritt, hat dieser fast vergessen, was er wollte, und als er vernimmt, daß der Bürgermeister um Frau Margarete anhalten will, beschließt er, Gretchen mit Konrad zu vermählen und selbst seine einstige Geliebte zu heiraten (Duett zwischen Obertraut und Margarete: „Verehrte Frau, Euch zu begrüßen" und Soldatenlied Michels, von Margarete gesungen: „O horch', wie die Trommel so fröhlich erschallt"). Da bringt Buseck, der sich doch Christiane zu Liebe jetzt manierlicher benimmt, die Nachricht, daß Tilly wieder heranrücke. Schnell läßt Michel Konrad holen, übergiebt dem Glücklichen Gretchen als Braut und zieht in den Kampf, die weinende Margarete auf seine Rückkehr vertröstend („Mein Gretchen, Kopf in die Höh'" mit dem Schlußgesang: „Und trifft mich die Kugel, so preise mein Glück, und trifft sie mich nicht, dann komm' ich zurück und nehm' Dich, Feinsliebchen, zum Weibe").

---

## Dinorah
### oder **Die Wallfahrt nach Ploërmel.**

Komische Oper in 3 Akten von Meyerbeer. Text von Barbier und Carré.

Personen: Hoël, ein Ziegenhirt = Bariton; Corentin, Sackpfeifer = Tenor; Dinorah = Sopran; ein Jäger = Baß; ein Mäher = Tenor; 1. Hirtenknabe = Sopran; 2. Hirtenknabe = Mezzosopran. — Ort: Bretagne. Paris 1859.

Ein Gewitter hat Haus und Hof von Dinorahs Vater gerade an dem Tag zerstört, als sie mit dem Ziegenhirten Hoël getraut werden soll. Der Dorfhexenmeister Tonik er-

zählt dem Hirten von einem Schatz, der gehoben werden könne, wenn man ein Jahr in einer einsamen Schlucht verlebt. Derjenige jedoch, der den Schatz zuerst berührt, muß sterben. — Hoël verschwindet auf ein Jahr nimmt den Hasenfuß Corentin, um durch ihn den Schatz zuerst berühren zu lassen, stößt aber auf Dinorah, die sich verlassen glaubte und nun, wahnsinnig geworden, mit ihrer Ziege umherirrt. Bei einem Gewitter wird eine Schleuse zerstört, das Mädchen gerät ins Wasser, wird gerettet und gewinnt dadurch ihren Verstand wieder. Hoël sucht ferner nicht nach Schätzen, sondern bleibt bei Dinorah. — Der erste Theil dieser Begebenheit ist Voraushandlung, der letzte Teil bildet das Libretto der Oper.

**1. Akt.** Chor während der Ouvertüre. Gegend von Corentins Hütte. Dinorah mit ihrer Ziege geht über die Bühne. Duett mit Corentin: „Blase, blase munter fort". Hoël sucht Corentin auf und entschließt sich, diesen zu gebrauchen (Arie: „Mächt'ge Kunst der Magie"). Corentin wird gewonnen und geht mit Hoël.

**2. Akt.** Wald und Mondschein. Dinorahs Schattentanz. Verwandlung: Felsenschlucht mit der Wasserschleuse. Gewitter. Hoël sucht den Weg, während Corentin von Dinorah erfährt, daß der sterben müsse, der den Schatz zuerst berührt, darum weigert er sich, dem zurückkehrenden Hirten zu folgen. Corentin will die wahnsinnige Dinorah voranschicken, die Hoël aber nicht als seine Braut erkennt. Als Dinorah jedoch ihrer entlaufenen Ziege nachspringt und ins Wasser gerät, erkennt sie Hoël an einem Halsband und stürzt ihr nach, sie zu retten.

**3. Akt.** Landschaft. Idyllische Szene von Hirten, Mähern und Jägern. Hoël bringt Dinorah (Romanze: „Dich rächet meine Reue"). Als das Mädchen erwacht, ist der Verstand zurückgekehrt. Zur selben Zeit ertönt der Gesang der Wallfahrer, rührt Dinorahs Sinn, und sie geht mit Hoël, der es aufgiebt, Schätze zu suchen, zum Altar.

---

## Djamileh.

Komische Oper in 1 Akt von Bizet. Text von L. Gallet.

Personen: Harun, ein junger, reicher Türke = Tenor; Splendiano, sein Erzieher = Bariton; Djamileh, seine Sklavin = Mezzosopran; eine Tänzerin = Ballet; ein Sklavenhändler. — Ort: Der Palast Haruns in Kairo.

Paris 1872.

Djamileh ist die Sklavin Haruns, eines jungen und sehr reichen, aber blasierten Türken, der sich von keinem Weibe fesseln läßt (Arie: „Das Weib Dir nennen, das mich

fesselt?"). Obwohl nun Splendiano selbst Djamileh liebt, so ahnt er doch, daß die Sklavin ihrem Herrn zugethan ist. In der That liebt sie Harun leidenschaftlich. Trotzdem faßt der Erzieher einen Plan, sich Djamileh zu versichern. Nur eine Zeit lang hält Harun seine Sklavinnen, läßt sie dann beschenkt gehen und kauft andere. So kommt jetzt wieder ein Sklavenhändler, und Djamileh bittet ihn, sie, die nun frei werden soll, wieder an Harun zu verkaufen. Splendiano, um Djamileh nicht entbehren zu müssen, beredet den Sklavenhändler, darauf einzugehen. — Die Liebe atmenden Tänze einer Almée bringen Harun und seine Freunde, die vom Spielgelage zurückkehren, in Erregung und Harun schickt Splendiano, der schon drauf und dran ist, den Vorgang zu entdecken, zu den Spielern. Allein empfängt er in nächtlicher Stunde die neue Sklavin, welche verschleiert zu ihm tritt. Da sie ihn mächtig anzieht, enthüllt er sie, erkennt Djamileh und ihre Liebe und ist davon so bezaubert, daß seine Leidenschaft erwacht und er sie glücklich an sein Herz zieht.

---

## Doktor und Apotheker.

Singspiel in 2 Akten von Dittersdorf. Text von Stephanie d. J.

Personen: Dr. Krautmann = Baß; Gotthold, dessen Sohn = Tenor; Stößel, Apotheker = Baß; Klaudia, seine Frau = Sopran; Leonore, ihre Tochter = Sopran; Rosalie, Stößels Nichte = Sopran; Sichel, Chirurg = Tenor; Sturmwald, invalider Hauptmann = Tenor; Gallus, Diener = Tenor. — Ort: Eine kleine Stadt. Zeit: 18. Jahrhundert.

Dies Singspiel und Schenks „Der Dorfbarbier" (siehe diesen) gehörten zu den beliebtesten Werken des 19. Jahrhunderts und erscheinen ab und zu auch heute noch auf den deutschen Theatern. — Doktor und Apotheker wurde 1786 in Wien zuerst aufgeführt.

Die Kinder der Todfeinde Apotheker Stößel und Dr. Krautmann lieben sich. Leonore soll zwar den invaliden Hauptmann Sturmwald heiraten, läßt aber nicht von Gotthold, dem eine Entführung zwar fehlschlägt, der aber, nachdem er dem Hauptmann allerlei Streiche gespielt, Leonorens Mutter Klaudia für sich gewinnt, die nun ihrerseits den Apotheker Stößel zum Frieden stimmt, sodaß durch die Beharrlichkeit der Liebenden die Versöhnung der Alten hergestellt wird. Ein anderes Liebespaar des Stückes ist der Chirurg Sichel und Stößels Nichte Rosalie, die dadurch auch ihre Vereinigung erreichen.

**1. Akt.** Quintett: Stößel. Klaudia, Sturmwald, Leonore, Rosalie: „O wie herrlich, o wie labend" (worin jeder seine heimlichen Wünsche kundgiebt). Leonorens Arie:

„Wie kann wohl Freude noch in meinem Herzen wohnen". Terzett: Klaudia, Stößel, Sturmwald: „Für's Erste ist zu wissen" (worin Klaudia dem werbenden Hauptmann exorbitante Forderungen für die Aussteuer stellt). Gotthold's Arie: „Wann hörst Du auf, geliebte Qual". Duett: Sichel und Gotthold suchen Stößel aus dem Hause zu entfernen, um ihre Mädchen entführen zu können). (Stößels Arie: „Galenus und Hyppokrates", Sturmwalds Arie: „Der Wein ist ein Specifium".

Verwandlung: Zimmer in Stößels Haus. Romanze von Rosalie und Leonore: „Zwei Mädchen saßen manche Nacht". Finale: „Wer wird im Schiffbruch sich besinnen". (Die beiden jungen Leute kommen, die Mädchen zu entführen, werden aber durch Klaudia verscheucht. Als sie in ihrem Versteck, Stößels Laboratorium, vom Hauptmann bewacht werden, benutzen sie dessen Schlaf, ihm das Stelzbein und die Waffen abzunehmen und entwischen.)

**2. Akt.** Straße. Doktor Krautmanns Arie: „Ein Doktor ist bei meiner Ehre". Duett: Gallus und Krautmann: „Vermaledeit sei die Methode".

Verwandlung: Zimmer in Stößels Haus. Arie Stößels: „Viel eher soll sie garnicht freien". Gotthold's Arie: „Wahre Liebe wird zwar hoffen". Sextett: „Was ist das für ein Betragen". (Sichel und Gotthold kommen verkleidet als Hauptmann und Notar, um die Unterschrift für die Ehekontrakte zu verlangen, als aber Stößel den echten Hauptmann im Laboratorium entdeckt, entfliehen die jungen Leute, haben aber doch Klaudia für sich gewonnen.) Leonorens Arie: „Zufriedenheit gilt mehr, als Kronen". Sturmwalds Arie: „So verfährt man mit Soldaten".

Verwandlung: Straße. Zankduett zwischen Doktor und Apotheker: „Sie sind ein Charlatan".

Verwandlung: Garten. Rosaliens Arie: „Jedem ist sein Glück beschieden". Duett: Gotthold und Leonore: „Nie werd' ich mich so weit vermessen". Finale: „Ha! Potz Pulver und Kanonen". (Die beiden Paare wollen fliehen, Stößel will die jungen Leute verhaften lassen, da aber Klaudia für sie ist, auch Krautann sich persönlich zeigt, giebt Stößel endlich die Einwilligung für beide Hochzeiten.)

# Don Juan
## oder: „Der steinerne Gast".

Oper in 2 Akten von Mozart. Text von da Ponte.

Personen: Don Juan = Bariton; der Komtur = Baß; Donna Anna dessen Tochter = Sopran; Don Octavio, deren Bräutigam = Tenor; Donna Elvira = Sopran; Leporello, Don Juans Diener = Baß; Masetto, ein Bauer = Baß; Zerline, dessen Braut = Sopran. Ort: Sevilla. Zeit: 17. Jahrhundert.

Das Originalschauspiel, nach dem alle anderen Don Juan-Stücke gearbeitet sind, ist von dem Spanier Gabriel Tellez: „El burlador de Sevilla y Convidado de piedra". – Es giebt eine große Anzahl Opern, denen dieses Sujet zu Grunde liegt; unerreicht aber ist Mozarts Meisterwerk, das zuerst in Prag 1787 aufgeführt wurde. Ursprünglich wechselten in der Oper Musik und Dialog ab, doch sind jetzt meistens die von Mozart selbst komponierten Seccorecitative in Gebrauch.

**1. Akt.** Garten des Komtur. Leporello hält vor dem Hause Wache, in welches Don Juan sich eingeschlichen, um Donna Anna, Octavios Verlobte, zu verführen (Arie: „Keine Ruh bei Tag und Nacht"). Donna Anna kommt mit Don Juan, sie will wissen, wer es ist, ruft um Hilfe; doch als der Gouverneur erscheint, ersticht Don Juan denselben und entflieht unerkannt (Szene: „Ja, ich wage selbst mein Leben"), Anna ist erstarrt und der herbeieilende Octavio schwört Rache (Recitativ: „Welch ein schrecklich Bild schwebt hier vor meinen Augen", Duett: „Weg, weg aus meinen Blicken").

Verwandlung: Platz vor Don Juans Palast. Juan und Leporello treten auf (Recitativ: „Wohlan, erklär Dich endlich"). Elvira erscheint, Don Juan erkennt sie nicht und will sich an sie machen (Terzett: „Wo werd ich ihn entdecken?", Recitativ: „Was soll's? Himmel, was seh' ich!" Als Don Juan sieht, wen er vor sich hat, schiebt er Leporello vor und eilt fort. Leporello sucht sie zu trösten, indem er Don Juans Liebschaften entrollt (Arie: „Schöne Donna, dies kleine Register"). Elvira schwört Rache (Recitativ: „In welchem Dünkel der Sorgen" und Arie: „Mich verläßt der Undankbare"). Als sie ab ist, tritt ein Hochzeitszug mit Masetto und Zerline auf (Duett und Chor: „Liebe Schwestern, zur Liebe geboren"). Don Juan sieht Zerline, die ihm gefällt und er sucht den eifersüchtigen Masetto zu entfernen (Recitativ: „Ei sieh doch, Leporello, das schmucke junge Volk"; Arie Masettos: „Hab's verstanden! Ja, mein Herr"). Don Juan und Zerline sind allein; er beginnt sofort seine Verführungskünste (Recitativ: „Endlich

sind wir befreit" und Duett: „Reich' mir die Hand mein Leben"). Elvira tritt hinzu, doch Don Juan sucht sie unschädlich zu machen, indem er sie sowohl Zerline, als auch dem auftretenden Octavio und Anna als wahnsinnig schildert (Recitativ: „Fort von ihr, Verführer"; Arie Elvirens: „Verloren, hör' ihn nicht, verachte, was er spricht"). Auftritt Octavios und Annas (Recitativ: „Ach, Don Juan"; Quartett: „Elvira, Octavio, Anna, Don Juan: „Fliehe des Heuchlers glattes Wort"). Anna glaubt jetzt in Don Juan den Mörder ihres Vaters zu erkennen und Octavio beschließt, seinen Freund zu beobachten (Recitativ: „Welch' ein Schicksal, entsetzlich" und Arie: „Du kennst den Verräter, er drohte mir Schande"). Leporello bringt nun dem Don Juan die Kunde, daß er alle Gäste der Bauernhochzeit im Schlosse, daß er Masetto beschäftigt, aber die Rückkehr Zerlinens alles wieder zerstört habe. Elvira hat er in einem entlegenen Zimmer eingeschlossen. Der sorglose Don Juan ist ausgelassen lustig (Champagner-Arie: „Treibt der Champagner das Blut erst im Kreise"). Er eilt ins Schloß. Zerline folgt dem eifersüchtigen Masetta und sucht ihn zu versöhnen (Recitativ und Arie: „Schmäle, schmäle, lieber Junge"). Don Juan führt beide in seinen zu einem Fest hergerichteten Saal und Leporello invitiert drei Masken (Elvira, Octavio, Anna) ebenfalls (Terzett: „Hier nehmt die Hand zum Bunde").

Verwandlung: Ballsaal, Kontretanz, Walzer, Menuett („Kommt, Ihr Mädchen, zur Freude geboren"). Don Juan führt Zerline fort, Leporello beschäftigt Masetto, da erschallt Zerlinens Hilferuf, und Don Juan spielt eine Komödie vor, indem er mit gezücktem Degen auf Leporello eindringt, den er der Verführung Zerlinens beschuldigt. Als man ihm aber keinen Glauben schenkt und auf ihn eindringt, schlägt er sich mit gezücktem Degen durch.

**2. Akt.** Vor Elvirens Haus. Don Juan besänftigt Leporello und tauscht mit ihm den Mantel und Hut (Duett: „Gieb' Dich zufrieden, bleib' mir treu"). Leporello muß für ihn zu Elvira gehen (Terzett: Elvira, Leporello, Don Juan: „O Herz, hör' auf zu schlagen"). Don Juan bringt dem Kammermädchen inzwischen ein Ständchen („Horch' auf den Klang der Zither"). Von Masetto und seinen Freunden überrascht, entschlüpft der falsche Leporello und prügelt Zerlinens Bräutigam durch (Recitativ und Arie: „Ihr geht auf jene Seite hin"). Zerline kommt und tröstet Masetto (Arie: „Wenn Du fein fromm bist, will ich Dir helfen").

Verwandlung: Zimmer bei Elvira. Es ist dunkel.

Zu Elvira und Leporello kommen Octavio, Anna, Masetto und Zerline, entlarven den Pseudo-Don Juan und bestärken ihren Verdacht, daß der echte Don Juan der Mörder des Komturs ist (Sextett: „In des Abends stillen Schatten"). Octavio bleibt allein (Arie: „Thränen vom Freunde getrocknet").

Verwandlung: Friedhof mit der Statue des Komturs. Leporello kommt zu Don Juan und meldet das Vorgefallene. Den lachenden Verführer weist die Stimme des Komturs zur Ruhe; Leporello liest auf seines Herrn Befehl die Grabschrift: „Die Rache erwartet hier meinen Mörder". Der Diener erbebt, aber der unerschrockene Don Juan ladet das Steinbild übermütig zum Abendgastmahl (Duett: „Herr Gouverneur zu Pferde"). Das Steinbild nickt mit dem Kopf und antwortet: „Ja!"

Verwandlung: Zimmer Donna Annas. Octavio nennt Anna grausam, da sie die Verbindung noch verzögert (Recitativ: „Ich grausam? O mein Geliebter" und Arie: „Ueber alles bleibst Du Teurer").

Verwandlung: Zimmer bei Don Juan (Finale: „Fröhlich sei mein Abendessen"). Elvira kommt, um Don Juan zur Reue zu bewegen („Allmacht der Liebe hat mich geführet"). Als Elvira ohne Hoffnung gegangen, naht das Steinbild des Komturs mit dröhnenden Schritten; auch er ermahnt den Frevler, und als er zurückgewiesen wird, versinkt er, die Hölle dringt auf Don Juan ein und verschlingt ihn.

---

## Donna Diana.

Oper in Akten von H. Hofmann. Text von K. Wittkowsky.

Personen: Don Diego, regierender Graf von Barcelona = Baß. Donna Diana, seine Tochter = Sopran. Donna Fenisa, seine Nichte = Mezzosopran. Floretta, Dianas Jugendgespielin = Sopran. Don Cesar, Prinz von Urgel = Tenor. Don Gaston, Graf von Foix, Bariton. Perin, Sekretär = Baß. — Ort: Barcelona.

Berlin 1886. Das Libretto ist nach Moretos Lustspiel des gleichen Namens gearbeitet.

**1. Akt.** Halle im Palast. Cesar hat im Turnier gesiegt, doch ist er nicht glücklich, da er die spröde Diana hoffnungslos liebt. Perin giebt ihm den Rat, die Stolze durch Stolz zu besiegen. Diego kommt mit Gaston und drückt sein Bedauern aus, daß keiner seiner Tochter Liebe gewinnen kann.

Verwandlung: Zimmer Dianas. Durch Diego

gezwungen, muß Diana Gaston und Cesar empfangen und ladet die Ritter zu Festlichkeiten ein, schon jetzt aber erstaunt über Cesars scheinbare Kälte.

**2. Akt.** Garten. Maskenfest. Farbenwahl, wonach die Paare sich finden. Fenisa weiß Gaston zu gewinnen, und Diana gesellt sich zu Cesar. Sie möchte ihn zu ihren Füßen sehen, um ihn dann grausam zurückzuweisen, doch ist er dank Perins Rat wohl auf seiner Hut. Sie versucht alle Künste und wird dabei selbst wärmer. Da alles nichts hilft, gerät sie in Wut und sinnt auf Rache. Perin drückt seine Freude aus.

**3. Akt.** Die Ritter bringen ihren Damen Ständchen, auch Gaston Fenisa, in die er sich verliebt hat. Nur Cesar hüllt sich in Schweigen. Diana beschließt, ihn durch Eifersucht gefügiger zu machen und teilt ihm mit, daß sie Gaston liebe. Cesar ist indessen von Perin, welcher der Vertraute der Prinzessin ist, schon vorbereitet und so pariert er den Schlag, indem er erklärt, daß ihn Fenisa gefesselt. Darüber gerät Diana außer Fassung und eilt fort. — Inzwischen haben sich die Herzen von Gaston und Fenisa und von Perin und Floretta gefunden. — Diana allein; sie liebt nun Cesar, teilt es weinend Fenisa mit und nun winkt diese Cesar herbei, dem die überwundene Prinzessin in die Arme sinkt.

---

## Don Pasquale.

Komische Oper in 3 Akten von Donizetti. Text nach der älteren italienischen Oper: „Ser Marc' Antonio" von Camerano.

Personen: Don Pasquale, ein alter Junggeselle = Baß. Dr. Malatesta, Arzt = Bariton. Ernesto, Neffe des Don Pasquale = Tenor. Norina, eine junge Witwe = Sopran. Ein Notar = Baß. – Ort: Rom. Paris 1843.

Don Pasquale verweigert seinem Neffen Ernesto die Verbindung mit Norina. Als er, der bejahrte Mann, selbst noch Heiratsgedanken bekommt, schlägt ihm sein Arzt, Dr. Malatesta, seine Schwester Sofronia vor, und als Don Pasquale dies acceptiert, giebt sich Norina für des Arztes Schwester aus, und durch einen falschen Notar wird ein Ehekontrakt unterzeichnet. Nun aber fängt Norina an, sich wie ein Satan zu geberden und macht dem Alten das Leben so bitter, daß er seelensfroh ist, als er erfährt, daß er nur angeführt ist, giebt seine Heiratspläne auf und gestattet seinem Neffen die Ehe mit Norina.

**1. Akt.** Introduktion zwischen Don Pasquale und dem Doktor. Romanze Malatestas: „Ach wie ein Engel

himmlisch schön". Cavatine Pasquales: „Ach, ich fühl' des Feuers Glut in meinem Herzen". Duett zwischen Ernesto und Pasquale: „Wie? Ihr wolltet? — Mich vermählen".

Verwandlung: Cavatine Norinas: „Ach, unter allen Blicken". Duett zwischen Norina und Doktor: „Seht mich bereit, ich will mit Liebe ihn umschweben".

**2. Akt.** Ernesto allein; dann Pasquale, Norina, Doktor (Terzett: „Fasse Mut nur".) Finale: „Von einer Seite ꝛc."

**3. Akt.** Chor: „Schafft den Schmuck geschwind zur Stelle". Duett zwischen Pasquale und Norina: „Frau Gemahlin, darf man wohl fragen". Duett zwischen Pasquale und Doktor: „Ganz im Stillen, sacht und leise".

Verwandlung. Ernestos Serenade: „Wie Luna lacht in der duftigen Nacht". Duett zwischen Ernesto und Norina: „Les' ich in Deinen Blicken". Finale: „Himmel was sprecht Ihr da? — Dies ist Norina".

---

## Don Quixote.

Musikalische Tragikomödie in 3 Aufzügen von Wilhelm Kienzl. Text vom Komponisten.

Personen: Der Herzog = Tenor. Die Herzogin = Sopran. Don Clavijo = Baß. Alonzo Quixano (gen. Don Quixote von der Mancha) = Bariton. Mercedes, dessen Nichte = Mezzosopran. Sancho Pansa = Tenor-Buffo. Carrasco = Bariton. Tirante = Baß-Buffo. Maritornes, dessen Tochter = Sopran. Aldonza = Alt. Ein Bote = Baß. Küchenjunge = Sopran. Mädchen im Dienste der Herzogin: Frasquita = Sopran. Rosita = Sopran. Marieta = Alt. Juanita = Alt. Ort: in der Mancha (Spanien). Zeit: das 16. Jahrhundert.

Berlin 1898.

**1. Aufzug.** Wohnzimmer des Don Quixote. Dieser sitzt schlafend in einem großen Lehnstuhl. An der Hinterwand erscheinen in lichtverklärten Bildern die Gestalten seiner Träume. Zuerst „Don Quixote im Kampf mit einem Ritter", dann „die zwölf Ritter von der Tafelrunde mit König Artus in der Mitte", hierauf, als letztes, „Dulcinea von Tohoso, dem vor ihr knieenden Don Quixote den Lorbeer um die Stirne legend". Mercedes, die ihren Oheim Don Quixote aufweckt, erkennt an seinen wirren Reden, daß er die Vernunft verloren hat und sich einbildet, als fahrender Ritter Abenteuer aufsuchen zu müssen.

Verwandlung. Offene Schenke (die verbindende symphonische Musik schildert Don Quixotes phantastischen Ausritt). Dieser hält das Wirtshaus für ein Schloß und naht sich, um von dem Schloßherrn den Ritterschlag zu erbitten. Da Carrasco ihn kennt, und den andern von seinem Wahnwitz

erzählt, so gehen diese auf den Scherz ein. Carrasco erzählt von dem Riesen Mambrin, der sich an der Prinzessin Micomicona vergriffen habe und fordert Don Quixote zu ihrer Befreiung auf. Unter allerlei lächerlichen Ceremonien vollzieht Tiraute den Ritterschlag. Ein Liebesabenteuer mit Maritornes, die er für eine Prinzessin hält, bekommt ihm übel. Er nimmt den Bauern Sancho Pansa zum Knappen an. Der Hof erscheint und geht ebenfalls auf Don Quixotes angebliche Abenteuer ein. Als dieser seine Zeche bezahlen soll, macht er sich eiligst aus dem Staube, während Sancho Pansa von den übrigen übel zugerichtet wird.

**2. Aufzug.** Platz vor dem herzoglichen Schlosse. Der Herzog hat Don Quixote an den Hof geladen und man ist mit den Vorbereitungen beschäftigt, um sich an seinen abenteuerlichen Ideen zu ergötzen. Nach einem Festmahl wirft sich Don Clavijo, als Frau verkleidet, vor Don Quixote nieder und fleht ihn an, den Zweikampf mit dem Riesen Malambruno aufzunehmen, der ihn und viele andere verzaubert hat. Um zu diesem zu gelangen, läßt man Don Quixote und Sancho Pansa ein hölzernes Pferd besteigen. Nachdem man die beiden auf allerlei Art genarrt hat, explodiert hinten am Holzpferde ein Feuerrad, das das Pferd in Stücke reißt und die beiden zur Erde schleudert. Don Clavijo hat inzwischen eine entsprechende Maskerade inscenirt und Don Quixote kann befriedigt von dannen ziehen, da ein anderer Zauberer schon den Bann gehoben hat.

**3. Aufzug.** Straße in romantischer Gegend. Mercedes hat sich als Dulcinea verkleidet, Carrasco als „Ritter vom weißen Monde". Sie wollen versuchen, Don Quixote zur Heimkehr zu bewegen. Mercedes hat Carrasco versprochen, seine Liebeswerbung zu erhören, falls ihm dies gelingt. Zuerst kommt Sancho Pansa, von einer bewaffneten Horde verfolgt, atemlos angestürzt. Furchtbar geprügelt sinkt er zu Boden. So findet ihn Don Quixote, der nun mit dem „Ritter vom weißen Monde" kämpft und, da er unterliegt, seinem Versprechen gemäß, nach Hause zurückkehrt.

Verwandlung. Don Quixotes Zimmer. Don Quixote macht sein Testament und wirft die Ritterbücher, die ihn zu seinem Narrentum verleitet haben, ins Feuer. Plötzlich stürzt er nieder und stirbt. Mercedes, Carrasco und Sancho Pansa beweinen ihn.

## Der Dorfbarbier.

Singspiel in 2 Akten von Johann Schenk. Text von J. Weidemann.

Personen: Lux, ein Dorfbarbier = Bariton. Jungfer Suschen, sein Mündel = Sopran. Rund, der Schulmeister = Baß. Josef, eines Pächters Sohn = Tenor. Adam, ein Barbiergeselle = Tenor. Frau Margarete, Witwe = Mezzosopran. Peter, ein Schneider = Baß. Philipp u. Thomas, Bauern und Geschworene = Baß. Ort: Barbierstube bei Lux. Zeit: In der Zopfzeit.
Wien 1796.

Josef und Suschen lieben sich. Da aber der Dorfbruder und Kurpfuscher Lux selbst sein Mündel heiraten will, so spielt ihm das Liebespaar eine Komödie vor. Das Mädchen thut, als könne sie den Burschen garnicht leiden, und er giebt vor, aus Liebeskummer Gift genommen zu haben. Den scheinbar Sterbenden läßt Lux aus Barmherzigkeit auf dem Totenbette mit Suschen verheiraten. Als aber dies geschehen ist, bekommt Josef gesunden Appetit, verzehrt eine große Portion Schinken und wird davon gesund. Lux ist zwar betroffen, aber getröstet, daß er als Arzt zum Wohle der Menschheit gewirkt hat.

**1. Akt.** Introduktion: „Es ist gewiß und wahr, gesegnet ist dies Jahr für Doktor und Barbierer". Arie des Lux: „Wut, Eifersucht und Rache". Couplet des Adam mit dem Refrain: „Und das war gut". Suschens Arie: „Wen rühret nicht mein Leiden". Duett zwischen Lux und Suschen: „Ich bin bewundert und geschätzt". Finale: „Gott grüße Euch in Ehren".

**2. Akt.** Terzett: Josef, Suschen, Rund: „Bald werden die Leiden verschwinden". Arie Adams: „Der Teufel hol' die Schererei: Arie des Lux: „Der Kopf ist meine Zierde". Arie Suschens: „Mädchen kann man leicht bethören". Josefs Arie: „Verzweiflungsvoll ist meine Lage". Duett zwischen Lux und Josef: „Der Tod sitzt ihm schon auf der Zunge". Runds Arie: „Gedenk', o Mensch, Du bist aus Staub". Schlußchor: „Es lebe Lux, der Wundermann".

## Die drei Pintos.

Komische Oper in 3 Akten; unvollendet hinterlassen von C. M. v. Weber mit Text von Th. Hell. Neubearbeitung des Textes von Karl von Weber mit Vollendung des musikalischen Teiles nach Motiven C. M. v. Webers von Gustav Mahler.

Personen: Don Pantaleone und Don Gomez, Edelleute in Madrid = Bariton. Klarissa, Don Pantaleones Tochter = Sopran. Laura, deren Zofe = Mezzosopran. Don Gaston Viratos, Student = Tenor. Ambrosio, dessen Diener = Bariton. Don Pinto, Landedelmann = Baß. Der Wirt einer Dorfschenke = Baß. Ines, dessen Tochter = Sopran. Ort: Eine Dorfschenke zwischen Madrid und Salamanca, und Madrid.

**1. Akt.** Die Veranda einer Dorfschenke. Der etwas unbeholfene Landmann Pinto de Fonsera ist mit einem Empfehlungsbrief an Don Pantaleone nach Madrid unterwegs, um Klarissa als Frau heimzuführen. Er stößt auf den Studenten Gaston Viratos. Dieser und sein Diener Ambrosio geben Pinto Verhaltungsmaßregeln, der junge Student beschließt aber am Ende, selbst für Pinto nach Madrid zu gehen, nimmt dem eingeschlafenen Landedelmann das Empfehlungsschreiben ab und macht sich auf den Weg.

**2. Akt.** Saal bei Pantaleone. Klarissa liebt den Don Gomez, ist daher tief betroffen, als der Vater ihr ankündigt, daß er den in Bälde erwarteten Pinto zu ihrem Gemahl bestimmt habe. Gomez, Klarissa und Laura, das schlaue Kammermädchen, beraten, wie sie doch zu ihrem Ziele kommen können, werden aber von Pantaleone auseinandergetrieben.

**3. Akt.** Anderer Saal bei Pantaleone. Zuerst langt jetzt Gaston mit seinem Diener Ambrosio an und giebt sich als den erwarteten Pinto. Als er aber die Lage der Dinge überschaut, giebt er das Empfehlungsschreiben an Gomez, der nun seinerseits als Pinto auftritt. Als man aber seine Ankunft feiert, erscheint der echte Pinto, durch seine Tölpelhaftigkeit zuerst Heiterkeit erregend, dann aber unangenehmen Eindruck hervorrufend, als er vor Gaston, der ihm zu Leibe rückt, feig entflieht. Der nun aufgeklärte Pantalone verzeiht dem Liebespaar und willigt in den Bund.

## Ekkehard.

Oper in 5 Akten von J. J. Abert. Text von einem Anonymus nach Scheffels Roman.

Personen: Hadwig, Herzogin von Schwaben = Sopran. Praxedis ihre Vertraute = Sopran. Graf von Montfort = Bariton. Abt Wazmann = Baß. Rudimann, Kellermeister = Bariton. Ekkehard, Mönch = Tenor. Waldfrau = Alt. Ort: Kloster Reichenau, auf dem Hohentwiel. Zeit: 10. Jahrhundert.
Berlin 1878.

**1. Akt.** Vor dem Kloster Reichenau. Unerkannt mischen sich Herzogin Hadwig und Praxedis unter das Volk beim Winzerfest und Ekkehard beschützt die Frauen vor dem angetrunkenen Rudiman. Gehässig klagt der Letztere nun Ekkehard an und man findet bei dem Mönche ein Buch von Vergil. Bei der Ankunft des Grafen Montfort wird Hadwig erkannt, sie fordert die Verbannung Ekkehards, nimmt ihn aber mit sich nach Hohentwiel, wo er ihr den Vergil erklären soll.

**2. Akt.** Auf Hohentwiel. Als Graf Montfort merkt, daß zwischen Ekkehard und Hadwig ein Liebesbündnis anhebt, beschließt das Verderben des Mönches.

Verwandlung: Ekkehard kommt dazu, wie von Umwohnern ein heidnisches Fest gefeiert wird. Als er zürnend dazwischentritt, wirft ihm die von Montfort gewonnene Waldfrau seine weltliche Liebe zu Hadwig vor, was ihn zerschmettert.

**3. Akt.** Kapelle. Ekkehards Liebe wird zur Raserei; er überfällt die Herzogin, als sie in der Kapelle für den verstorbenen Gatten betet; da sie aber um Hilfe ruft, wird Ekkehard, obwohl Hadwig das Herz dabei bricht, verflucht.

**4. Akt.** Burghof. Montfort, um Hadwig zu gewinnen, verbündet sich mit den anrückenden Hunnen, doch Praxedis befreit den von ihr still geliebten Ekkehard aus dem Kerker, bewaffnet ihn, er stellt sich an die Spitze der Knechte, tötet Montfort, schlägt die Hunnen zurück und rettet Hadwig aus der zusammenstürzenden Burg. Als ihn die Herzogin nun in hervorbrechender Liebe zurückhalten will, ist sein Pflichtgefühl stärker geworden und er geht, wohin ihn der Herr ruft.

**5. Akt.** Vor dem Hohentwiel. Praxedis ist Ekkehard im Mönchsgewande gefolgt und Ekkehard selbst, der Sieger in der Hunnenschlacht, schwer verwundet. Er stirbt im Angesichte Hadwigs und glaubt so seine Schuld gesühnt zu haben.

## Enoch Arden (Erben).

Oper in 1 Aufzug von Robert Erben, Text nach Tennyson von Vittorio di Dio.

Personen: Enoch Arden = Bariton. Anni, sein Weib = Sopran Mary, beider Tochter = Sopran. Philipp Ray, Annies zweiter Gatte = Tenor. Mirjam Lane = Alt. Ein alter Matrose = Bariton. Ort: Kleiner englischer Hafenplatz. Zeit: 18. Jahrhundert.

**Einziger Aufzug.** Vor einer Hafen-Schenke. Nach einem Orchester-Vorspiel zeigt sich das feierabendliche Getriebe der kleinen Stadt (Tanz und Seemannslied: „Ein Seemann zog in ferne Lande"). Während des Gesanges treten Annie und Philipp aus ihrem Hause. Annie betrauert noch immer ihren ersten, verschwundenen Mann Enoch Arden; Philipp tröstet sie. Ein Schiff landet, ungesehen eilt Enoch Arden an den Strand. Annie stürzt aus ihrem Hause zu Mirjam und fragt, ob niemand gekommen sei. Ein Traum hat ihr die Leiden des auf eine einsame Insel verschlagenen Enoch gezeigt. Enoch hat vergeblich Weib und Kinder gesucht. Mary, seine älteste Tochter, die das „Seemannslied" singt, verrät ihm unbewußt Annies Schicksal. Arden verzichtet. (Dramatisches Zwischenspiel des Orchesters.) Arden entdeckt sich Mirjam und fleht sie an, ihn erst nach seinem Tode zu verraten. Von dem schrecklichen Schicksal zu Tode getroffen, sinkt er sterbend hin. Philipp erkennt ihn, seine letzte Bitte ist, ihn Annie nicht zu zeigen. Ein alter Mann ruft seinen Namen, Annie stürzt mit einem furchtbaren Aufschrei hinzu. Sie sinkt an seiner Leiche nieder. — Aus der Ferne klingt das Lied der abfahrenden Matrosen.

---

## Enoch Arden (Hansmann).

Oper in 1 Aufzuge von Viktor Hansmann. Text frei nach Tennyson von C. W. Marschner.

Personen: Enoch Arden = Bariton; William, sein Freund = Baß; Annie = Sopran; Philipp = Tenor; Johannes, Ardens Sohn = Mezzosopran; Miriam Lane, die Kronenwirthin = Alt; ein junger Bauer = Tenor. — Ort: Ein norwegisches Fischerdorf am Meere.

Freier Platz im Dorfe. Ein Hochzeitszug, dessen Mittelpunkt das Brautpaar Philipp und Annie bilden, zieht heran und macht vor dem Wirtshause Halt. Der Chor begrüßt das junge Paar; Philipp dankt und verspricht dem kleinen Sohne Johannes des verschollenen Enoch Arden und Annis, jetzt sein Vater sein zu wollen. Annie wird von Zweifeln gequält, ob der Verschwundene auch wirklich tot sei, da sie andernfalls

Philipp, den sie von Herzen liebt, nicht angehören könne. Philipp beruhigt sie, da Enoch schon 7 Jahre verschollen sei, und erinnert sie an ihre Kindheit, wo sie sich schon geliebt hätten, bis Arden kam und ihm (Philipp) die Geliebte entführte. Gott habe es gewollt, daß sie sich doch angehörten, und habe deshalb Ardens Schiff zerschellen lassen. Annie beruhigt sich, und der Zug wendet sich unter Chorgesang zur Kirche. Inzwischen kommt der totgeglaubte Arden mit seinem Freunde William in einem Boote an, begrüßt in bewegten Worten die Heimat und erzählt, wie er aus dem Schiffbruch gerettet worden ist und lange Jahre auf einem einsamen Eilande hat zubringen müssen, bis endlich ein vorüberseglendes Schiff seine Zeichen bemerkte und ihn aufnahm. Als er vergebens in seinem Hause nach Annie sucht und schon fürchtet, daß sie tot sei, kommt Miriam, eine lahme Alte, angehinkt. Er erkennt sie wieder und fragt sie aus, während aus der Kirche Chorgesang erschallt. Zu seinem Schrecken hört er, daß sein Weib ihn als Toten betrauert habe und eben einem Andern die Hand zum Ehebunde reiche. Der die Kirche verlassende Hochzeitszug bestätigt ihm die Wahrheit des Gehörten, und verzweifelt eilt er weg. Das junge Paar freut sich seines Eheglücks, und auf dem freien Platze wird ein lustiger Tanz veranstaltet (Chor: „Nun schürz' dich, Gretlein"). Von Miriam erfährt Annie, daß ein Fremder nach ihr gefragt habe; als von neuem bange Ahnungen sie erfassen, trösten Miriam und Philipp sie, und alle betreten das Wirtshaus, um den Hochzeitsschmaus einzunehmen. — Es ist dunkel geworden, Enoch und William kehren zurück, Enoch will entsagen, aber Annie noch einmal sehen; durch das Fenster schaut er hinein und freut sich über seinen herangewachsenen Sohn, seine Tochter sucht er vergebens: sie ist gestorben. Er will im Meere den Tod suchen; William hält ihn zurück und schlägt ihm vor, er wolle Annie berichten, daß ihr erster Mann tot sei, um erst einmal den Eindruck, den diese Nachricht auf sie macht, festzustellen. Während ein Gewitter heraufzieht, richtet er die Botschaft aus, und als Annie in schmerzliche Klagen ausbricht, giebt Enoch sich ihr im überwallenden Gefühle zu erkennen und zieht sie an sich, Philipp weist ihn zurück, und Enoch, der reuevoll einsieht, daß er den Seelenfrieden seines Weibes auf immer zerstört hat, und daß Philipp auf seine Rechte doch nicht verzichten wird, reißt sich nach kurzem, schmerzlichem Abschiede los, rudert auf die stürmische See hinaus und findet sein Grab in den Wellen. Annie will ihm folgen, wird aber von Philipp zurückgehalten und bricht ohnmächtig zusammen.

## Enoch Arden (Raimann).

Oper in 1 Akt von Rudolf Raimann, Text nach Tennysons Gedicht von Carl Groß.

Personen Enoch Arden = Bariton; Philipp Ray = Tenor; Annie = Sopran; Miriam = Mezzo-Sopran; Alfred und Minnie, Annies Kinder = Sopran. Ort: Fischerdorf an der englischen Küste; Zeit; Weihnachtsabend 1750.

Stube in Rays Mühle. Annie und Miriam schmücken den Weihnachtsbaum und legen Geschenke auf die Tische. Annie hat 10 Jahre lang um ihren verschollenen Mann Enoch getrauert und endlich Philipp geheiratet, der ihr und ihren Kindern schon vorher ein treuer Freund und Beschützer gewesen war. Ihre Gedanken weilen aber oft noch bei Enoch, obwohl sie Philipp von Anfang an mehr geliebt hat, als ihn; nur auf den Wunsch ihrer Mutter hat sie Arden geheiratet. (Arie: „Ich war ein Kind.") Miriam beruhigt sie, da Enoch zweifellos tot sei. Philipp tritt herein und erfährt von seiner Frau, daß sie sich Mutter fühle (Duett: „Du schönes Fest"). Philipp ist selig bei dem Gedanken, Vater zu werden (Arie: „Wie lustig hämmert in der Brust") und malt es sich aus, was sein Sohn — wenn es einer würde — einst alles werden solle. Zu ihm tritt Enoch, bleich und zerlumpt, durch einen langen Bart unkenntlich. Philipp will ihm eine Gabe reichen, da giebt Enoch sich zu erkennen. Als Philipp zuerst zweifelt, überzeugt Enoch ihn durch die Mitteilung von Jugenderlebnissen, die nur ihnen beiden bekannt sind, und erzählt ihm, wie er, nach dem Schiffbruche auf eine öde Küste verschlagen, jahrelang einsam gelebt habe, bis endlich ein Schiff ihn aufnahm. Er fragt bang nach seiner Frau und seinen Kindern, denn er hat sein Haus leer gefunden und fürchtet, daß sie tot seien. Philipp berichtet ihm, daß sie leben, kann ihm aber die Wahrheit nicht eingestehen und geht ab. Enoch wundert sich über den kühlen Empfang (Arie: „Kein freundlich Wort") und sieht sich im Zimmer um. Aus den Zetteln, die Annie auf die Weihnachtstische gelegt hat, ersieht er die Wahrheit und sinkt verzweifelt zusammen. Sein kleiner Sohn Alfred tritt zu ihm und erregt ihn durch sein kindliches Geplauder noch mehr. Philipp kehrt zurück, hat aber nicht den Mut gehabt, Annie zu sprechen. Enoch will entsagen und bittet ihn, ihr überhaupt nichts zu sagen; erst wenn er tot ist, soll Philipp ihr erzählen, daß er sie bis zum letzten Atemzuge geliebt und gesegnet habe (Arie: „Und bin

ich tot"). Philipp verspricht es ihm tief erschüttert und Enoch geht hinaus; Miriam zündet die Kerzen am Baume an, aus der Kirche erschallt ein Choral, Annie tritt mit den Kindern ein; allgemeiner Weihnachtsjubel. Enoch segnet draußen entblößten Hauptes die Gruppe.

## Die Entführung aus dem Serail,

Komische Oper in 3 Akten von Mozart. Text von C. F. Lentzner, bearbeitet von Stephani d. j.

Personen: Selim Bassa = Sprechpartie. Konstanze = Sopran. Blondchen, deren Mädchen = Sopran. Belmonte = Tenor. Pedrillo, dessen Diener, als Aufseher in den Gärten des Bassa = Tenor. Osmin, Aufseher über das Landhaus des Bassa = Baß. – Ort: Das Landgut des Bassa. – Zeit: 16. Jahrhundert.

Auf Befehl Joseph II. zum erstenmal aufgeführt 1782 am National-Theater in Wien. Diese Oper ist das eigentlich erste deutsche Singspiel, da vorhergehende Werke meistens Nachahmungen und Übertragungen fremdländischer Werke waren.

**1. Akt.** Belmonte sucht seine Geliebte, Konstanze, die mit ihrer Zofe Blondchen in die Gewalt Selim Bassas geraten ist (Arie: „Hier soll ich Dich denn sehen, Konstanze, Dich mein Glück"). Als Osmin kommt, der Feigen pflücken will, zieht sich Belmonte zurück (Arie: „Wer ein Liebchen hat gefunden"). Belmonte kommt zurück, um Nachrichten über seinen Diener Pedrillo einzuziehen (Duett: „Verwünscht seist Du samt Deinem Liede"). Osmin wird ärgerlich, auch über Pedrillo (Arie: „Solche hergelaufne Laffen"). Belmonte erhält jetzt von Pedrillo Auskunft und entschließt sich, Konstanze zu entführen (Arie: „Konstanze, Konstanze, Dich wieder zu sehen"). Nach dem Chor: „Singt dem großen Bassa Lieder", kommt Selim mit Konstanze, um deren Liebe er vergebens wirbt (Konstanzens Arie: „O, so verzeih! Ach, ich liebte —"). Auf Pedrillos Empfehlung nimmt der Bassa Belmonte als Baumeister an, aber Osmin verwehrt ihnen den Zutritt zum Palast (Terzett: „Marsch! Marsch! Marsch!").

**2. Akt.** Blondchen weist Osmins rauhe Zärtlichkeit zurück (Arie: „Durch Zärtlichkeit und Schmeicheln"). Im darauf folgenden Duett: „Ich gehe, doch rate ich Dir, den Schurken Pedrillo zu meiden", giebt Osmin nach. Konstanze kommt in niedergedrückter Stimmung zu Blondchen (Arie: „Traurigkeit ward mir zum Lose"). Selim fordert ihre Liebe, sonst will er Gewalt gebrauchen (Arie: „Auch die will ich ertragen"). — Als sie ab sind, kommt Pedrillo zu seinem geliebten Blondchen und teilt ihr mit, daß Belmonte da sei und alles zur Flucht vorbereite. Blondchens Ent-

zücken in der Arie: „Welche Wonne, welche Lust". Pedrillo sucht vor allem Osmin unschädlich zu machen und ladet ihn zum Wein ein (Arie: „Auf zum Kampfe" und Duett: „Vivat Bachus! Bachus lebe!"). Nachdem Osmin betrunken abgegangen, sieht Belmonte seine Konstanze wieder (Quartett: Belmonte, Konstanze, Pedrillo, Blondchen: „Ach Belmonte, ach mein Leben!").

**3. Akt.** Belmonte und Pedrillo kommen mit Leitern (Arie Belmontes: „Wenn der Freude Thränen fließen" und Romanze Pedrillos: „Im Mohrenland gefangen war"). Belmonte gelingt es, Konstanze zu entführen, als aber Pedrillo mit Blondchen fort will, werden sie von Osmin erwischt (Arie: „Ha, wie will ich triumphieren"), denn auch Belmonte und Konstanze werden von der Wache zurückgebracht. Selim Bassa, der in Belmonte nun auch noch den Sohn eines Feindes erkennt, will das Paar zum Tode führen lassen (Duett: „O welch' Geschick, o Qual der Seele"). Selims Herz wird jedoch gerührt, er verzeiht und schenkt allen die Freiheit (Finale: „Nie werd' ich Deine Huld verkennen").

---

## Ernani.

(Zuerst unter dem Titel „Il proscritto" gegeben.)
Oper in 4 Akten von G. Verdi. Text nach Viktor Hugos Schauspiel von Piave.

Personen: Don Carlos, König von Spanien = Bariton. Don Ruy Gomez, Grand von Spanien = Baß. Elvira, seine Nichte und Verlobte = Sopran. Johanna, deren Amme = Mezzosopran. Ernani, ein Bandit = Tenor. Don Riccardo, Waffenträger des Königs = Tenor. Jago, Waffenträger des Don Roy Gomez = Baß. — Ort: In Argonien, Aachen und Saragossa. — Zeit: 1519.
Venedig 1844.

**1. Akt.** Gebirge in Argonien. Chor der Banditen: „Ein Hoch Euch, ja trinkt" und: „Ernani, so düster? Weshalb, Du Starker, lagert auf Deiner Stirne Harm?" Ernani antwortet: „Habt Dank geliebte Freunde" und in der Cavatine: „Wie sich die Blum' zur Sonne neigt" teilt er mit, daß er Elvira liebe, die aber von dem alten Gomez de Silva zum Altar geschleppt werden soll. Er fordert die Banditen auf, sie zu entführen.

Verwandlung: Elviras Zimmer. (Szene: „Schon sinkt der Abend und Silva kehrt nicht wieder, o, kehrt er nimmermehr" und Cavatine: „Ernani, Ernani, rette mich"). Man bringt ihr Silvas Brautgeschenke, wofür sie dankt.

In unscheinbarer Kleidung tritt König Karl ein, wird aber von Elvira erkannt und mit seiner Liebe zurückgewiesen. Da er Gewalt gebrauchen will, ergreift sie einen Dolch, aber Ernani tritt dazwischen (Terzett: „Solch' ein Freund eilt schnell herbei"). Karl erkennt in Ernani den Banditenführer und dieser dokumentiert seine Rachegefühle gegen den König, der ihn seiner Güter beraubt; er fordert Karl zum Zweikampf. Silva kommt jetzt dazu (Finale: „Verhaßter Anblick", Cavatine Silvas: „Unglückseel'ger, Du konntest wähnen!"). Er will den Kampf mit beiden aufnehmen, da kommt Riccardo und der König wird erkannt. Ernani flüstert Elvira zu, sich zur Flucht bereit zu halten.

**2. Akt.** Saal im Schlosse Silvas. Ernani kommt als Pilger (Terzett: Silva, Ernani, Elvira: „Der Pilger mag erscheinen"). Er ist verfolgt und sucht Schutz, den Silva ihm gewährt. Es folgt eine Szene zwischen Ernani und Elvira. Letztere glaubte den Geliebten tot und wollte sich am Hochzeitsaltar auch töten (Duett: „Ha, Falsche! Du Heuchlerin"). Silva überrascht sie (Terzett: „Unverschämte, das sollt Ihr büßen"). Er hält zwar sein Wort und rettet jetzt Ernani vor dem König, doch behält er sich die Strafe vor. Karl kommt und verlangt zu wissen, warum die Burg geschlossen. Silva verweigert die Auslieferung Ernanis (Karls Arie: „Laß doch sehen, Du Tugendprahler"). Karls Leute finden des Banditen Versteck nicht. Silva hält sein Wort, selbst als der König Elvira als Geisel nimmt. Als er allein ist, läßt Silva Ernani heraus und fordert ihn zum Kampfe; Ernani weigert sich, mit seinem Retter zu kämpfen, will waffenlos durch ihn sterben, einigt sich dann aber mit Silva, Elvira dem König zu entreißen. Ernani schwört, auf Silvas Hornruf zu erscheinen, wo und wie er sich auch befinde.

**3. Akt.** In Karls des Großen Grabgewölbe zu Aachen. Karl besucht des Kaisers Grab (Cavatine: „Ihr holden Jünglingsträume"). Hinter dem Grabmal belauscht er Verschwörer; Silva und Ernani sind darunter und Ernani beschließt den Mord an Karl. — Die Verschwörung wird vereitelt, da Karls Begleitung kommt. Der König tritt hervor und bestimmt, daß alle Edelleute unter den Verschwörern dem Henker verfallen sollen. Da tritt Ernani vor, auch er verlangt den Tod, denn er ist der vertriebene Don Juan von Argonien. Elvira fleht um Gnade und Karl, dessen Sinn sich gewandelt hat, verzeiht und legt Elviras und Ernanis Hände zusammen.

**4. Akt.** Ernanis Schloß. Elvira und Ernani sind soeben vermählt. Da ertönt ein Hornruf, den Ernani mit

Schrecken vernimmt. Silva kommt und reicht ihm das Horn, reicht ihm zugleich einen Dolch und Ernani hält seinen Schwur und ersticht sich (Terzett: „Verstummt die Klänge, alle Fackeln verglommen").

## Die Eroberung von Troja.

(Siehe die Trojaner.)

## Eugen Onegin.

Lyrische Scenen in 3 Aufzügen von Peter Tschaikowsky, Text nach Puschkins Erzählung. Deutsch von A. Bernhard.

Personen: Larina, Gutsbesitzerin = Mezzosopran: Tatjana = Sopran und Olga = Alt, ihre Töchter; Filipjewna, Wärterin = Mezzosopran; Eugen Onegin = Bariton; Lenski = Tenor: Fürst Gremin = Bariton; ein Hauptmann = Baß; Saretzki = Baß; Triquet, ein Franzose = Tenor. – Ort: Rußland. Zeit: um 1815.

**1. Akt.** Garten. Frau Larina kocht Früchte ein und horcht auf den Gesang ihrer Töchter (Duett: „Hast du gelauscht"). Sie kennt das Lied seit ihrer Jugend, als sie einen leichtlebigen Offizier liebte, statt seiner aber einem ungeliebten Manne die Hand reichen mußte. Allmählich hat sie sich an ihr Geschick gewöhnt und bei ihrem braven Manne Ersatz für die Jugendliebe gefunden. Die Landleute bringen den Erntekranz (Chöre: „Nicht streift mehr mein Fuß" und „Durch das Feld da fließt ein Bächlein"). Tatjana wird durch den Gesang in eine träumerische Stimmung versetzt, während die muntere Olga dabei am liebsten tanzen möchte (Arie: „Zum stummen, schwermutvollen Sehnen"). Es fällt allen auf, daß Tatjana so blaß ist, sie meint, daß der Inhalt eines Buches, das sie liest, sie errege. Lenski kommt mit einem Wagen an und bringt seinen Nachbar Onegin mit. Bald stellt es sich heraus, daß Tatjana Onegin liebt (Quartett: „Was ich ersehnt, ist da"), während Lenski wieder an Olga Gefallen findet. Beide sind sich bald einig, während Onegin Tatjana gegenüber steif-höflich bleibt.

Verwandlung: Tatjanas Zimmer. Das Mädchen ist im Begriffe, zu Bett zu gehen und läßt sich von der Wärterin Filipjewna alte Geschichten erzählen, um ihre innere Erregung zu verbergen und zu bemeistern. Endlich gesteht sie der Alten, daß sie verliebt sei und schickt sie weg. Statt zu schlafen, schreibt sie Briefe, zerreißt aber einen nach dem andern. Endlich bringt sie einen zu stande und versiegelt ihn. Am Fenster

verbringt sie sinnend den Rest der Nacht, und als Filipjewna morgens erscheint, läßt sie sie heimlich den Brief an Onegin besorgen.

Verwandlung: Garten. Eine Anzahl Mägde pflücken Beeren und singen („Kommet, Mädchen, alle zu Hauf"). Tatjana kommt aufgeregt gelaufen und wirft sich auf eine Bank, ihr folgt Onegin, der auf ihren Brief hin angekommen ist, und setzt ihr mit kalter Höflichkeit auseinander, daß er die Offenheit, mit der sie ihm ihr Herz enthüllt habe, ehre, aber nicht im stande sei, ihre Hoffnungen zu erfüllen, da er ein innerlich zerfahrener Mensch und für die Ehe nicht geschaffen sei. Mädchenliebe sei ja auch nur Phantasie, und sie müsse sie überwinden. Tief gekränkt geht Tatjana weg.

**2. Aufzug.** Saal im Larinaschen Hause. Eine fröhliche Menge füllt ihn, Lenski tanzt mit Olga, Onegin mit Tatjana; sie müssen mancherlei Klatscherei der älteren Damen über sich ergehen lassen. Onegin fordert deshalb zum nächsten Tanze trotz Lenskis Widerspruch Olga auf (Chor: „Hoch die Freude!"). Lenski zürnt mit Olga, daß sie mit Onegin kokettiere, und wird so eifersüchtig, daß das Mädchen, um ihn zu strafen, auch den Cotillon mit Onegin tanzen will. Ehe dieser beginnt, singt der Franzose Triquet unter allgemeinem Beifall ein fades Lied zu Tatjanas Preise („A cette fête conviés"). Onegin tanzt mit Olga, der Hauptmann mit Tatjana; Lenski steht finster beiseite. Auf Onegins Frage, was ihm fehle, antwortet er heftig; es kommt zum Streite, und der Tanz wird unterbrochen. Lenski fordert den Freund unter allgemeiner Aufregung. — (Finale: „Hier im Hause verflossen die Stunden.")

Verwandlung: An einer Wassermühle. Es ist früh am Morgen, Lenski und sein Sekundant Saretzki warten ungeduldig auf die Gegenpartei. (Lenskis Arie: „Wohin seid ihr entschwunden.") Endlich kommt Onegin, nur von seinem Diener begleitet, der die Stelle des Sekundanten vertreten soll. Während dieser mit Saretzki verhandelt, bedauern die einstigen Freunde („Mein Feind"), daß sie sich jetzt als Gegner gegenüberstehen müssen. Lenski fällt, von Onegins Kugel getroffen, tot zu Boden, erschüttert stürzt Onegin auf die Leiche.

**3. Akt.** 26 Jahre später. Saal im Palast der Fürstin Gremina (Tatjana). Unter den Gästen befindet sich auch Onegin, der seitdem keine Ruhe gefunden hat und fortwährend, trotz aller Zerstreuungen durch Reisen u. s. w., von Gewissensqualen gefoltert wird (Arie: „Ach, kein Vergessen!"). Er erfährt, daß Tatjana die Fürstin ist, auch sie kann bei seinem Anblicke ihre Bewegung kaum bemeistern. Der Fürst erzählt Onegin, daß er seine Frau unsäglich liebe (Arie: „Ein jeder

kennt die Lieb' auf Erden") und stellt ihn seiner Frau vor. Diese richtet einige gleichgiltige Worte an ihn und läßt sich von ihrem Gemahle dann fortführen. Onegin sieht ihr nach (Arie: „Ist dies denn wirklich Tatjana?"), er fühlt, daß er sie liebt, bereut sein früheres Benehmen ihr gegenüber und beschließt, sie wieder zu gewinnen.

Verwandlung: Empfangszimmer im Palaste des Fürsten. Tatjana hat von Onegin die Mitteilung erhalten, daß er sie heute noch besuchen werde. Sie liebt ihn noch, aber sie will sich in Zukunft ihren Seelenfrieden bewahren, und als er erscheint, erinnert sie ihn mit tiefer Bewegung an jene Unterredung im Garten. Sie hat ihm verziehen, ja sie erkennt an, daß er richtig gehandelt hat, aber sie erklärt es für seine Pflicht, daß er jetzt gehe und nicht wiederkehre. Seinen leidenschaftlichen Ausbrüchen gegenüber bleibt sie standhaft und verläßt ihn endlich. Vollständig niedergeschmettert steht er da und stürzt dann verzweifelt hinweg.

---

## Euryanthe.

Romantische Oper in 3 Akten von C. M. v. Weber. Text nach einer alten französischen Sage von Helmine von Chézy.

Personen: Ludwig VI. = Baß; Adolar, Graf von Nevers = Tenor; Euryanthe v. Savoyen, dessen Braut = Sopran; Lysiart, Graf v. Forest = Bariton; Eglantine v. Puiset, die gefangene Tochter eines Empörers = Mezzosopran. — Ort: Schloß Premery und Burg Nevers. — Zeit: 1110. Wien 1821.

Adolar von Nevers ist mit Euryanthe von Savoyen verlobt, und seine Braut wohnt auf Schloß Nevers, wo auch Eglantine, die Tochter eines Empörers, Zuflucht gefunden. Eglantine liebt Adolar, von dem sie verschmäht wird, und Lysiart liebt Euryanthe ohne Erwiderung.

**1. Akt.** Saal im Königsschloß (Chor: „Dem Frieden Heil — den Frauen Heil"). Der König teilt Adolar mit, daß er Euryanthe an den Hof kommen lassen wolle und fordert ein Minnelied zu ihrem Preis (Adolars Cavatine: „Unter blüh'nden Mandelbäumen"). Alles singt Euryanthe Heil, nur Lysiart erträgt das nicht und bestreitet die Treue der Frauen und macht sich anheischig, Euryanthes Liebe leicht gewinnen zu können. Adolar aber setzt Blut und Gut an der Geliebten Treue; er geht mit Lysiart eine Wette ein, der gegen Adolars Besitz den seinigen stellt. Vergebens sucht der König die Ritter von so frevelhaftem Thun zurückzuhalten, sie bestehen darauf.

Verwandlung: Schloßgarten in Nevers. Euryanthe allein (Arie: „Glöcklein im Thale"). Zu ihr gesellt sich Eglantine (Cavatine: „O mein Leid ist unermessen"). Euryanthe schenkt Eglantine ihr Vertrauen und teilt ihr Adolars Geheimnis mit. Als Emmas, Adolars Schwester, Bräutigam in der Schlacht gefallen, hat sie aus einem Ringe Gift getrunken und kann nun im Grabe nicht eher Ruhe finden, bis die Thränen einer Unschuldigen den Ring im höchsten Leid genetzt und sie treu dem Mörder Rettung beut für Mord. — Euryanthe bedauert zwar sofort, des Schweigens Treue gebrochen zu haben, Eglantine beruhigt sie aber, um dann allein zu triumphieren (Recitativ und Arie: „Bethörte, die an meine Liebe glaubt", „Er konnte mich um sie verschmähen"). Sie verbindet sich jetzt mit dem nahenden Lysiart.

**2. Akt.** Derselbe Garten. Lysiart verzweifelt daran, Euryanthes Liebe zu gewinnen (Recitativ: „Wo berg' ich mich? Wo find' ich Fassung wieder" und Arie: „So weih' ich mich den Nachgewalten, sie locken mich zu schwarzer That"). Eglantine hat Emmas Ring aus der Gruft geraubt, und Lysiart nimmt ihn, um damit den Beweis von Euryanthes Untreue zu erbringen (Duett: „Komm' dann, unser Leid zu rächen").

Verwandlung: Szene des 1. Aktes (Cavatine Adolars: „Wehen mir Lüfte Ruh"). Zu ihm tritt Euryanthe (Duett: „Nimm hin die Seele mein"). Nun kommt aber Lysiart, erklärt sich vor versammeltem Hofe als Sieger und weist zum Zeichen dessen den Ring vor. Adolar verliert sein Besitztum und will fort ins Elend, wo niemand seinen Namen hört. Euryanthe geht mit ihm.

**3. Akt.** Wald. Adolar und Euryanthe (Recitativ: „Hier weilest Du" und Duett: „Wie lieb' ich Dich! — Du warst mein höchstes Gut"). Adolar will Euryanthe töten, da naht eine große Schlange, und Euryanthe will Adolar retten, indem sie sich dem Untier entgegenwirft (Arie: „Schirmender Engel Schar"). Nachdem aber Adolar die Schlange erlegt, vermag er Euryanthe, die sich für ihn opfern wollte, nicht mehr zu töten. Er verläßt sie (Cavatine Euryanthe: „So bin ich nun verlassen"). Der König kommt mit Jagdgefolge (Chor: „Die Thale dampfen, die Höhen glüh'n"). Er findet Euryanthe (Duett: „Laßt mich hier in Ruh' erblassen"). Sie erzählt nun dem König den Verrat Eglantines und beschwört ihre Unschuld. Der König nimmt sie mit sich (Arie und Chor: „Zu ihm, zu ihm, o weilet nicht").

Verwandlung: Schloßgarten in Nevers. Adolars

Cavatine: „Es giebt nicht Treu' auf weiter Erde mehr". — Eglantine erscheint mit Lysiart im Brautzuge zur Kirche, wird aber wahnsinnig, und da sie alles verraten will, von Lysiart erstochen. Adolar soll gefesselt werden, doch verhindert dies die Ankunft des Königs, der Lysiart zu Tode führen läßt und Adolar wieder in seine Rechte einsetzt. Eurhanthe wird mit dem Geliebten vereint, und auch die unglückliche Emma kann nun selig werden, denn der Unschuld Thräne hat den Ring benetzt, und Treue bot dem Mörder Rettung an für Mord. So ruft alles: „Heil Adolar, Heil Eurhanthe!"

## Der Evangelimann.

Musikalisches Schauspiel in 2 Aufzügen von Wilhelm Kienzl. Text vom Komponisten (nach Dr. L. F. Meißner).

Personen: Friedrich Engel = Baß; Martha, dessen Nichte = Sopran; Magdalena, deren Freundin = Alt; Johannes Freudhofer, Lehrer zu St. Othmar = Bariton; Matthias Freudhofer, sein Bruder, Aktuarius im Kloster = Tenor; Zitterbart = Tenor-Buffo; Schnappauf = Baß-Buffo; Aibler = Baß; dessen Frau = Mezzosopran; Frau Huber = Sopran; Hans = Tenor. Zeit: im 19. Jahrhundert. Ort: Benediktinerkloster St. Othmar und Wien.

Berlin 1895.

**1. Aufzug.** Klosterhof zu St. Othmar. Johannes verrät Marthas und Matthias Liebe an Engel. Dieser entläßt Matthias aus dem Amt. Die Bürger vergnügen sich beim Kegelspiel. Währenddessen bittet Matthias Martha durch Magdalene um ein letztes Wiedersehn. Johannes, der Martha auch liebt, belauscht ihn und will das Liebespaar zu Grunde richten. Während sie nachts in der Laube Abschied nehmen, bricht Feuer aus. Matthias, der helfen will, wird für den Brandstifter gehalten und festgenommen.

**2. Aufzug.** 30 Jahre später, spielt in Wien. I. Teil; ein Hof. Matthias kommt als Evangelimann und trifft Magdalenen, die den schwerkranken Johannes pflegt. Sie erkennen sich und er erzählt ihr, daß er damals zu zwanzig Jahren Kerkerhaft verurteilt wurde wegen Brandstiftung. Nun entlassen, hört er, daß Martha sich damals ertränkt hat. Aus Gram über den Verdacht, der noch immer auf ihm lastet, wird er Evangelimann.

II. Teil: 1 Tag später; Wohnzimmer des Johannes. Johannes liegt krank darnieder, als er die Stimme des Matthias hört. Er läßt ihn holen, und beichtet ihm, ohne ihn zu erkennen, daß er damals das Feuer angelegt habe. Matthias erkennt den Bruder, dem er nach kurzem Kampfe verzeiht. Johannes stirbt.

## Evanthia.

Preisgekrönte Oper in 1 Akt von Paul Umlauft. Text vom Komponisten.

Personen: Evanthia, eine junge Griechin = Sopran; Dimitrios, ihr Verwandter = Tenor; Euthymios, dessen Freund = Bariton; Panajiotis, ein alter Landmann = Baß; Georgios, ein junger Landmann = Tenor; Chrysula, seine Braut = Sopran. — Ort: Landschaft am Fuße des Taygetos in Griechenland. Zeit der griechischen Freiheitskämpfe.

Die Oper wurde als eine der beiden, aus der Konkurrenz hervorgegangenen Werke zum erstenmale in Gotha 1893 aufgeführt.

Eine gebirgige Gegend mit dem Haus des Panajiotis. Die Türken bedrohen das Land, darum müssen Georgios und Chrysula mit dem Chor ihre Tänze abbrechen. Evanthia soll die Todesbrüderschaft zwischen Dimitrios und Euthymios abschließen und sie thut dies, indem sie die Freunde mit einem Schleier symbolisch verbindet. Nachdem die Ceremonie vorüber, entdeckt Euthymios dem Bruder seine Liebe zu Evanthia und bittet Dimitrios, für ihn zu werben. Dimitrios liebt selbst das Mädchen, hält aber seinen Schwur und tritt zu Evanthia, ihr die Liebe des Euthymios anzubieten. Evanthia, welche Dimitrios liebt, glaubt anfänglich mit Entzücken, daß dieser für sich selbst spreche, vernimmt dann mit Schrecken die Werbung für Euthymios, und da sie sich nun von Dimitrios nicht geliebt wähnt, so giebt sie für den Freund das Jawort. Dimitrios ist resigniert, als er das neue Brautpaar vereint sieht. — Eine Pause in der Handlung wird durch ein Orchesterzwischenspiel ausgefüllt. — Dimitrios und Evanthia können ihre heiße Liebe doch nicht vor einander verbergen, aber dem Freunde und Verlobten treu, nehmen sie innig Abschied von einander. Euthymios ist ein ebenso treuer Freund; er hat die letzte Szene belauscht und beschließt, seine Liebe zu opfern, um die geliebten Menschen glücklich zu machen. Er beschließt sofort, sich in den Kampf mit den Feinden zu stürzen und unternimmt das Wagestück, über die unwegsamen Felsen kletternd, das Türkenlager in Brand zu setzen. Die Freunde benützen des Feindes Verwirrung, besiegen die Feinde, aber Euthymios ist dabei tötlich verwundet. Ehe er stirbt, legt er die Hände Evanthias und Dimitrios zusammen.

## Faust.

Oper in 5 Akten von Charles Gounod. Text nach Goethes Faust 1. Teil, von Barbier und Carré.

Personen: Faust = Tenor. Mephistofeles = Baß. Valentin = Bariton. Brander = Bariton. Siebel = Sopran. Margarete = Sopran Marthe = Alt.

Von den vielen Faust-Opern ist früher die von Spohr öfter dargestellt worden, aber von der Bühne seit dem Erscheinen des Gounodschen Werkes auch verschwunden. Paris 1859.

**1. Akt.** Fausts Studierzimmer. Faust will sich vergiften, weil er verzweifelt, die Tiefen der Wissenschaft ganz zu ergründen. Osterchöre ziehen den Becher von seinem Munde, er beschließt weiter zu leben, ruft aber den Satan herbei, der ihm Gretchens Bild vorzaubert, worauf Faust sich dem Satan verschreibt und von ihm verjüngen läßt.

**2. Akt.** Vor dem Stadtthor. Volksfest, Studentengesänge. Valentin kommt und betrachtet seiner Schwester Gretchen Bild (Arie: „O heiliges Sinnbild"). Siebel verspricht ihm, während er im Feld ist, seine Schwester zu beschützen. Mephistofeles mischt sich unter die Studenten und trägt ihnen ein Lied vor („Ja, das Gold regiert die Welt"); dann spielt der Satan den Zukunftskünder, zeigt Brander den nahen Tod an und prophezeit Siebel, daß er kein Sträußchen mehr zu Margareten tragen werde, da alle Blumen, die er fortan berühre, welken würden. Bei der Schwester Namen tritt Valentin näher, und dringt mit den Freunden auf den höhnenden Mephistofeles ein. Dieser zieht einen magischen Kreis um sich, der ihn vor den Schwertern schützt; als aber die zurückweichenden Männer ihm den Kreuzgriff entgegenhalten, muß des Satans Kunst verblassen. Die Volksmenge kehrt zurück und tanzt. Faust bietet der kommenden Margarete seinen Arm und Geleit an, was sie errötend zurückweist. Der Tanz dauert fort.

**3. Akt.** Margaretens Garten. Siebel will einen Strauß für Margarete winden, doch die Blumen welken (Ariette: „Blümlein traut, sprecht für mich"). Er geht, seine Hände mit Weihwasser zu netzen und nun gelingt ihm das Binden eines Straußes, den er vor Margaretens Thür legt. Währenddem sind Faust und Mephistofeles aufgetreten und der Satan geht, eine bessere Gabe für Margarete zu holen. Faust allein (Cavatine: „Gegrüßt sei mir, o heilge Stätte"). Mephisto bringt einen Kasten mit Schmuck, stellt ihn vor die Thür und geht mit Faust; sie setzt sich ans

Spinnrad (Ballade: „Es war ein König im Thule"). Als sie in das Haus will, entdeckt sie das Schmuckkästchen und ist von dem Inhalt geblendet. Sie schmückt sich (Arie: „Ha, welch Glück, mich so schön zu seh'n). Marthe kommt herein, dann kommt Faust mit Mephisto. Der Satan beschäftigt Marthe, Faust gesteht Margarete seine Liebe (Quartett: „Laßt, ich Euch beschwöre"). Margaretens kindliches Herz giebt sich ganz hin, und als mit sinkender Nacht der Freund geht, ruft sie ihn vom Fenster aus sehnsüchtig zurück.

**4. Akt.** Straße. Die Landsknechte kehren aus dem Krieg wieder. Valentin wird von Siebel willkommen geheißen und geht in sein Haus. Die Landsknechte, vom Volk begleitet, suchen ihre Quartiere auf. Mephisto kommt in der Dämmerung mit Faust und bringt Margareten ein höhnendes Ständchen. Valentin stürzt heraus, wird aber von Faust im Zweikampf erstochen. Das Volk eilt herbei, Gretchen jammert über den sterbenden Valentin, der im Tode die Schwester als Buhlerin verflucht.

Verwandlung: Kirche. Mephisto peinigt die schuldige Margarete, indem er ihr Gewissen foltert und von den Mitbürgern gemieden, stürzt sie ohnmächtig zusammen.

**5. Akt.** Walpurgisnacht. Mephisto zaubert den Faust aus öder Felsengegend in das Bachanal der Walpurgisnacht; als aber Margaretens Bild erscheint, befiehlt Faust dem Satan, ihn zu der Geliebten zu führen.

Verwandlung: Gretchen im Kerker. Sie ist wahnsinnig geworden, erkennt jedoch den rettend nahenden Faust, durchlebt in Gedanken noch einmal alle Liebesseligkeit, weist ihn dann aber fort und ergiebt sich dem Gericht Gottes. Faust entweicht mit dem Satan, Margarete stirbt und wird von Engeln zum Himmel getragen.

---

## Falstaff.

Oper in 3 Akten von G. Verdi. Text nach Shakespeare von A. Boito.

Personen: Sir John Falstaff = Bariton. Ford = Bariton. Alice, dessen Frau = Sopran. Nanette, deren Tochter = Sopran. Fenton = Tenor. Dr. Cajus = Tenor. Bardolf und Pistol, in Falstaffs Diensten = Tenor und Baß Frau Quickly = Alt. Frau Page = Sopran. – Ort: Windsor. – Zeit: 15. Jahrhundert.
Mailand 1893.

**1. Akt.** Zimmer im Gasthaus zum Hosenband. Falstaff ist von Bardolf, Pistol und dem Wirt umgeben, als Cajus kommt und ihn beschimpft, doch wird der aufgeregte Doktor bald hinausbefördert. Falstaff übergiebt erst den

Dienern, dann einem Pagen zwei Briefe an Frau Alice Ford und Frau Meg Page, worauf er seine Diener zankend wegschickt.

Verwandlung: Fords Garten. Alice und Meg haben die gleichlautenden Briefe Falstaffs erhalten, ausgetauscht und beschließen im Verein mit Frau Quickly die Bestrafung des Frechen. Nicht nur die Frauen, auch die Männer, Ford, Fenton, Dr. Cajus, Bardolf und Pistol, welche letztere von ihrem Herrn mißhandelt sind, brüten Rache gegen Falstaff. Es folgt ein Liebesduett zwischen Fenton und Nanette, worauf die Frauen zurückkehren und Falstaff durch Frau Quickly zum Stelldichein einladen lassen. Dazu kommen die Männer, und Bardolf und Pistol werden beredet, Ford bei Falstaff unter fremden Namen einzuführen.

**2. Akt.** Gastzimmer des 1. Aktes. Bardolf und Pistol melden Frau Quickly ihrem Herrn, der von ihr die Einladung zum Stelldichein empfängt. Hierauf wird Ford als Herr Fortuna eingeführt und macht dem dicken Ritter den Antrag, den er reichlich mit Geld unterstützt, bei Frau Ford für ihn zu wirken. Falstaff geht vergnügt darauf ein, und während er forteilt, um bald in stutzerhafter Kleidung zurückzukehren, bricht Ford in wütende Eifersucht aus.

Verwandlung: Saal bei Ford. Da Frau Quickly das Kommen Falstaffs meldet, läßt Frau Ford einen großen Waschkorb aufstellen. Als Falstaff da ist, meldet Frau Quickly die Frau Meg an, wodurch der Ritter genötigt wird, sich hinter dem Wandschirm zu verbergen, als nun gar der wütende Ford eintritt, um mit seinen Freunden Falstaff zu erwischen, versteckt sich dieser in den Waschkorb. Inzwischen spielt sich hinter dem Wandschirm eine Liebesszene zwischen Fenton und Nanette ab, und die von einer Hausdurchsuchung zurückkehrenden Männer hören einen Kuß, man glaubt Falstaff zu erwischen, findet aber Fenton, dem Ford die Thür weist. Als die Männer sich wieder auf die Suche begeben, lassen die Frauen den Waschkorb zum Fenster hinaus in den Graben werfen, wo Falstaff den Hohn aller ertragen muß.

**3. Akt.** Platz vor dem Gasthause. Falstaff erhält durch Frau Quickly abermals ein Einladung, die von den Männern belauscht wird. Nachdem Falstaff zugesagt, zu Hernes Eiche, dem Platz des Rendezvous, zu kommen, geht er mit Frau Quickly ins Haus, und die Männer verabreden den Plan, den Dicken zu bestrafen. Cajus erhält von Ford das Versprechen auf Nanettes Hand und soll, als Nanette

verkleidet, ebenfalls am bestimmten Ort erscheinen. Frau Quickly hört diese Verabredung.

Verwandlung: An Hernes Eiche im Windsorpark. Nacht und Mondschein. Die Frauen stecken Fenton in ein Mönchskleid, worin er Cajus Plan vereiteln soll. Falstaffs folgende Liebesszene mit Frau Ford wird durch Frau Megs Ankündigung, daß die wilde Jagd im Anzuge sei unterbrochen, und die als Geister und Elfen verkleideten Männer peinigen Falstaff. Als die Rache gekühlt, wird Dr. Cajus dupiert, der anstatt Nanette den als Feenkönigin angekleideten Bardolf erwischt. Fenton und Nanette aber werden mit Fords Einwilligung ein Paar.

---

## Die Favoritin.

Oper in 4 Akten von Donizetti. Text von Scribe.

Personen: Alphons XI. König von Kastilien = Bariton. Leonore de Gusman = Mezzosopran. Fernando = Tenor. Balthasar, Prior des Klosters St. Jakob = Baß. Don Gasparo, Offizier des Königs = Tenor. Ines, Leonores Vertraute = Sopran. — Ort: Kastilien. Zeit 1340. Paris 1840.

Fernando ist Novize im Kloster San Jago de Compostella und soll dereinstiger Nachfolger des Priors werden. Fernando aber hat die ihm unbekannte Leonore erblickt und ist in Liebe zu dieser entbrannt. Leonore liebt ihn wieder, und Fernando verläßt das Kloster. Ohne noch immer zu wissen, daß die Geliebte die Maitresse des Königs ist, wird er durch sie zum Offizier ernannt und zeichnet sich im Kampfe gegen die Mauren aus, wobei er auch dem König das Leben rettet. Alphons sieht sich inzwischen durch des Papstes Drohung veranlaßt, von Leonore zu lassen, und so giebt er dem werbenden Fernando die Favoritin zur Gemahlin. Leonore wollte vorher Fernando gestehen, wer sie sei, da aber ihre Botschaft nicht zu Fernando kommt, so erfährt dieser erst nach der Vermählungsfeier, daß seine Gattin des Königs Geliebte war. Er entsagt der Liebe, zerbricht vor dem König seinen Degen und eilt verzweifelt zurück ins Kloster.

**1. Akt.** Chor der Mönche und Szene zwischen Balthasar und Fernando. Fernandos Romanze: „Ein engelschönes Weib, nie gesehen". Duett: „Du mein Sohn, mein einzig Hoffen". Szene zwischen Fernando, Ines und Leonore. Duett: „Mein Geliebter, Gott Dich sendet". Arie Fernandos: „Ja, zu neuem Leben fühl' ich mich erhoben".

**2. Akt.** Im Palast des Königs. Szene zwischen Alphons und Gasparo, dazu Leonore; dann Balthasar, der die Bannbrohung des Papstes bringt.

**3. Akt.** Ebenda. Fernando und Alphons, dazu Leonore (Terzett: „Ferdinand? Vor ihm bedeckt mit Schande"). Leonore allein (Arie: „O mein Fernando, alle Schätze der Erde gäb' ich dahin, dürft' ich die Deine sein"). Chor: „Seht der Kapelle Hallen vom Kerzenscheine strahlen". Finale: „Das schönste Glück lächelt freundlich mir heut'".

**4. Akt.** Im Kloster. Fernando kommt zu Balthasar: „Als ich Dich einst verließ in wildbewegtem Treiben". Leonore sucht Fernando, aber dieser leistet sein Mönchsgelübde.

---

## Die Feen.

Oper in 3 Akten von R. Wagner. Text vom Komponisten.

Personen: Der Feenkönig = Baß. Ada, Parzana u. Jemina, Feen = Sopran. Arindal, König v. Tramond = Tenor. Lora, seine Schwester = Sopran. Morald, sein Freund = Bariton. Gernot, sein Jäger = Baß. Drolla, Loras Zofe = Sopran. Günther = Tenor. Harald, Feldherr = Baß. Ort: Das Reich der Phantasie und Arindals Hauptstadt.

Das Werk ist eine Jugendoper des Meisters, aber zu seinen Lebzeiten nicht aufgeführt. Die erste Aufführung erfolgte erst 1888 in München; nur wenige Bühnen haben das Werk ihrem Spielplan einverleibt.

**1. Akt.** Im Feenreich. Ada liebt einen Menschen. Parzana und Jemina beschließen, sie von dieser Liebe zu heilen, damit sie die Unsterblichkeit nicht verliere.

Verwandlung: Felsenöde. Arindal ist der Gatte Adas geworden, hat aber trotz des Verbots die Frage nach ihrer Herkunft gethan und ist nun aus dem Feenreich in diese Oede versetzt. Abgesandte seines Reiches gewinnen Arindal zur Rückkehr, und nach einem wehmütigen Abschied von der noch einmal erscheinenden Ada, die nur verlangt, daß er nicht fluchen soll, folgt er den Getreuen.

**2. Akt.** Palast Arindals. Ada, um Arindal für sich zu retten, stellt ihn auf die Probe, bekämpft in Zaubergestalt sein Heer und wirft ihre beiden Kinder scheinbar ins Feuer. Der entsetzte Arindal verflucht sie, hört aber dann zu seiner Verzweiflung, daß alles nur eine Probe war. Die Feen gewinnen dadurch zwar die Unsterblichkeit Adas zurück, aber diese selbst muß vorerst hundert Jahre in Stein verwandelt büßen.

**3. Akt.** Arindal ist wahnsinnig geworden, als aber die Zauberstimme Adas ihn um Rettung anfleht, und in wunderbarer Weise zauberische Waffen zu seinen Füßen liegen, kommt er zu Sinnen und eilt zur Erlösung der Gattin fort. Die Feen erhoffen aber seinen Untergang.

Verwandlung: Mit dem Zauberschild kämpft Arindal siegreich gegen Geister im unterirdischen Reich.

Verwandlung: Mit dem Zauberschwert dringt er in tiefere Regionen, erblickt das Steinbild Adas, erweckt es durch eine Zauberleier zu neuen Leben und hat sie so errungen.

Verwandlung: Feenpalast. Der Feenkönig verleiht Arindal die Unsterblichkeit, und dieser überträgt seine irdische Krone seiner Schwester Lora und deren Gatten Morald.

---

## Ein Feldlager in Schlesien.

Oper in 3 Akten von Meyerbeer. Text von L. Rellstab.

Personen: Saldorf, Hauptmann a. D. = Baß. Therese, seine Nichte = Mezzosopran. Vielka = Sopran. Konrad = Tenor. Tronk, Anführer ungarischer Reiter = Bariton; ein ungarischer Reiter = Tenor; ein Grenadierunteroffizier = Baß. Ein Artillerieunteroffizier = Bariton. Ein Zietenscher Husar = Tenor. Ein schwarzer Husar = Baß. Steffen, ein alter Landmann = Tenor. – Ort: Schlesien und Sanssouci. Zeit: Während des siebenjährigen Krieges.
Berlin 1843.

**1. Akt.** Zimmer in einem Landhaus. Friedrich der Große ist in Gefahr, von ungarischen Reitern gefangen genommen zu werden. Während aber Vielka, die Pflegetochter des alten Saldorf, ihre Landleute beschäftigt, wechselt Konrad mit dem König die Kleider, und es gelingt diesem zu entkommen.

**2. Akt.** Preußisches Lagerleben. Lieder und Märsche und Tanz. Auf die falsche Nachricht, daß Saldorf den König in die Hände der Ungarn geliefert, soll der alte Hauptmann gelyncht werden, wird aber noch zur rechten Zeit durch die Ankunft des Königs gerettet.

**3. Akt.** In Sanssouci. Leopold, des alten Saldorf Neffe und angenommener Sohn, der Milchbruder Konrads, ist als scheinbarer Deserteur zum Tode verurteilt. Vielka aber und Konrad, die einstigen Retter Friedrich II., erhalten vom König wegen ihrer That die Begnadigung.

(Die Oper wurde von Meyerbeer für den „Nordstern" [siehe diesen] benutzt.)

---

## Feramors.

Oper in 3 Akten von Anton Rubinstein. Text nach Th. Moores „Lalla Rookh" von J. Rodenberg.

Personen: Lalla Rookh, Prinzessin von Hindostan = Sopran. Hafisa, ihre Freundin = Alt. Feramors, ein Sänger = Tenor. Fadladin, Großvezier von Hindostan = Baß. Chosru, Gesandter des Königs von Bokhara = Bariton. — Ort: Thal von Kaschmir.

Dresden 1863.

**1. Akt.** Der König von Bokhara ist zum Gemahl der Prinzessin Lalla Rookh bestimmt. Die Festvorbereitungen zum Empfang des Königs werden vom Großvezier getroffen, dann kommt die Prinzessin mit ihrer Freundin Hafisa, um Chosru, des Königs Gesandten, zu begrüßen. Aber sie ist traurig gestimmt, da sie nicht den König, sondern den Sänger Feramors liebt. Feierlicher Empfang. Ballet: „Lichtertanz der Bräute von Kaschmir". Große Schlußszene, worin Chosru und Hafisa sich in Liebe finden, das Gebet vom Minaret her ertönt, und Feramors Ballade: „Das Mondlicht träumt auf Persiens See" Lalla Rookhs Liebe zur Aeußerung bringt.

**2. Akt.** Fadladin wirbt vergebens um Hafisa, die den Alten entfernt, um Feramors und Lalla Rookh Zeit zum Geständnis ihrer Liebe zu geben. Der zurückkehrende Großvezier findet Feramors, behandelt ihn als Eindringling, worin er von dem herbeiströmenden Volk, das den Sänger lynchen will, unterstützt wird. Chosrus Dazwischenkunft befreit zwar Feramors vom Tode des Erhängens, verhindert aber nicht, daß der Sänger gefangen gesetzt wird.

**3. Akt.** Zu Fadladins Kummer entwischt Feramors, und Lalla Rookh muß sich schmücken lassen, um ihren Gemahl, den König, zu empfangen. Als dieser kommt, sieht sie mit Wonne, daß dies niemand anders als Feramors ist, der in der Verkleidung eines Sängers das Herz seiner Braut prüfen wollte.

---

## Ferdinand Cortez.

Oper in 3 Akten von Spontini. Text von Esménard und Jouy.

Personen: Amazily, Schwester des Kaziken Telasko = Sopran. Ferdinand Cortez = Tenor. Montezuma, König von Mexiko = Bariton. Kazik Telasko = Bariton. Alvaro, Cortez Bruder = Tenor. Der Oberpriester der Mexikaner = Baß. Morales, Cortez Freund = Bariton. — Ort: In und vor Mexiko. Zeit 1519.

Paris 1809, dann in neuer Bearbeitung 1817.

**1. Akt.** Vorhof des Tempels in Mexiko. Chor der gefangenen Spanier, welche von den Priestern dem Gotte ge-

opfert werden sollen (Alvaros Hymne: „O Herr der Welt verleih uns Mut und Stärke"). Montezuma kommt mit Telasko und fordert Aufschub des Opfers, da er Alvaro als Geisel gegen Cortez gebraucht. Amazily, die Cortez liebt, aber auch das Vaterland retten möchte, warnt davor, durch Alvaros Tod des nahenden Cortez Rache hervorzurufen; sie will lieber selbst sterben (Arie: „Gott des Schreckens, Priester voll Wut"). Telasko zürnt mit seiner Schwester (Duett; „Gott meiner Väter! — Rachegott!"). Montezuma aber hört nicht auf Priester und Volk, sondern sendet Amazily an Cortez.

**2. Akt.** Das spanische Lager. Soldaten und Offiziere sind unzufrieden, da sie nur Tod vor sich sehen (Chor: „Wir sind die Opfer, seinen Ruhm zu mehren"). Als jedoch Cortez kommt, verstummen sie. Amazily bringt die Kunde, daß Alvaros Leben um den Preis eines Waffenstillstandes zu retten sei. Cortez preist Amazily, die alles verlassen, um ihm und seinem Gotte anzuhängen, die vor der Götzenpriester Zorn durch den Tod ihrer Mutter gerettet (Arie Amazilys: „Sie ist nicht mehr, — sie starb so gern für mich"). Nunmehr kommt Telasko als Friedensbote, fordert für Alvaros Freiheit Cortez Abzug, was Cortez zwar zurückweist, aber nicht an Festlichkeiten verhindert. Ballett. Seine Leute, die geneigt sind abzuziehen, feuert Cortez an (Arie: „Nun wohlan, verlaßt dies Land"). Er gewinnt sie und dankt ihnen (Arie: „Mein Herz erkennet Euch an dieser Sprache wieder"). Nunmehr hält der Feldherr Telasko als Geisel zurück und verlangt von den Mexikanern die Herausgabe der Gefangenen und um seinen festen Willen zu zeigen, läßt er seine Schiffe verbrennen.

**3. Akt.** Die mexikanischen Königsgräber. Der gefangene Telasko fürchtet den Sieg der Spanier, die mit ihren Feuerschlünden Mexiko beschießen (Arie: „O teures Land, — Quell alles Schönen!"). Cortez entläßt Telasko, da die Gefangenen freigegeben, er tröstet Amazily, die alles für ihn aufgegeben, durch seine Liebe (Arie Amazilys: „Von allen bin ich nun verlassen"). Da kommt die Kunde, daß Telasko den schon befreiten Alvaro wieder mit fortgerissen und Amazily zum Austausch verlangt, damit sie statt seiner geopfert werde. Amazily ist bereit, Cortez will sie zwar nicht verlassen, als er aber in den Kampf eilt, begiebt sie sich nach Mexiko.

Verwandlung: Tempelhalle in Mexiko. Cortez stürmt die Stadt und Montezuma will Alvaro ziehen lassen, der aber bei ihm bleibt, um ihn zu schützen. Telasko kommt mutlos, die Spanier sind in der Stadt. Als Cortez naht, tritt

Amazily dazwischen und es gelingt ihr, zwischen Cortez und Montezuma einen Freundschaftsbund zu stiften.

---

## Fidelio.

Oper in 2 Akten von Beethoven. Text, nach dem Französischen des J. N. Bouilly, von J. Sonnleithner.

Personen: Don Fernando, Minister = Bariton. Don Pizarro, Gouverneur eines Staatsgefängnisses = Bariton. Floreſtan, ein Gefangener = Tenor. Leonore, seine Gemahlin, unter dem Namen Fidelio = Sopran. Rocko, Kerkermeister = Baß. Marzelline, seine Tochter = Sopran. Jaquino, Pförtner = Tenor. Ein Hauptmann. — Ort: Ein spanisches Staatsgefängnis in der Nähe von Sevilla.

Wien 1805. Zuerst in 3 Akten dargeſtellt, bis die Oper später von Breuning in 2 Akte zusammengezogen wurde, wofür dann Bethoven auch eine neue Ouvertnre schrieb (Leonore III). In dieſer Form kam Fidelio 1806 zur Aufführung, wurde aber von Treitſchke 1814 nochmals umgearbeitet. Dieſer Vorſtellung ging die „Fidelio-Ouvertüre" voran. (Die vorſtehend erwähnten Bearbeitungen beziehen ſich nur auf den Text.)

**1. Akt.** Hof des Staatsgefängniſſes. Duett zwiſchen Jaquino und Marzelline: „Jetzt Schätzchen, jetzt ſind wir allein". Jaquino will mit Marzelline gern Hochzeit machen, ſeitdem aber der neue Gehilfe Fidelio im Haus iſt, neigt Marzellines Herz dieſem zu. Fidelio iſt die als Mann verkleidete Leonore, deren Gatte Floreſtan verſchwunden iſt. Sie vermutet einen Racheakt des feindlichen Pizarro und glaubt ihren Gatten in dieſem Gefängnis. Sie hat das Vertrauen Rockos erworben und hofft darauf, bald mit ihm die Gefängniſſe inſpizieren zu können, wobei ſie ihren Gatten zu finden glaubt. Marzelline hält alſo Fidelio für einen Mann und liebt ihn (Arie: „O wär' ich ſchon mit Dir vereint"). Rocko bemerkt die Liebe ſeiner Tochter und iſt gar nicht dagegen (Quartett: Marzelline, Leonore, Rocko, Jaquino: „Mir iſt ſo wunderbar" und Rockos Arie: „Hat man auch nicht Gold beineben"). Leonore geht vorläufig auf alles ein und bekennt auch ihren Mut, damit Rocko ſie mit in die Gefängniſſe nähme, was er aber ohne Erlaubniß des Gouverneurs nicht darf (Terzett: „Gut, Söhnchen, gut, hab' immer Mut"). — Jetzt kommt aber Pizarro. Er iſt in Sorge, da er Floreſtan aus Privatrache eingekerkert, der Miniſter will die Gefängniſſe revidieren, darum ſoll ſein Feind ſterben, ehe Fernando kommt. Da Rocko ſich weigert, einen Mord zu begehen, noch dazu an einem Mann, der durch langſame Entziehung der Nahrung dem Tode ſo ſchon nahe iſt, ſo ſoll er nur im Kerker eine alte Ciſterne aufdecken, um den Gefangenen darin zu begraben, den Todesſtoß will Pizarro ſelbſt führen (Arie des Pizarro: „Ha, welch ein Augen-

blick! Die Rache werd' ich kühlen" und Duett: „Jetzt Alter, hat es Eile".) Leonore hat gelauscht und ist von Entsetzen ergriffen (Arie: „Abscheulicher, wo eilst Du hin?"). Rocko erfüllt nunmehr Leonorens Bitte, die Gefangenen einmal zur Erholung ins Freie zu lassen, sie will dabei versuchen, den Gemahl zu erspähen (Finale, Chor der Gefangenen: „O, welche Lust, in freier Luft"). Indessen findet sie Florestan nicht, empfängt daher Rockos Auftrag mit Freude, ihn zu den unterirdisch eingekerkerten Gefangenen zu begleiten, da sie ihm das Grab bereiten helfen soll. Pizarro kehrt zurück und befiehlt ärgerlich, die Gefangenen wieder einzuschließen (Zweiter Gefangenchor: „Leb wohl, du warmes Sonnenlicht").

**2. Akt.** Finsterer Kerker Florestans (dessen Arie: „Gott, welch ein Dunkel hier! O grauenvolle Stille"). Rocko kommt mit Leonore, während der fast schon verhungerte Florestan zusammengesunken (Melodrama: „Wie kalt ist es in diesem unterirdischen Gewölbe"). Leonore erkennt jetzt in dem Gefangenen den Gemahl, darf sich aber nicht verraten und muß mit Rocko das Grab bereiten (Duett: „Nur hurtig fort, nur frisch gegraben"). Florestan kommt zu sich und wird von Leonore durch ein Stück Brot erlabt (Terzett: „Euch werde Lohn in besser'n Welten"). Nunmehr steigt Pizarro herab, sättigt seine Rache, indem er Florestan erklärt, daß er sein Feind sei, der ihn verderbe und will den Todesstoß führen. Da springt Leonore dazwischen, ruft: „Töte erst sein Weib", schreckt Pizarro durch eine vorgehaltene Pistole zurück und rettet dadurch den Gatten, denn jetzt erschallt Trompetenruf, die Ankunft des Ministers verkündigend und Pizarro eilt bestürzt hinaus (Quartett: „Er sterbe, doch soll er erst wissen, wer ihm sein stolzes Herz zerfleischt"). Im folgenden Duett: „O namenlose Freude", drücken Leonore und Florestan ihr Entzücken aus.

Verwandlung: Schloßhof. Fernando verkündet des Königs Gnade (Chor: „Heil sei dem Tag, Heil sei der Stunde"). Leonore darf dem Gatten die Ketten abnehmen, er ist frei und Pizarro wird verhaftet (Fernando: „Du schlossest auf des Edlen Grab" und Schlußchor: „Wer ein holdes Weib errungen").

---

## Figaros Hochzeit.

Komische Oper in 4 Akten von Mozart. Text nach dem Lustspiel des Beaumarchais von da Ponte.

Personen: Graf Almaviva = Bariton. Die Gräfin, seine Gemahlin = Sopran. Figaro, Kammerdiener des Grafen = Baß. Susanna, seine Braut = Sopran. Cherubin, Page des Grafen = Sopran. Marzelline, Ausgeberin im Schlosse = Alt. Bartholo, Arzt = Baß. Basilio, Musikmeister = Tenor. Don Gusmann, Oberrichter = Tenor. Antonio, Susannas Onkel, Gärtner = Baß. Bärbchen, seine Tochter = Sopran.
Wien 1786.

In der Handlung ist diese Oper die direkte Fortsetzung des „Barbier von Sevilla". Rosina ist nun Gräfin Almaviva. Der Gatte der letzteren ist aber kein Muster von Treue, sondern sucht die Liebe von Antonios Tochter Bärbchen zu gewinnen. Als er dabei auf die Nebenbuhlerschaft des kecken Pagen Cherubin stößt, sucht er denselben zu entfernen, indem er ihm ein Offizierspatent verschafft. Figaro ist in des Grafen Dienst getreten und bereitet seine Vermählung mit Rosinas Kammermädchen Susanna vor.

**1. Akt.** Ein Zimmer im Schloß. Figaro mißt den Raum, um die Aufstellung der Möbel herzurichten. Susanna probiert vor dem Spiegel einen Hut (Duett: „Fünfe, zehne, zwanzig, dreißig"). Sie schwärmen zusammen von der Zukunft (Duett: „Sollt' einstens die Gräfin zur Nachtzeit Dir schellen"). Susannas Besorgnis wegen des galanten Almaviva weist Figaro zurück (Arie: „Will einst das Gräfchen ein Tänzchen wagen"). Es kommt der Dr. Bartholo, den sich Marzelline bestellt als Rechtsbeistand, denn sie will gegen Figaro klagen, der ihr vor längerer Zeit wegen einer Geldschuld ein Eheversprechen gegeben (Bartholos Arie: „Süße Rache, Du gewährst hohe Freuden" und Duett zwischen Marzelline und Susanna: „Nur vorwärts, ich bitte, Sie Muster von Schönheit"). Cherubin kommt, um Susannas Hilfe zu erbitten, da er nicht fort will (Arie: „Neue Freuden, neue Schmerzen"). Als der Graf mit Basilio kommt, versteckt sich Cherubin, und Susanna fingiert eine Ohnmacht; indessen springt Cherubin auf einen Sessel und bedeckt sich mit einem Damenkleid (Terzett: „Wie, was hör' ich! Unverzüglich geh' und jag' den Bösewicht fort"). Der Graf entdeckt den kleinen Schelm, aber der eintretende Bauernchor verhindert ein Strafgericht. Cherubin soll aber unverzüglich abreisen und Figaro giebt ihm gute Lehren (Arie: „Dort vergiß leises Fleh'n, süßes Wimmern").

**2. Akt.** Zimmer der Gräfin. Die Gräfin zeigt ihren Kummer über des Gatten Untreue (Arie: „Heil'ge Quelle

meiner Triebe"). Cherubin wird von Susanna hereingelassen, und man will ihn in Frauenkleider stecken, damit er Susannas Hochzeit noch mitfeiern kann (Arie Cherubins: „Ihr, die Ihr Triebe des Herzens kennt"). Man will ihn frisieren (Susannas Arie: „Komm' näher, knie' hin vor mir"). Da kommt der Graf, Cherubin flieht ins Nebenzimmer, als er aber dort Geräusch hört, will der Graf hinein. Da die Gräfin Susanna vorschiebt, verschließt der Graf alle Thüren und geht mit der Gräfin ab (Terzett: „Nun denn, wird's bald geschehen?" und Duett: „Frau Gräfin, darf ich Sie bitten"). Susanna befreit Cherubin, dieser springt zum Fenster hinaus, und sie selbst geht in das Nebenzimmer. Der Graf kommt mit der Gräfin zurück. Er hat erinnert, daß Cherubin dort verborgen ist, findet aber zu seinem Erstaunen Susanna (Finale: „Komm' heraus, verworfener Knabe"). Inzwischen versucht Figaro, den Grafen, dessen Galanterie er fürchtet, durch einen anonymen Brief von seiner Hochzeit abzulenken, doch gesteht er auf Zureden der Gräfin, daß er selbst den Brief geschrieben. Als Antonio kommt und ein Schriftstück bringt, welches ein Mann, der zum Fenster hinausgesprungen, verloren habe, stellt sich Figaro als der vor, der hier bei Susanna gewesen. Das Dokument erweist sich jedoch als ein Offizierspatent Cherubins, und Figaro pariert auch diesen Schlag, indem er es dem Grafen vorweist und um dessen fehlendes Siegel bittet. Jetzt kommen Marzelline, Bartholo und Basilio, und erstere bringt ihre Klage gegen Figaro vor. Dadurch wird die Hochzeit aufgeschoben, da der Graf erst eine Untersuchung der Sache einleiten will.

**3. Akt.** Festsaal. Der Graf ist über die Vorkommnisse verwirrt. Susanna bewilligt auf der Gräfin Wunsch, die dann in ihren Kleidern erscheinen will, Almaviva ein Rendezvous im Garten (Duett: „So lang' hab' ich geschmachtet"). Im Siegesbewußtsein flüstert Susanna dem sie holenden Figaro zu, daß nun sein Prozeß gewonnen sei. Das versetzt den Grafen aber in Zorn (Arie: „Ich soll mein Glück entbehren"). Jetzt folgt die Gerichtsszene (Sextett von Almaviva, Figaro, Don Gusman, Bartholo, Gräfin und Susanna: „Und sieh' hier Deinen Vater"), wobei sich herausstellt, daß Figaro der natürliche Sohn von Marzelline und Bartholo ist. — Die Gräfin bleibt allein (Recitativ und Arie: „Und Susanna kommt nicht"). Als das Kammermädchen mit der Nachricht naht, daß alles zu glücken scheint, diktiert ihr die Gräfin einen Liebesbrief (Duett: „Nun soll ich?"). Eine Nadel, welche den Brief verschließt, soll der Graf zurücksenden. Ein Chor junger Mädchen, worunter

der verkleidete Cherubin, bringt der Gräfin eine Huldigung (Gnäd'ge Gräfin, diese Rosen"). Der Graf kommt mit Antonio herein und entdeckt den Pagen, er wird aber milder gestimmt als er von Susanna den Brief bekommt. Figaro bemerkt dies aber, da der Graf sich an der weggeworfenen Nadel verletzt hat (Marsch und Finale: „Laßt uns marschieren in Ordnung"). Der Akt schließt mit einer Einladung zum Abendfest und dem Chor: „Ihr treuen Geliebten mit Kränzen geschmückt".

**4. Akt.** Garten (oder auch vorher Szene im Korridor). Der Graf hat Bärbchen mit der Nadel geschickt, doch diese hat die Nadel verloren (Arie: „Unglückse'ge kleine Nadel"). Figaro erfährt von Bärbchen den Zusammenhang (Recitativ und Arie: „Alles ist richtig, auch kann die Stunde nicht mehr fern sein"). Eifersüchtig bestellt er Bartholo und Marzelline auch in den Garten, das Stelldichein des Grafen mit Susanna zu stören. Susanna aber wird von Marzelline benachrichtigt (Arie: „Endlich naht sich die Stunde" und „O säume länger nicht, geliebte Seele"). Die Gräfin kommt in nächtlicher Stille in Susannas Kleidern; Cherubin sucht Susanna, um sie zu küssen, den Kuß bekommt aber der sich dazwischen drängende Graf, der Cherubin dafür mit einer Ohrfeige lohnen will, die wiederum der auftretende Figaro erhält. Der Graf folgt nun der vermeintlichen Susanna, während die wirkliche in der Gräfin Kleidern kommt. Figaro erzählt ihr des Grafen Vorhaben, erkennt aber seine Braut und spielt jetzt mit ihr Komödie, indem er ihr als Gräfin den Hof macht, was ihm wieder Ohrfeigen einträgt. Er versöhnt sich jedoch mit ihr, spielt die angenommene Rolle weiter, als der Graf naht und schwört Liebe zu ihren Füßen. Der Graf ruft nach Leuten und Waffen, man kommt mit Licht, und nun erfolgt die allgemeine Erkennung und zugleich die Beschämung des Grafen (Finale: „Still, nur still, ich will mich nähern").

## Der fliegende Holländer.

Romantische Oper in 3 Akten von R. Wagner. Text vom Komponisten.

Personen: Daland, ein norwegischer Seefahrer = Baß. Senta, seine Tochter = Sopran. Erik, ein Jäger = Tenor. Mary, Santas Amme = Alt. Der Steuermann Dalands = Tenor. Der Holländer = Bariton. – Ort: An der norwegischen Küste.

Dresden 1843. – Wagner brach mit dieser Oper zum erstenmal mit der alten Form der abgeschlossenen Arien, Duette ꝛc. und schuf die unterbrochene Melodie und das Leitmotiv, welches hier aus den ersten Takten von Sentas Ballade im zweiten Akt besteht.

**1. Akt.** Der Schiffer Daland muß auf der Heimfahrt, während eines Sturmes einen Nothafen aufsuchen.

Er übergiebt dem Steuermann die Wacht und geht mit der Mannschaft schlafen (Lied des Steuermannes: „Mit Gewitter und Sturm auf fernem Meer"). Dann schläft auch er ein. Ein gespenstisches Schiff fliegt hinten vorüber, wird vom Meer herangerollt und wirft Dalands Schiff gegenüber die Anker. Unsichtbare Hände raffen die Segel. Ein bleicher Mann, das Gesicht von dichtem schwarzen Bart umrahmt, in dunkler Kleidung steigt ans Land. Er klagt sein Geschick (Arie: „Die Frist ist um und abermals verstrichen sind sieben Jahre"). Weil er einst die Treue gebrochen, muß er ruhelos auf dem Meer irren. Alle sieben Jahre wirft ihn die empörte See ans Ufer; wenn er dann ein Weib findet, daß ihm treu bleibt bis zum Tode, ist er erlöst. — Daland trifft auf ihn. Er bietet ihm Schätze und als er hört, daß Daland eine unvermählte Tochter hat, verlangt er sie zum Weibe. Der nach dem Reichthum lüsterne Daland sagt zu und mit günstigem Südwind, der von Dalands Mannschaft freudig begrüßt wird (Wiederholung des Steuermannliedes vom Chor) fahren die beiden Schiffe ab.

**2. Akt.** In Dalands Hause singen und spinnen Mädchen (Spinnerchor: „Summ und brumm, du gutes Rädchen"). Senta sitzt träumerisch, ein Bild betrachtend, das den fliegenden Holländer darstellt; sie hat den Gedanken gefaßt, den Unglücklichen zu retten. Aufgefordert, singt sie gegen den Willen der Amme die Geschichte des Holländers (Ballade mit dem Leitmotiv) und in Begeisterung ruft sie, daß sie den Armen durch Treu erlösen wolle. Erik kommt und hört das; die Mädchen gehen fort und der Jäger, der das Mädchen liebt, warnt es, denn er hat einen Traum gehabt, nach welchem Daland mit einem geheimnisvollen Fremden zurückgekehrt, mit dem sie auf das Meer hinausgezogen; da sie aber gerade davon entzückt ist, geht Erik verzweiflungsvoll fort. — Daland kommt mit dem Fremden. Lange Zeit steht sich das Paar mit großem Blick stumm gegenüber und Daland, der von der Tochter nicht einmal einen Gruß erhält, geht, nachdem er den Gast als ihren Bräutigam bezeichnet. In dem folgendem Duett, das den Akt schließt, schwört Senta Treue bis zum Tode.

**3. Akt.** Am späten Abend fordern Dalands Leute und die Mädchen die Mannschaft des fremden Schiffes vergebens zur Lustbarkeit auf. Die Mädchen gehen befremdet fort; als nun aber an Bord des gespenstischen Schiffes in schauerlicher Weise einiges Leben entsteht, ziehen sich auch Dalands Leute entsetzt zurück. Senta tritt auf, gefolgt von Erik, der ihr sagt, wie elend sie ihn mache, da sie ihm doch schon Liebe gestanden und Treue gelobt. — Als der lauschende

Fremde das hört, stürzt er verzweifelnd vor, da nun sein Heil auf ewig verloren. Er pfeift seiner Mannschaft zur Abfahrt, erzählt Senta von dem Fluch, der auf ihm lastet und erklärt zum Entsetzen Dalands und der hinzutretenden Matrosen, daß er der „fliegende Holländer" sei. — Kaum ist er mit seinem Schiffe fort, so stürzt sich Senta ihm nach ins Meer, Treue bis zum Tode haltend. Das ist die Erlösung. Das Gespensterschiff versinkt und man sieht den Holländer mit Senta verklärt zum Himmel schweben.

---

## Fra Diavolo

### oder: Das Gasthaus zu Terracina.

Komische Oper in 3 Akten von Auber. Text von Scribe.

Personen: Fra Diavolo, unter dem Namen des Marquis von San Marco = Tenor; Lord Kookburn, ein reisender Engländer = Baß; Pamella, seine Gemahlin = Mezzosopran; Lorenzo, römischer Dragoneroffizier = Tenor; Matteo, Gastwirt = Baß; Zerline, seine Tochter = Sopran; Giacomo u. Beppo, Banditen = Baß u. Tenor; Francesco; ein Müller. — Ort: Dorf bei Terracina.
Paris 1830.

Fra Diavolo ist ein berüchtigter Banditenführer, der seine kühnen Thaten unter allerhand Verkleidungen ausführt. Ihn zu fangen hat der römische Staat Dragoner ausgesandt und einen Preis von 10 000 Piastern ausgesetzt. Der Offizier derselben, Lorenzo, liebt Zerline, die aber mit einem reichen Bauern vermählt werden soll.

**1. Akt.** Das Gasthaus Matteos. Chor der römischen Dragoner und Szene, worin Lorenzo den aufgestellten Preis auf des Räubers Kopf verkündet. Da stürzen Lord Cookburn und seine Gattin Pamella herein, die von Räubern überfallen und bestohlen sind. Lorenzo bricht mit seinen Soldaten zur Verfolgung der Banditen auf. Der Lord macht seiner Gemahlin Vorwürfe wegen ihres Reisebegleiters, des Marquis von San Marco, auf den er eifersüchtig ist (Duett: „Ich möchte gern bewundert Sie, Milady, sehen"). Der Marquis, welcher niemand anders als Fra Diavolo ist, trifft ein, von Matteo und Zerline empfangen (Quintett: „Seht, ein Wagen hält still"). Er speist ungeniert im Gasthaus und läßt sich sogar von Zerline von den Streichen des berüchtigten Räubers erzählen (Romanze: „Erblickt auf Felsenhöh'n"). Mit großer Kühnheit macht er der Lady wieder den Hof und schwindelt ihr ein Medaillon mit Brillanten ab. Nun kehrt aber Lorenzo zurück, er hat einen großen Theil der Räuber getötet und das Eigentum der Engländer gerettet, wofür er eine Belohnung von 10 000 Franken er-

hält. Nun hat er wieder Hoffnung, Zerline zu gewinnen (Finale: „Höret doch, welch ein Marsch tönt von fern hierher?").

**2. Akt.** Zerlinens Schlafgemach, das an das Zimmer der Engländer stößt. Zerline geleitet Lord und Lady ins Schlafgemach und drückt dann ihre Freude aus über die Hoffnung, Lorenzo angehören zu können (Arie: „Welches Glück, ich atme freier" und Terzett: „Liebe Frau, so laß uns schlafen gehen"). Inzwischen sind Diavolos Genossen Giacomo und Beppo als Bettler angekommen, und er giebt ihnen durch ein Lied ein Zeichen, worauf sie zum Fenster hereinsteigen (Barcarole: „Dabina, jene Kleine"). Alle drei verbergen sich in einer Nische und belauschen die zu Bett gehende Zerline (Cavatine: „Ja morgen, morgen, welches Glück", Quartettszene: „Welch allerliebstes Kind" mit Zerlines Arie: „Für solch einfach', ländliches Mädchen"). Als Zerline eingeschlafen, wollen die Banditen ans Werk gehen und die Engländer aufs neue berauben. Da ertönt Lärm, Lorenzo kommt mit den Dragonern von einem neuen Streifzug zurück, die aufgewachten Engländer und Zerline kommen dazu, und Diavolo cachiert als Marquis den Rückzug der beiden Banditen. Die Anwesenheit des Marquis erweckt die Eifersucht des Lords und Lorenzos, und letzterer verabredet mit Diavolo ein Duell am schwarzen Fels, wo der Bandit den Feind unschädlich zu machen hofft (Finale: „War's gut, nicht bald zu sehen, woher der Lärm kommt").

**3. Akt.** Im Gebirge. Diavolo kommt in Räubertracht und erwartet Lorenzo (Arie: „Ich zähle Freunde unter diesen Scharen"). Der Hochzeitszug Zerlines und des Bauern Francesco tritt auf. Giacomo und Beppo, die sich hereingedrängt, verraten sich durch unvorsichtige Worte und werden durch Lorenzo gefesselt. Der junge Offizier hofft nun den Räuberhauptmann zu erwischen, ist aber betrübt, daß er Zerline doch nicht erhalten soll (Arie: „Ewig will ich Dir gehören"). Die scharf bewachten Räuber Giacomo und Beppo müssen nun Diavolo in eine Falle locken, und der Hauptmann wird erschossen (Finale: „Nur fort, nur fort zu neuem Streite"). Die Lady erkennt mit Schrecken in dem Briganten ihren Courmacher und der glückliche Lorenzo erhält seine Zerline.

# Der Freischütz.

Oper in 3 Akten von C. M. von Weber. Text von Fr. Kind.

Personen: Ottokar, böhmischer Fürst = Bariton; Cuno, fürstlicher Jäger = Baß; Agathe seine Tochter = Sopran; Aennchen, eine junge Verwandte = Sopran; Caspar u. Max, Jägerburschen = Baß u. Tenor; Samiel, der schwarze Jäger = Sprechrolle; ein Eremit = Baß; Kilian, ein reicher Bauer = Tenor; eine Brautjungfer = Sopran. – Zeit: Kurz nach Beendigung des dreißigjährigen Krieges.
Berlin 1821.

Der Jägerbursche Max liebt Agathe und soll der Nachfolger des Erbförsters werden. Dazu bedarf es aber eines Probeschusses, welcher am Tage nach dem Beginn der Handlung stattfinden soll.

**1. Akt.** Platz beim Scheibenschießen. Max hat gefehlt und der Bauernbursch Kilian wird Schützenkönig (Chor: „Viktoria, der Meister soll leben" und gutmütiges Spottlied Kilians: „Schau der Herr mich an als König"). Da Max schon seit mehreren Tagen Unglück hat, gewinnt der bösartige Caspar Macht über ihn und verleitet ihn zum Gießen von Freikugeln, wodurch Caspar, der morgen dem Teufel verfallen soll, für das Opfer des Max wieder drei Jahre Frist zu erhalten hofft (Terzett: Cuno, Caspar, Max und Chor: „O diese Sonne, furchtbar steigt sie mir empor"). Allein geblieben, verfällt Max bei dem Gedanken, durch den mißlingenden Probeschuß Agathe zu verlieren, in Schwermut (Arie: „Durch die Wälder, durch die Auen"). Caspar beginnt sein schwarzes Werk und sucht ihm Mut zu machen (Lied: „Hier im ird'schen Jammerthal"). Er giebt ihm seine, mit einer Teufelskugel (Freikugel) geladene Flinte und Max erlegt zu seinem Erstaunen einen in großer Höhe fliegenden Adler. Nun ist er entschlossen, um Mitternacht mit Caspar in der furchtbaren Wolfsschlucht Freikugeln zu gießen, damit er den Probeschuß sicher bestehen kann. Caspar, allein, triumphiert (Arie: „Schweig, damit Dich niemand warnt").

**2. Akt.** Agathes Zimmer. Das Bild des Ahnherrn ist zur selben Zeit herabgefallen, als Max die Freikugel abschoß, und hat Agathe leicht verwundet. Das muntere Aennchen hängt das Bild wieder an (Duett: „Schelm, halt' fest, ich will Dich lehren"). Agathe ist darüber von bösen Ahnungen erfüllt, doch Aennchen sucht durch ihre Schelmerei die trüben Gedanken zu verbannen (Ariette: „Kommt ein schlanker Bursch' gegangen"). Agathe bleibt allein und erwartet Max mit guter Nachricht vom Scheibenschießen;

sein dortiger Sieg soll ihr eine gute Vorbedeutung sein (Recitativ: „Wie nahte mir der Schlummer", Gebet: „Leise, leise, fromme Weise", Szene: „Alles pflegt schon längst der Ruh'" und Arie: „Alle meine Pulse schlagen"). Max kommt; er hat zwar nicht gesiegt, aber, wie er vorgiebt, einen Hirsch geschossen, den er noch heute aus der Wolfsschlucht holen will. Trotz des Flehens Agathes und Aennchens geht Max (Terzett: „Wie, was? Entsetzen! Dort in der Schreckensschlucht?").

Verwandlung: Die nächtliche Wolfsschlucht. Caspar ist bereits da, ruft des schwarzen Jägers Hilfe an und bereitet alles zum Kugelguß vor. Max erscheint eben und wird vom Geist seiner Mutter gewarnt. Als aber Samiel ihm Agathe vorspukt, die seines mißlungenen Probeschusses wegen ins Wasser springt, stürzt er hinab, und nun beginnt mit grausigem Teufelslärm der Guß der Freikugeln.

**3. Akt.** Agathes Zimmer. Agathe betet und erhebt sich gestärkt (Arie: „Und ob die Wolke sie verhülle, die Sonne bleibt am Himmelszelt"). Als ihre finsteren Ahnungen wiederkehren, tröstet Aennchen abermals durch ihre frische Laune (Romanze und Arie [von Weber 1821 nachkomponiert]: „Einst träumte meiner sel'gen Base"). Die Brautjungfern kommen mit dem Brautkranz (Lied: „Wir winden Dir den Jungfernkranz"). Als aber Aennchen die Schachtel öffnet, findet sie statt des Kranzes eine Totenkrone, welche Verwechselung Agathes Ahnungen nur bestärkt.

Verwandlung: Szene zwischen den Jägern. Max hat von seinen sieben Freikugeln bereits sechs verschossen. Caspar triumphiert, denn er weiß, daß diese siebente Kugel vom Teufel gelenkt wird.

Verwandlung: Platz des Probeschusses. Fürst Ottokar vor seinem Zelt erwartet Max (Jägerchor: „Was gleicht wohl auf Erden dem Jägervergnügen"). Nunmehr soll Max eine Taube schießen. In dem Augenblick, wo er schießt, erscheint sowohl Samiel, wie der schwarze Jäger, um die Kugel zu lenken, als auch Agathe, und diese wird getroffen (Finale: „Schaut! o schaut! er traf die eigene Braut"). Aber Agathe erwacht, und Caspar, der einen heiligen Eremiten bei dem Mädchen stehen sah, sieht, daß sein Spiel verloren ist; da Samiel kommt, um anstatt Max ihn zu holen, verendet er mit einem Fluch auf den Lippen. Ottokar läßt den Bösewicht in die Wolfsschlucht werfen, erhält Aufklärung von Max und da er dessen Reue sieht, ist seine Strafe milde, da auch der Eremit für ihn bittet („Wer legt auf ihn so schweren Bann?"). Ein Probejahr wird vergönnt, der Probe-

schuß aber aufgehoben, und wenn Max sich bewährt, dann will der Fürst selbst Agathas Hand in die seine legen („Ja, laßt uns zum Himmel die Blicke erheben").

---

## Freund Fritz.

Oper in 3 Akten von Mascagni. Text, nach dem gleichnamigen Lustspiel von Erckmann-Chatrian, von P. Suardon.

Personen: Fritz Kobus = Tenor; Josef, ein Zigeuner, = Mezzosopran; David, Rabbiner = Bariton; Hanczo = Baß; Friedrich = Tenor; Susel = Sopran; Katharina, Wirtschafterin bei Fritz. – Ort: Im Elsaß Zeit: Anfang der 60er Jahre des 19. Jahrhunderts.
Rom 1891.

**1. Akt.** Speisezimmer bei Fritz. Fritz ist Junggeselle, aber der ihm befreundete Rabbi David enragierter Ehestifter. Er will auch die hübsche Susel, Tochter von Fritzens Pächter, an den Mann bringen, noch mehr aber liegt ihm daran, Fritz selbst zu verheiraten. Er läßt sich auch durch den Spott von Fritz und dessen Freunde nicht irre machen. Ist doch Fritz, dessen Lebensgenuß bisher nur in einer guten Tafel bestand, durch das seelenvolle Geigenspiel des Zigeuners Josef schon weich gestimmt und hat David doch wohl gemerkt, welch einen Eindruck Susel auf Fritz gemacht hat.

**2. Akt.** Hof in Fritzens Meierei. Fritz ist auf eine zeitlang hinausgezogen, halb unbewußt Susel folgend, die er beim Kirschenpflücken bewundert (Kirschen-Duett). David bearbeitet jetzt das Mädchen, und bringt es durch die Erzählung von Rebekka zu dem Geständnis ihrer Liebe. Er gebraucht jetzt bei Fritz das Mittel der Eifersucht, indem er vorgiebt, für Susel einen Mann zu haben. Fritz kehrt unruhig zur Stadt zurück, seine erwachenden Gefühle für das Mädchen zu unterdrücken.

**3. Akt.** Zimmer des ersten Aktes. Fritz ist von der Liebe gepackt worden und als David kommt, von ihm die Erlaubnis zu Susels Hochzeit zu erbitten, verweigert er als Herr seine Einwilligung. Fritz macht Susel Vorwürfe und merkt dabei, daß das Mädchen ja ihn liebt. Nun hält auch er nicht mehr zurück und David, der die Freunde hereinführt, findet zu seiner Befriedigung ein Liebespaar.

---

## Die Folkunger.

Oper in 5 Akten von E. Kretschmer. Text von Mosenthal.

**Personen:** Magnus, Sohn Königs Erik von Schweden, aus dem Geschlecht der Folkunger = Tenor. Maria, Eriks Nichte = Sopran. Karin, Amme des Erbprinzen = Alt. Lars Olaffon, ihr Sohn, Kastellan = Bariton. Bengt, Herzog von Schonen = Bariton. Sten Petrik, sein Vertrauter = Baß. Abt Ansgar = Baß. – **Ort:** Schweden. **Zeit:** 13. Jahrhundert.
Dresden 1874.

Die Handlung beginnt zur Zeit des Regierungsantrittes König Magnus II., Sohn Eriks.

**1. Akt.** Felsengegend. Sten Petrik will im Auftrage des Herzogs Bengt den jungen Magnus ermorden, läßt ihn aber leben, nachdem Magnus einen Eid geschworen, nie das Kloster zu verlassen. Ehe er aber ins Kloster tritt, erfährt er von Lars Olaffon, daß Erik tot und er rechtmäßiger König ist; er entflieht trotz seines Eides, ohne sich Lars zu erkennen zu geben.

**2. Akt.** Schloßhof. Herzog Bengt hat Eriks Nichte Maria auf den Thron gesetzt, sich aber zugleich als Gemahl aufgedrungen. Lars kommt mit Magnus, dem Geliebten Marias, und in Vaterlandsliebe verleugnet Magnus seine Herkunft, um vorerst mit den Schweden die Vaterlandsfeinde, die Dänen, zu bekämpfen.

**3. Akt.** Vor dem Dom zu Upsala. Als die gekrönte Maria nunmehr Magnus als rechtmäßigen Herrscher verkündet, leugnet dieser abermals, daß er Eriks Sohn sei, um seinen Eid nicht zu brechen, und Herzog Bengt läßt ihn in den Kerker werfen.

**4. Akt.** Zimmer im Schlosse. Maria, Lars und Magnus Amme Karin wirken derart auf den Prinzen ein, daß dieser die Wahrheit gestehen muß, Maria liebend in die Arme schließt, aber seines Eides plötzlich wieder gedenkend, davonstürzt.

**5. Akt.** Saal im Schlosse. Herzog Bengt wird von Maria entlarvt, der Abt Ansgar entbindet Magnus seines Eides, und dieser besteigt mit Maria den Thron.

## Die Gärtnerin.

(La finta giardiniera, auch unter dem Titel: Die Gärtnerin aus Liebe.)
Oper in 3 Akten von Mozart. Text von Calzabigi, bearbeitet von Coltellini.

Personen: Don Anchises, Podesta = Tenor; Arminda, seine Nichte = Sopran; Conte Belfiore = Tenor; Marchesa Violante = Sopran; Roberto, ihr Diener = Baß; Ramiro, Armindas früherer Liebhaber = Sopran; Sergetta, Armindas Zofe = Sopran.
München 1775.

Aus Eifersucht hat Conte Belfiore seine Verlobte, die Marchesa Violante, verwundet und entflieht, weil er der Meinung ist, sie getötet zu haben. — Nach einiger Zeit verlobt er sich mit Arminda, der Nichte des Podesta von Lagonero. — Violante tritt mit ihrem Diener Roberto in die Dienste des Podesta, sie als Gärtnerin Sandrina und er als Gärtner Nardo. Nun verliebt sich der Podesta in Sandrina = Violante und Nardo = Roberto in Sergetta. Belfiore erkennt zwar Violante, diese leugnet aber, es zu sein. Da langt ein Brief an den Podesta an, der Belfiore als den Mörder Violantes bezeichnet, was letztere veranlaßt, sich erkennen zu geben, um Belfiore nachher zu sagen, daß sie nur ihre Aehnlichkeit mit der Toten benützt habe, um ihn zu retten. Schließlich aber reicht sie dem Geliebten doch die Hand zur Versöhnung und die dadurch frei gewordene Arminda kann Don Ramiro heiraten. Auch aus Roberto und Sergetta wird ein Paar, nur der Podesta geht leer aus.

---

## Das Gasthaus zu Terracina.

(Siehe: Fra Diavolo.)

---

## Geigenmacher v. Cremona.

Oper in 2 Bildern von Jenö Hubay. Text von Francois Coppée und Henry Beauclair. Deutsch von Max Kalbeck.

Personen: Taddeo Ferrari; seine Schüler: Filippo; Sandro; Giannina, seine Tochter; Der Bürgermeister. — Ort: Cremona. Zeit: 1750.

**1. Bild.** Werkstatt des Meisters Ferrari. Nach einer einleitenden Chor-Scene tritt Ferrari ein und teilt mit, daß der Rat der Stadt beschlossen hat, den Verfertiger der besten Violine

mit einer goldenen Kette auszuzeichnen. Er setzt hinzu, daß der Sieger in diesem Wettkampf auch die Hand seiner Tochter und sein Haus erhalten solle. Giannina, die Sandro liebt, aber seinen Sieg bezweifelt, versucht vergeblich, den Vater von seinem Entschlusse abzubringen. Nach einer Liebesscene zwischen Giannina und Sandro stürzt Filippo herein, der wegen seiner Mißgestalt von den Buben der Straße verfolgt wird. Giannina gesteht ihm, dessen hingebende Liebe sie nicht erwidert, ihren Gram und Filippo ist edelmütig genug, heimlich seine Meistergeige mit der Sandros zu vertauschen, um so dem Rivalen den Sieg zu sichern. Dieser will ihn jedoch betrügen und vertauscht die Geigen abermals, so daß er unbewußt sein eignes, schlechteres Instrument zurückerhält. Von Reue getrieben, gesteht er Filippo seine That.

**2. Bild.** Hauptplatz in Cremona. Der Bürgermeister erklärt als Sieger in dem Wettkampf Filippo, der aber die Kette Giannina als Brautschmuck reicht und seinen Verzicht auf ihre Hand zu Gunsten Sandros erklärt.

---

## Genoveva.

Oper in 4 Akten von Robert Schumann. Text, nach den beiden gleichnamigen Werken von Tieck und von Hebbel, ursprünglich von Reinick, aber vom Komponisten selbständig bearbeitet.

Personen: Hidulfus, Bischof von Trier = Baß; Pfalzgraf Siegfried = Tenor; Genoveva = Sopran; Golo = Tenor; Margarete = Alt; Drago, Haushofmeister = Bariton; Balthasar u. Kaspar = Bässe. — Ort: In und um Siegfrieds Burg und in Straßburg. Zeit: Das 8. Jahrhundert. Leipzig 1850.

**1. Akt.** Schloßhof in Siegfrieds Burg. Siegfried zieht mit seinen Mannen gegen die Mauren. Seine Burg läßt er in Dragos, seine Gemahlin Genoveva in Golos Schutz. Golo liebt Genoveva und findet in seiner Amme Margarete eine Bundesgenossin zur Gewinnung der Pfalzgräfin.

**2. Akt.** Halle im Schloß. Genoveva weist Golos Liebe zurück. Dieser rächt sich und verdächtigt sie bei Drago und den rohen Knechten. Drago, um sich von der Schuld der Gräfin zu überzeugen, versteckt sich in deren Gemächern und da er von den Burgleuten dort gefunden wird, hält man Genoveva für treulos und schleppt sie in den Kerker.

**3. Akt.** Herberge zu Straßburg. Margarete wollte den verwundeten Siegfried vergiften, er genas aber. Als ihm Golo scheinbaren Beweis von der Untreue seiner Gattin giebt, bricht er rasend nach seiner Burg auf.

Verwandlung: Margaretens Zimmer. Margarete zeigt dem Grafen in einem Zauberspiegel, wie Drago sich mit Genoveva vergangen hat. Als aber der Graf zur Rache fortgeeilt ist, erscheint ihr drohend Dragos Geist und sie eilt fort, den Betrug zu entdecken.

**4. Akt.** Wilde Felsengegend. Genoveva, die Golos Liebe abermals zurückstößt, soll ermordet werden, als zur rechten Zeit Siegfried mit Margarete erscheint und sie rettet.

## Das Glöckchen des Eremiten.

(Les dragons de Villars.)

Oper in 3 Akten von A. Maillart. Text von Common und Lockroy.

**Personen:** Thibaut, ein reicher Pächter = Tenor; Georgette, seine Frau = Sopran; Bélamy, Dragonerunteroffizier = Baryton; Sylvain, Thibauts Knecht = Tenor; Rose Friquet, eine arme Bäuerin = Sopran; ein Flüchtling = Baß. **Ort:** Ein französisches Gebirgsdorf. **Zeit:** 1704. Paris 1856.

**1. Akt.** Thibauts Pachthof. Thibaut verkündet das Nahen von Dragonern; ängstlich verstecken sich alle Weiber, auch Thibauts Frau Georgette flieht in den Stall. Als die Dragoner unter Bélamys Leitung kommen, versichert Thibaut, daß es keine Weiber weit und breit gäbe, da sie geflohen. — Rose Friquet kommt und bringt Maultiere, die der Knecht Sylvain im Gebirge verloren. Sie kennt das Geheimnis Sylvains, der ein Freund der von den Dragonern verfolgten religiösen Flüchtlinge ist, verspricht ihm aber Schweigen. Keck tritt Rose dem Dragoner Bélamy entgegen und zeigt ihm, wo die Frauen versteckt sind. Als Bélamy von einer wunderbaren Glocke in der Eremitenkapelle in den Bergen hört, die jedesmal läute, wenn eine Frau untreu werde, weiß er Georgette zu bewegen, ihn nachts dorthin zu führen; Rose hat dies erlauscht und macht Sylvain die Mitteilung, daß dies eine günstige Gelegenheit zur Rettung seiner Freunde sei.

**2. Akt.** Gebirgsgegend mit der Eremitenkapelle. Rose bezeichnet Sylvain den einzigen unbewachten Weg und bei der Gelegenheit beginnt sein Herz für das überall verachtete Mädchen zu schlagen. — Thibaut hat gegen Bélamy und seine Frau Verdacht geschöpft, Rose weiß ihn aber zu entfernen und versteckt sich in der Kapelle, wo sie zweimal das Glöckchen läutet, als der Dragoner Georgette küssen will. Die abergläubische Pächterin läuft davon und den nahenden Thibaut beruhigt Bélamy. Als die ermüdete Rose eingeschlafen, kehrt Bélamy zurück, da er die Sache untersuchen will und ist dabei heimlicher Zeuge, wie die von ihm gesuchten Flüchtlinge entfliehen.

**3. Akt.** Vor Thibauts Haus. Sylvain will Rose heiraten. Als aber Thibaut die Nachricht bringt, daß sie die Flüchtlinge verraten, glaubt er das und ist vernichtet. Er bedroht das Mädchen, die nichtsahnend kommt, um Hochzeit mit dem Geliebten zu feiern, und sie läßt in ihrer Unschuld alles ruhig über sich ergehen. Als er sie aber schlagen will, bringt sie ihm den Beweis von der Rettung der Flüchtigen. Noch mehr; da Bélomy Sylvain erschießen lassen will, da er die Verfolgten geführt, tritt sie dazwischen und droht Bélamy ihn anzuklagen, daß durch seine Schuld, da er beim Rendezvous mit Georgetten seine Pflicht versäumt, die Flüchtlinge entflohen seien. Bélamy läßt Sylvain frei und dieser ist beglückt in Roses Liebe.

---

## Glück.

Tonmärchen in 1 Akt von Rud. Frhn. Prochazka, Dichtung von Dr. Theodor Kirchner.

**Personen:** Winfried. Einsiedler; Ritter; Kaufmann; Söldner; Dichter; Das Glück.

Waldeinsamkeit mit einer Klause. Winfried verrichtet seine Morgenandacht. („Schon ist der stille Wald erwacht"). Zu ihm tritt das Glück und bittet ihn um Schutz. Er glaubt einen Teufelsspuk zu sehen und weist es schroff zurück, da giebt es sich zu erkennen und erklärt, das unglücklichste aller Wesen zu sein, weil Alle es in wildem Jagen verfolgten und ihm keine Ruhe gönnten. Die Verfolger nähern sich, und der Einsiedler schickt das Glück in seine Hütte, wo es sich in eine Kutte stecken und unkenntlich machen soll. Die Verfolger erscheinen, und jeder erzählt dem Einsiedler, was er vom Glücke beanspruche. Als der Dichter erklärt, daß das Glück auch Entsagung bedeute, verweist der Einsiedler ihn in seine Hütte; dort werde er es finden. Alle dringen hinein, sind aber sehr enttäuscht, als sie nur einen Mann in der Kutte finden, und bedrohen Winfried. Er entschuldigt sich und meint, dann hätte er sich geirrt; das Glück, wie sie es beschrieben, sei vorhin vorbeigekommen und in den Wald gelaufen. Alle eilen ihm nach. (Chor: „Wir müssen alles lassen".) Als sie weg sind, kommt das Glück schüchtern hervor, dankt ihm für seine Hilfe und bittet, bei ihm bleiben zu dürfen, da es in der Welt doch nur mißbraucht werde. Zum Dank für seine Zustimmung läßt es sogleich Blumen hervorsprießen und Vögel singen. (Duett: „Ich fühle, auch mich verlebten Mann".) Zum ersten Male fühlt das Glück sich glücklich, wo es keinen mehr beglücken kann, und als er

sich darüber wundert, fragt es, was es ihm gutes anthun könne. Er wünscht sich nichts und weist ihre Vorschläge, ihn wieder jung, weise u. s. w. zu machen, zurück. Als er schließlich wünscht, von allen Leiden des Lebens befreit zu werden, erschrickt das Glück, will ihm aber seine Bitte gewähren, doch dann müsse er es küssen. Er fürchtet, daß es in ihm sündige Gier wecken wolle, betet um Kraft, der Versuchung zu bestehen (Duett: „Ich fliehe zu Dir") und will in den stillen Wald, um dort wieder zur Ruhe zu kommen. Das Glück klagt, daß es die Menschen nicht beglücken könne, ob es sie nun fliehe oder aufsuche; der Bach, der Wind und andre Stimmen des Waldes trösten es mit sanften Gesängen und wiegen es in Schlummer — zum ersten Male ist es auf kurze Zeit glücklich. (Chor: „Nun laßt uns verstummen.") Der Einsiedler kehrt nachdenklich zurück; den gesuchten Frieden hat er nicht gefunden. Die Lust ergreift ihn, das schlafende Glück zu küssen — es ist ja keine Sünde, glücklich zu sein! (Gesang: „Der Wald ringsum".) Die Dornen halten ihn zurück, aber er macht sich los und küßt das Glück — im selben Augenblicke sinkt er tot zu Boden, von aller Erdenqual befreit. Das Glück erwacht und bemerkt erschrocken, was er gethan hat. Aber er hat jetzt das Allerbeste gefunden, und das Glück muß von neuem den Ansturm der Verfolger über sich ergehen lassen. Langsam entschwebt es; auf Winfrieds Leiche fallen Rosen hernieder. (Schlußchor der Luftgeister: „Vom Erdenleid für immer befreit".)

---

## Das goldene Kreuz.

Oper in 2 Akten von Ignaz Brüll. Text von Mosenthal.

Personen: Gontran de l'Ancre, ein junger Edelmann = Tenor; Colas, Wirt zur Mühle = Bariton; Christine, seine Schwester = Sopran; Therese, seine Braut = Sopran; Bombardon, Sergeant = Baß. Ort: Ein Dorf bei Melun. Zeit: 1812 und 1815.

Berlin 1875.

**1. Akt.** Vor dem Wirtshaus des Colas. Therese soll heute mit Colas Hochzeit machen und die jungen Mädchen bringen ihr mit Bändern geschmückte Rosmarienſträußchen dar. Indessen wird die Freude gestört, da Colas bei der Konskription zum Soldaten ausgehoben wird. Vergebens bietet Christine, Colas Schwester, ihr goldenes Kreuzchen an, um dem als Gattin anzugehören, der, als Stellvertreter des Bruders es ihr einst zurückbringen würde. — Ein junger Edlemann aber, Gontran de l'Ancre, hat Christine gesehen und sich in sie verliebt. Er steht allein und verlassen in der

Welt, es bindet ihn nichts, so nimmt er das goldene Kreuz und zieht mit dem Sergeanten Bombardon, der die Rekruten holt, fort, nachdem er von Christinen, die ihr Herz ebenfalls bewegt fühlt, Abschied genommen.

**2. Akt.** Dieselbe Dekoration. Als der Feind ins Land drang, hat Colas doch zu den Waffen gegriffen und ist verwundet heimgekehrt. Ein andrer Verwundeter ist im Haus, der von Christine gepflegt und geliebt wird. Es ist der unerkannte Gontran, der aber das Zeichen, worauf Christine zu warten sich verpflichtet fühlt, nicht mehr besitzt, denn er hat das Kreuz in der Schlacht verloren. Da kehrt der invalide Bombardon aus Rußland zurück. Er besitzt das Kreuz und obwohl Christine darüber unglücklich ist, will sie doch ihr Wort halten. Da erkennt Bombardon den von ihm für tot gehaltenen Gontran, giebt ihm sein Eigentum und Christine kann glücklich sein.

## Götterdämmerung.

(Siehe: Der Ring des Nibelungen.)

## Graf Armand.

(Siehe: Der Wasserträger).

## Gringoire.

Oper in 1 Akt von J. Brüll, Text, nach dem gleichnamigen Schauspiel des Banville, von Viktor Leon.

Personen: Ludwig XI. = Bariton; Olivier, sein Barbier = Tenor; Simon Fourniez, Kaufmann = Baß; Loyse, seine Tochter = Sopran; Nicole, seine Schwester = Alt; Pierre Gringoire, ein Straßensänger = Bariton. Ort: Das Haus Fourniez' in Tours. Zeit: 1496.
München 1892.

Olivier bringt die Nachricht, daß der in der Nähe jagende König zu Gast kommen werde. Fourniez ist über diese Gnade erfreut, noch mehr, als er hört, daß der Günstling Olivier seine Tochter Loyse zur Frau begehrt. Loyse jedoch will von Olivier nichts wissen. — Als der König kommt, sucht Fourniez seine Vermittlung, Loyse zu vermählen. Zu dieser Zeit singt der Straßensänger Gringoire, der seines Spottes wegen von Olivier gehaßt wird, vor der Thür und der König läßt ihn kommen. Ludwig, von seinem Günstling gegen den Sänger eingenommen, fordert den halbverhungerten Gringoire, der den König nicht kennt, auf, sich durch ein

Lied ein Mahl zu verdienen und Gringoire singt ein Spottlied auf Ludwig, um dann zu erfahren, daß er vor dem König stehe. Er giebt sich verloren. Es kommt aber anders, als der verschmitzte Olivier meint, denn Ludwig erkennt das Genie Gringoires, und als er sieht, daß dieser zu Lohse und diese zu ihm Neigung faßt, vereinigt er das Paar.

## Gudrun.

Oper in 3 Akten von August Klughardt. Text von Karl Niemann.

Personen: Gerlinde = Mezzosopran; Hartmut, ihr Sohn = Bariton; Gudrun = Sopran; Herwig = Tenor; Wate = Baß; Morung = Bariton. — Ort: Vor Gudruns Burg, in Gerlindens Schloß und in einem heiligen Hain.

Neu-Strelitz 1882.

**1. Akt.** Gerlinde und Hartmut hassen Gudrun und Herwig. Herwig zieht mit Wate und seinen Mannen fort. Ihre Abwesenheit benutzt Hartmut, die Burg zu zerstören und Gudrun, die einst seine Werbung zurückgewiesen, gefangen fortzuschleppen.

**2. Akt.** Gudrun muß bei Gerlinde Magdesdienst verrichten, da sie fest in der Weigerung bleibt, Hartmuts Frau zu werden. Da nahen Herwig und Wate, um Gudrun zu retten.

**3. Akt.** Hartmut schützt Gudrun vor seiner Mutter Gerlinde, welche die Widerspenstige nunmehr den Göttern opfern will. Herwig und Wate eilen jetzt zur Rettung herbei, töten Hartmut, während Gerlinde sich ersticht.

## Guntram.

(Nicht klassifizierte) Oper in 3 Akten von Richard Strauß. Text vom Komponisten.

Personen: Der alte Herzog = Baß. Freihild, seine Tochter = Sopran. Herzog Robert, ihr Gemahl = Bariton. Guntram und Friedhold, Sänger = Tenor und Baß. Der Narr des Herzogs = Tenor. Eine alte Frau = Alt. Ein alter Mann = Tenor. Zwei jüngere Männer = Bässe. Drei Vasallen = Bässe. Ein Bote = Bariton. Vier Minnesänger = zwei Tenöre und zwei Bässe. — Ort: Ein deutsches Herzogtum. Zeit: 13. Jahrh.

Weimar 1894.

Guntram und Friedhold gehören einem heiligen Friedensbunde an, dem sie Treue und Gehorsam geschworen. — Der alte Herzog hat Tochter und Land dem Herzog Robert übergeben und dieser bedrückt das Volk so tyrannisch, daß die unglücklichen Bewohner des Landes zur Empörung getrieben

wurden, aber von Robert blutig unterdrückt nur noch schlimmere Behandlung erdulden. Das treibt viele der leibeigenen, armen Leute zur Flucht. Ihr guter Engel war bisher des alten Herzogs Tochter Freihild, aber auch diese hat von dem gewaltthätigen Gemahl, dem sie nur gezwungen als Gattin angehört, so viel zu erdulden, daß sie freiwilligen Tod im See sucht. — Hierher geleitet Friedhold den jungen Guntram, sein Friedenswerk zu beginnen. Guntram speist und tröstet die armen Flüchtigen, hält Freihild vom Tod zurück, sucht den alten Herzog durch seinen Sang zu erweichen und Roberts Gewissen zu bewegen, jetzt schon von dem dunkeln Drange bewegt, auch Freihilds Liebe zu gewinnen. Als Robert wütend gegen ihn das Schwert zieht, tötet er den Herzog in der Verteidigung. Der alte Herzog läßt ihn in den Kerker werfen und bestimmt ihn zum grausamen Foltertod; vorher muß er aber noch einmal hinaus zum Kampf, da das Volk in eine neue Empörung ausgebrochen. Freihild bewegt den treuen Narren, mit ihr Guntram zu befreien. Sie öffnet den Kerker, gesteht Guntram ihre glühende Liebe und will mit ihm entfliehen. Schon naht jedoch Friedhold und ruft Guntram zur Verantwortung seiner blutigen That vor den heiligen Bund. Guntram weist nun jede Gemeinschaft zurück, Freihild glaubt ihn für sich gewonnen, aber er hat überwunden und als die Kunde vom Schlachtentod und der Niederlage des alten Herzogs kommt, als das Volk die geliebte Freihild zur Herrin ausruft, richtet er ihren Blick auf den göttlichen Beruf, den sie als Beglückerin des Volkes zu ergreifen habe und erreicht durch seine Größe ihre Entsagung auf irdische Liebe. So geht er.

**1. Akt.** Wald und See. Auftritt Guntrams, Friedholds und der armen Leute (Guntram: „Hier, ihr Guten, rastet, erholt Euch"). Die Leute erzählen ihre traurige Geschichte („Bitterste Not, Hunger — Elend"). Friedhold sagt ihm, daß sein Ziel nahe sei und verläßt ihn. Guntram bleibt allein und sucht sich Rechtfertigung für sein Vorhaben zu geben („Niemals erfleht — heimlich ersehnt"). Es folgt die große Szene mit Freihild, die er vom Tode zurück hält und mit dem Herzog, von dem er Gnade für die eingefangenen Flüchtlinge erhält. Er begleitet den Herzog zum Schloß.

**2. Akt.** Festgelage am Hofe des Herzogs. Der Narr dokumentiert sich als wohlthätig gegen die Armen, wodurch er Roberts Zorn erregt. Lied der Minnesänger („Heil dem Herrscher"), vom Narren glossiert. Heimliches Grollen der Vasallen gegen Robert. Guntrams großer Friedensgesang

(„Ich sehe den Frieden"). Robert dringt auf Guntram ein, die Vasallen schützen diesen und ein Bote bringt die Kunde von neuer Empörung (Ensemble: „Krieg, Krieg, mein Herzog"). Guntram mahnt zum Frieden und als Robert ihn als Verräter töten will, durchbohrt er den Angreifer. Der alte Herzog gewinnt die Vasallen für sich, läßt Guntram in den Kerker werfen und eilt zum Kampfe. Freihild liebt Guntram und beschließt, ihn zu retten und mit ihm zu entfliehen.

**3. Akt.** Burgverließ. Gesang der Mönche („Et lux perpetua luceat ei"). Guntrams Grübeleien über seine That. Er verbirgt sich nicht die Schuld, daß seine Liebe zu Freihild ihn beeinflußt. Darum weist er sowohl Friedhold zurück, der ihn vor das Gericht des Bundes fordert, als auch Freihilds Liebe. Er verweist sie an das Volk und geht, als der Herzog gefallen, entsagend von dannen.

---

## Gustav oder der Maskenball.

Oper in 5 Akten von Auber. Text von Scribe.

Personen: Gustav III, König von Schweden = Tenor. Ankarström, sein Vertrauter = Bariton. Amalie, dessen Gattin = Sopran. Graf Horn und Graf Ribbing, Verschworene = Tenor und Baß. Der Kriegsminister = Baß. Der Justizminister = Baß. Ein Kämmerer. Oskar, des Königs Page = Sopran. Arverson, eine Wahrsagerin = Mezzosopran. Christian, ein alter Matrose = Tenor. Roslin, ein Bildhauer. Sergell, ein Maler. — Ort: Stockholm. Zeit: 1792.
Paris 1833.

Die Handlung ist genau dieselbe, wie in Amelia, oder ein Maskenball von Verdi (siehe dieser), nur daß Verdis Librettist den historischen Text in einen bürgerlichen verwandelte.

Gustav liebt Ankarströms Gemahlin Amelia, dadurch wird aus dem Freund ein Feind. Ankarström verbindet sich mit den Verschworenen und tötet den König auf einem Maskenball.

(Eine andere Veränderung erfuhr der Text 1861 in Paris. Die Szene ist nach Neapel verlegt, Gustav wurde zu dem spanischen Herzog von Olivarez gemacht, aus Gefallen für den Sänger Mario, da der Text aus der schwedischen Geschichte vielfach beanstandet wurde.)

---

## Gwendoline.

Oper in 2 Akten von E. Chabrier. Text von Catulle Mendès.

Personen: Gwendoline, Harald, Armel, Aella, Erik. — Ort: In den Bergen an der Küste Großbrittanniens. Zeit: 8. Jahrhundert. Brüssel 1886.

**1. Akt.** Ein Thal an der Meeresküste. Harald, ein dänischer Seekönig landet und besiegt den greisen Sachsen Armel und dessen Leute. Als Armel trotzig die Herausgabe seiner Schätze weigert, soll er getötet werden. Da erblickt Harald, der vorher nie ein Weib erschaut, die schöne blonde Gwendoline, Armels Tochter. Sein Herz erwacht, seine Wildheit schwindet und trotz der Warnung seiner Dänen giebt er sich dem Liebeszauber hin und verlangt Gwendoline zum Weib. Armel giebt seine Zustimmung und erklärt den Sachsen, daß er die waffenlosen Dänen beim Hochzeitsmahle töten würde.

**2. Akt.** Das Brautgemach. Armel giebt seiner Tochter einen Dolch und flüstert ihr zu, damit in der Nacht Harald zu töten. Gwendoline liebt aber Harald und will ihn retten. Als der Hilferuf der waffenlos angegriffenen Dänen erschallt, giebt sie dem Geliebten den Dolch und folgt ihm.

Verwandlung: Gegend am Meer. Die Sachsen töten die Dänen und als Harald erscheint, wird er von Armel erschlagen. Gwendoline ergreift den Dolch und durchbohrt ihre Brust, worauf sie mit dem Geliebten vereint stirbt. Verzweifelt steht Armel und die in Brand gesetzten Schiffe der Dänen beleuchten die Gruppe.

Gesänge. 1. Akt. Chor und Szene zwischen Armel und Gwendoline. Chor und Legende der Gwendoline: „Sie sind grausam, stark, wie reißende Thiere". Auftritt der Dänen und Schwertlied Heralds: „Unser gutes Schwert trifft wie der Blitzstrahl". Harald und Gwendoline: a) Szene: „Komm hieher!" b) Lied Gwendolines: „Sage, liebliches Mädchen, was wohl spinnst Du hier?" c) Duett: „Spinne, spinne, blondes Mädchen". Ensemble: Harald, Gwendoline, Armel, Chor der Sachsen und Dänen: „Harald, laß Dich warnen".

2. Akt. Szene und Chor: „O seht die Braut im Hochzeitskleide". Duett: Harald, Gwendoline: „Gwendoline, o Gwendoline". In das Liebesduett hinein schallt der Hilferuf der Dänen.

Verwandlung: Chor: „Ihr Sachsen auf! strafet die Räuber". Duett: Harald, Gwendoline: „Einig im Tod, wie im Leben". Finale: „Wotan öffnet Euch seine Hallen".

## Der Haideschacht.

Oper in 3 Akten von Franz v. Holstein. Text vom Komponisten.

Personen: Swend Stirson, Obersteiger = Bariton. Valborg und Björn, seine Kinder = Sopran. Helge, seine Schwester = Alt. Ellis, ein junger Bergmann = Tenor. Olaf, verabschiedeter Soldat, früher Bergmann = Baß. — Ort: In Falun. Zeit: Ende des dreißigjährigen Krieges.

Dresden 1865. Die Oper behandelt die Sage vom Haideschacht bei Falun, aus welchem Verschüttete, die man nach langer Zeit fand, noch ohne Anzeichen der Verwesung ans Tageslicht geholt werden.

**1. Akt.** Vor Stirsons Haus in Falun. Swend Stirson, der vor Jahren im Haideschacht mit Froböm, dem Verlobten seiner Schwester Helge, Streit gehabt und das Messer gezogen, glaubt den Verunglückten ermordet zu haben. Er selbst ist damals von Olaf herausgebracht worden. Ueber den, vor der Welt Geheimnis gebliebenen Vorgang ist Helge wahnsinnig geworden. Froböms Sohn Ellis ist von Stirson in seinem Hause erzogen worden, aber da Stirson ihm seine Tochter Valborg nicht zur Frau geben wollte, verstoßen. Zu Beginn der Oper kehrt sowohl Olaf aus Kriegsdiensten, wie Ellis von einer längeren Wanderschaft zurück. Aber Stirson, der nicht dem Sohn des von ihm Ermordeten die Tochter geben will, weist Ellis neue Werbung ebenfalls zurück. Olaf tritt energisch auf, fordert, als Mitwisser seines Geheimnisses, von Stirson Geld und Gut und schließlich auch Valborg zur Frau. Gegen das letztere sträubt sich Stirson und Olaf beschließt nun, ihn zu verderben.

**2. Akt.** Die Schenke am See. Olaf gewinnt Ellis und Björn, mit ihm in den Haideschacht zu fahren und Schätze zu heben. Beim Tanz wird die wahnsinnige Helge von Ellis verspottet, was Stirson veranlaßt, dem Sohn Froböms mitzuteilen, in welchem Verhältnis sein Vater zu der Armen stand. Der erschütterte Ellis will umsomehr alles an Valborg gut machen, was Stirson veranlaßt auszurufen, daß er nicht eher mit seiner Tochter Hochzeit machen soll, bis die Erde ihre Toten ausgeworfen.

**3. Akt.** In Stirsons Haus. Trotzdem Stirson seinen Sohn einschließt, gelingt es diesem zu entwischen und Olaf und Ellis in den Haideschacht zu begleiten.

Verwandlung: Vor dem Haideschacht. Ein unterirdisches Getöse zeigte schon zu Ende der vorigen Szene ein

Unglück im Haideschacht an. Bergleute kommen zur Rettung herbei. Zuerst schafft man Björn herauf, den Ellis noch retten konnte, ehe er selbst mit Olaf in die sich öffnende Tiefe stürzte. Dann bringt man einen Toten und glaubt an ein Wunder, denn es ist der vor vielen Jahren verschüttete Froböm, bei dessen Erkennen Helge den Verstand wiederfindet. Erschüttert und befreit steht aber Stirson, denn der in dem Schacht wohl erhaltene Körper ist ohne Wunde, er ist also kein Mörder. Olaf ist verloren, aber Ellis wird nur verletzt heraufgebracht und nun kann der von seinem Gewissensdruck befreite Stirson die Hände Valborgs und Ellis' zusammenlegen.

---

## Hamlet.

Oper in 5 Akten von A. Thomas. Text nach Shakespeare, von Barbier und Carré.

Personen: Hamlet = Bariton. Der Geist seines Vaters = Baß. Klaudius, König von Dänemark = Bariton. Polonius, Oberkämmerer = Bariton. Laërtes, sein Sohn = Tenor. Marcellus u. Horatio, Offiziere und Freunde Hamlets. Gertrud, Hamlets Mutter, Königin von Dänemark = Sopran. Ophelia, Tochter des Polonius = Sopran. Ort: Helsingör. Paris 1868.

**1. Akt.** Saal im Schloß. Der König feiert mit Gertrud Hochzeit. Liebesszenen zwischen Ophelia und Hamlet, der aus Gram, daß seine Mutter sich schon 2 Monde nach seines Vaters Tod wieder vermählt, das Land verlassen will. Der gleichfalls abreisende Laërtes giebt Ophelia in Hamlets Schutz. Horatio bringt die Nachricht vom Erscheinen des Geistes des verstorbenen Königs.

Verwandlung: Schloßwall. Nacht. Hamlet erwartet mit seinen Freunden den Geist. Als dieser kommt, benachrichtigt er Hamlet von dem Mord, den Claudius und Gertrud an ihm begangen und fordert ihn zur Rache auf.

**2. Akt.** Garten. Hamlet kümmert sich nicht um das Leid Ophelias, stellt sich schwermütig und erbittet die Erlaubnis, durch angekommene Schauspieler ein Stück aufführen zu lassen.

Verwandlung: Festsaal. Hamlet läßt eine Handlung darstellen, die genau den Mord seines Vaters schildert und beschuldigt dann, indem er Wahnsinn vorstellt, den König des Mordes.

**3. Akt.** Zimmer der Königin. Hamlet belauscht den König, wobei er zu seinem Schrecken erfährt, daß Polonius, Ophelias Vater, ein Mitschuldiger ist. Er weist jetzt Ophelia,

die die Königin ihm zur Gemahlin anbietet, zurück und enthüllt sein Wissen vor der Mutter.

**4. Akt.** Ophelias Tod im Wasser.

**5. Akt.** Kirchhof. Hamlet, der wegen des Königs Mordplänen geflohen, findet Laërtes, der ihn wegen Treubruch an seiner Schwester zur Rede stellt. Der nahende Leichenzug Ophelias verhindert den Streit und Hamlet will sich am Sarge der Geliebten töten. Als ihm aber wiederum der Geist erscheint, rafft er sich auf und durchbohrt den König; das Volk erhebt Hamlet auf den Thron.

---

## Hänsel und Gretel.

Märchenoper in 3 Akten von Engelbert Humperdinck. Text von Adelheid Wette.

Personen: Peter, Besenbinder = Bariton. Gertrud, sein Weib = Mezzosopran. Hänsel und Gretel, deren Kinder = Mezzosopran u. Sopran. die Knusperhexe = Mezzosopran. Sandmännchen = Sopran. Taumännchen = Sopran. Die 14 Engel. Kinder.

München 1893.

**1. Akt.** Daheim. Eine dürftige Stube, worin die Kinder Hänsel und Gretel arbeiten. Hänsel bindet Besen, Gretel strickt Strümpfe. Mit freundlichen Kinderliedern suchen sie sich den Hunger zu vertreiben (Gretel: „Suse, liebe Suse, was raschelt im Stroh" und Hänsel: „Eia, popeia, das ist eine Not"). Sie wünschen aber doch, daß die Mutter nach Haus käme, denn der Hunger ist gar groß. Seit Wochen haben sie nichts als trocknes Brot bekommen. Als aber Gretel dem Hänsel verrät, daß die Nachbarin einen Topf Milch geschenkt, wovon die Mutter Reisbrei machen wird, da springt Hänsel vergnügt auf, läßt die Arbeit liegen und tanzt vor Freuden mit Gretel herum. Gretelchen tanzt gern und geht darauf ein („Brüderchen, komm, tanz mit mir"). Sie necken sich und spielen, als plötzlich die Mutter herein kommt und sehr böse ist, daß sie die notwendige Arbeit liegen lassen („Nennt Ihr das Arbeit? Johlen und singen"). Wie sie den Stock holen will, die Kinder zu züchtigen, wirft sie im Eifer den Milchtopf um und weint nun, daß sie kein Abendbrot mehr habe. Aergerlich schickt sie die Kinder in den Wald um Erdbeeren zu holen und droht: „Bringt Ihr den Korb nicht voll bis zum Rand, so hau ich Euch, daß Ihr fliegt an die Wand". Aengstlich gehen die Kinder hinaus, während sie, müde zum Sterben, auf einen Stuhl sinkt; da kommt der Vater nach Haus, vergnügt und angetrunken; er hat alle seine Besen zu guten Preisen verkauft und bringt einen ganzen Korb voll Essen

mit (Lied: „Ach wir armen, armen Leute"). Er frägt nach den Kindern und sie erzählt, wie der Milchtopf zerbrochen und sie Hänsel und Gretel nach dem Ilsenstein im Wald geschickt, um Erdbeeren zu holen. Als das der Vater hört, ist er entsetzt, denn am Ilsenstein wohnt die böse Knusperhexe, welche die Kinderlein mit Zauberkuchen lockt, dann in den Ofen steckt, wo sie zu Lebkuchen gebacken werden, die sie dann frißt („Eine Hexe steinalt, haust tief im Wald"). Schnell machen sich die Eltern auf, die Kinder zu suchen.

**2. Akt.** Im Walde. Im Hintergrund der Ilsenstein, von dichtem Tannengehölz umgeben. Während Hänsel im Gebüsch nach Erdbeeren sucht, windet Gretel einen Kranz aus Hagebutten („Ein Männlein steht im Walde"). Hänsel kommt lustig mit dem gefüllten Körbchen, als aber der Kukuk ruft, spielen sie mit den Erdbeeren „Kuckuck! Eierschluck!" und da der Vogel immerzu ruft, essen sie unversehens den ganzen Korb leer. Nun sind sie erschrocken, und da es dunkel wird, bekommen sie Furcht, umsomehr, als Hänsel den Weg nicht mehr finden kann. In der Dunkelheit sehen sie allerlei Gespenster, erschrecken vor dem Echo ihrer Stimmen und drücken sich fest aneinander, als die Nebel steigen. Vergebens rufen sie nach Vater und Mutter. Aus dem Nebel kommt ein kleines graues Männchen, das Sandmännchen („Der kleine Sandmann bin ich — stl") wirft den Kindern Sand in die Augen, worauf sie unter einer Tanne einschlafen, nachdem sie gebetet: „Abends will ich schlafen geh'n, vierzehn Engel um mich steh'n, zwei zu meinen Häuptern, zwei zu meinen Füßen, zwei zu meiner Rechten, zwei zu meiner Linken, zweie, die mich decken, zweie, die mich wecken, zweie, die mich weisen zu Himmelsparadeisen". Aus dem Nebel steigt im hellen Schein eine Treppe empor bis zum Himmel, Engel steigen hernieder und umgeben die Kinder, wie sie gebetet.

**3. Akt.** Das Knusperhäuschen. Dieselbe Szene, doch sind die Engel verschwunden, und der Nebel verhüllt den Hintergrund. Das Taumännchen kommt und weckt die Kinder. Gretel wacht zuerst auf und weckt Hänsel. Beide erzählen sich, daß sie die Engel im Traume gesehen. Wie sie sich wenden, ist der Nebel verschwunden und sie erblicken das Knusperhäuschen auf dem Ilsenstein. Links davon ist ein Backofen, rechts ein Käfig, beide mit dem Häuschen durch einen Zaun von Kuchenmännern verbunden. Sie lassen sich von dem Duft anlocken und fangen an vom Knusperhäuschen zu naschen. Als eine Stimme ertönt: „Knusper, knusper, Knäuschen, wer knuspert mir am Häuschen?" lassen sie sich gar nicht stören und antworten: „Der Wind, der Wind, das himmlische Kind". Unbemerkt schleicht die Knusper-

hexe heraus, fängt Hänsel, sperrt ihn in den Käfig und schickt Gretel ins Haus, Mandeln und Rosinen zu holen, womit sie Hänsel mästen will. Vergnügt schaut sie nach dem Ofen, ergreift einen Hexenbesen und springt in Hoffnung auf den guten Schmaus ausgelassen herum („Hurr hopp hopp hopp, Galopp, Galopp"). Hänsel, der sich schlafend stellt, belauscht sie und warnt das zurückkommende Gretel („Schwesterlein, hüt Dich fein"). Als die Hexe von Gretel verlangt, sie solle in den Ofen schauen, stellt sich diese ungeschickt und verlangt zu sehen, wie sie das machen soll; als sich aber nun die Hexe zum Ofen bückt, eilt Hänsel herbei und schiebt mit Gretel die Hexe ganz hinein, sodaß sie braten muß. Zugleich sind dadurch die andern Kinder, die als Kuchenmänner am Zaun stehen, erlöst und Gretel entzaubert sie mit der Hexe Zauberrute vollständig (Chor der Kuchenkinder: „Habt Dank, habt Dank euer Leben lang"). Nun kommen auch die Eltern dazu, und aus den Trümmern des zusammengestürzten Backofens wird die Hexe als großer Lebkuchen gezogen (Vater: „Kinder schaut das Wunder an" und Schlußchor: „Wenn die Not aufs höchste steigt, Gott der Herr die Hand uns reicht"). Mit einem lustigen Reigen der Kinder endet die Oper.

---

## Hans Heiling.

Romantische Oper in 3 Akten und einem Vorspiel von Heinrich Marschner. Text von Eduard Devrient.

Personen des Vorspiels: Die Königin der Erdgeister = Sopran Ihr Sohn = Bariton. Personen der Oper: Die Königin der Erdgeister = Sopran. Hans Heiling = Bariton. Anna, seine Braut = Sopran. Gertrud, ihre Mutter = Alt. Konrad, burggräflicher Leibschütz = Tenor. Stephan und Nikolaus, Bauern = Baß und Tenor. Ort: Erzgebirge. Zeit: 16. Jahrhundert.
Berlin 1833.

**Vorspiel.** Die unterirdische Wohnung der Erdgeister (Chor: „Rastlos geschafft"). Heftige Liebe zu einer Erdentochter treibt den Sohn der Königin nach oben und er weist alle Warnungen und Bitten zurück (Duett: „Genug! Beendet Euer emsig Treiben"). Als er wirklich geht, beschließt die Königin ihre Macht zu benützen, ihn auf immer wieder zu gewinnen.

**1. Akt.** Nachdem die Ouvertüre (welche erst nach dem Vorspiel einsetzt) verklungen, sieht man Hans Heiling (den Sohn der Geisterkönigin) aus einem unterirdischen Gang emporsteigen. Er ist nun als Mensch in dem Hause, das er auf Erden bewohnt, und sieht entzückt die geliebte Anna

wieder, welche mit ihrer Mutter Gertrud zu ihm kommt („Willkommen mir auf dieser Stelle"). Anna findet das, von Heiling mitgenommene Zauberbuch und da sie vor dem Spuk erschreckt, übergiebt er es auf ihren Wunsch den Flammen (Terzett: „Ha, welche Zeichen! So glänzend und schön!"). Nun hat er für Anna alles geopfert, was ihn als Geist mächtig machte, sein Glück ruht nun nur noch in ihrer Liebe (Arie: „An jenem Tag, da Du mir Treu versprochen"). Anna zu Gefallen entschließt er sich nun auch ein ländliches Fest mit ihr zu besuchen (Terzett: „Wohlan! So laßt uns gehen").

Verwandlung: Bauernfest (Chor: „Juchheisa! Heut dürft Ihr die Kammern nicht schonen" und Lied Konrads: „Ein sprödes allerliebstes Kind"). Als Anna mit Konrad zum Tanz eilt (Finale: „Wie hüpft mir vor Freude das Herz in der Brust") ist Heiling schmerzlich bewegt und fürchtet für sein Glück.

**2. Akt.** Wald. Anna liebt Konrad (Recitativ: „Weh mir, wohin ist es mit mir gekommen" und Arie: „Einst war so tiefer Friede mir im Herzen"). Die Königin der Erdgeister erscheint mit ihrem Gefolge und erschreckt Anna durch die Enthüllung, wer Heiling eigentlich ist (Ensemble: „Aus der Klüfte Schlund, aus der Erde Grund dringt hinauf!"). Die ohnmächtige Anna wird von Konrad gefunden, und als sie erwacht, gestehen sich beide ihre Liebe (Recitativ: „Wohl durch den grünen Wald" und Duett: „Ha, dieses Wort giebt erneutes Leben").

Verwandlung: Gertrud in ihrem Zimmer (Lied: „Des Nachts wohl auf der Haide"). Konrad kommt mit Anna und bittet die Mutter um deren Hand, da Anna ihren Bräutigam, nachdem sie weiß, daß es ein Erdgeist ist, verabscheut (Finale: „Ihr hört es, schon sein Nam' ist ihr ein Abscheu"). Als Heiling mit dem Brautschmuck kommt und Anna ihn voll Schrecken zurückweist, auch erklärt, daß sie seine Herkunft wisse, stößt er in grimmiger Verzweiflung seinen Nebenbuhler Konrad mit einem Dolch nieder und stürzt fort.

**3. Akt.** Felsenschlucht. Heiling ruft die Geister und erfährt von ihnen, daß Konrad nicht tot sei; als er die Geister zwingen will, ihm, dem König, zu dienen, erinnern sie ihn daran, daß er freiwillig seine Macht aufgegeben. Verzweifelnd sieht er sein Erdenglück und seine Geistermacht verloren, aber die Geister versprechen ihm Rache, wenn er auf ewig zu ihnen zurückkehre.

Verwandlung: Konrad will mit Anna Hochzeit machen und die Bauern feiern vergnügt das Fest (Stephans

Lied: „Es wollt vor Zeiten ein Jäger frein" und Duett zwischen Konrad und Anna: „Nun bist Du mein"). Sie spielen nach Hochzeitsbrauch Blindekuh, wobei Anna den geisterhaft erscheinenden Heiling erwischt. Als dieser sich rächen will und Konrad mit den Bauern zum Schutz herbeieilt, ruft Heiling die Geister, aber von seiner Mutter ermahnt, entsagt er der Rache und gelobend, daß kein sterbliches Auge ihn je wiedersehen solle, kehrt er in die Erde zurück.

## Die heimliche Ehe.

Oper in 2 Akten von Cimarosa. Text von Bertati.

Personen: Graf Tiefenthal (Conte) = Bariton. Roms (Geronimo) = Baß. Beatrix (Fidalma) = Mezzosopran. Lisette (Lisetta) = Sopran. Caroline (Carolina) = Sopran. Sander (Paolino) = Tenor. Paul, Peter, Jakob, Martin u. Anton, Bediente in Roms' Hause. Ort: In Roms' Haus. Zeit: 18. Jahrhundert.
Wien 1792.

**1. Akt.** Sander und Caroline sind heimlich vermählt (Duett: „Teure, o zweifle nicht"). Roms will Lisette mit dem Grafen Tiefenthal vermählen (Arie: „O höret Alle"). Als der Graf aber kommt, empfindet er für Lisette Kälte, dagegen für Caroline Liebe (Quartett: „Ich empfinde Haß und Kälte"). Als aber Tiefenthal den ihm bekannten Sander das gesteht, ist dieser entrüstet, umsomehr, da er weiß, daß den Grafen nur Roms Reichtum lockt; auch Caroline weist seine Werbung zurück (Arie: „Ach, Herr Graf, verzeih'n Sie gütig"). Als der Graf jedoch abermals in Caroline dringt, wird er von der eifersüchtigen Lisette überrascht, deren Geschrei nun das ganze Haus zusammenruft (Finale: „Was, der Graf ist unzufrieden?").

**2. Akt.** Der Graf erklärt, 50 000 Gulden von der Mitgift streichen zu lassen, wenn Roms ihm anstatt Lisette Caroline giebt und der geizige Roms geht darauf ein (Duett: „Sie müssen sich bequemen"). Sander beschließt nun, mit Caroline zu entfliehen (Arie: „Ehe noch der Morgen graut"). Der Graf dagegen versucht Lisette zum Verzicht zu bewegen, indem er sich alle Untugenden andichtet, aber Lisette geht nicht darauf ein (Duett: „Ich bin närrisch, modensüchtig"). Beatrix und Lisette bestimmen Roms, Caroline in ein Kloster zu schicken, damit sich alles ordne, worüber Caroline natürlich verzweifeln will. Lisette freut sich (Arie: „O welches Vergnügen"). Als der Graf nunmehr aber erfährt, daß Sander und Caroline schon seit 2 Monaten heimlich vermählt sind, ist er edel genug, den aufgebrachten Vater zu beschwichtigen, indem er erklärt, Lisette heiraten zu wollen.

## Das Heimchen am Herd.

Oper in 3 Abteilungen von Carl Goldmark. Text von M. Willner (nach Dickens gleichnamiger Erzählung).

Personen: John = Bariton. Dot, dessen Weib = Sopran. May = Sopran. Eduard Plummer = Tenor. Tackleton = Baß. Das Heimchen = Sopran. = Ort: Dorf in England. Zeit: Anfang des 19. Jahrhunderts. Wien 1896.

**1. Abteilung.** Stube in Johns Haus. Nach dem Prolog des unsichtbaren Elfenchores erzählt das Heimchen, daß es der Schutzelf des Hauses sei. (Lied: „Ich bin das Heimchen"). Dot sagt ihm, daß sie ein süßes Geheimnis besitze, das es nicht ausplaudern soll. May bejammert ihr Schicksal als verlassene Braut, die morgen den alten Tackleton freien soll. John kehrt heim, bringt den als alten Seemann verkleideten Geliebten May's, Eduard, mit (Lied: „Ach Heimat, teuere Heimat") und verteilt die Post unter die Dörfler.

**2. Abteilung.** Garten. Zum Abendessen kommen May und Tackleton, der John auf den rätselvollen Fremden eifersüchtig macht; (Quintett: „Mein Herz erbebt"). John will Dot mit Eduard, der sich ihr entdeckt hat, belauschen, wird aber von dieser, die es merkt, durch eine lustige Liebesscene übertölpelt. Er will sich und den Fremden töten, aber das Heimchen schläfert ihn ein, und zeigt ihm im Traume seine Zukunft als glücklicher Vater.

**3. Abteilung.** Wohnstube bei John. May, durch Eduards Lied („Hollah, es klingt ein Seemannslied") gerührt, will ihm treu bleiben. Sie finden sich (Duett: „O sprich Geliebter") und fahren in Tackletons Wagen zur Trauung, während dieser von den Dörflern zurückgehalten wird. John und Dot versöhnen sich, als sie ihm ihr Geheimnis gesteht und das Heimchen zeigt am Schluß im lebenden Bilde die vier beglückten Menschen, deren Schicksale nur Märchen waren.

---

## Heinrich der Löwe.

Oper in 4 Akten von E. Kretschmer. Text vom Komponisten.

Personen: Friedr. Barbarossa, deutscher Kaiser = Baß. Heinrich der Löwe, Herzog von Sachsen = Tenor. Clementina, dessen Gemahlin = Sopran. Irmgard, seine verwitwete Schwägerin = Alt. Konrad v. Wettin = Bariton. Astoc, ein alter Fremder = Bariton. Der Burgkastellan = Baß. — Ort: Rom, Heinrichs Burg und bei Ancona. Leipzig 1877.

**1. Akt.** Rom. Heinrich, vom Kaiser als Sieger begrüßt, fordert diesen auf, nach Deutschland zurückzukehren

und als der Kaiser dem nicht entspricht, trennt er sich von ihm.

**2. Akt.** Park in Heinrichs Burg. Konrad von Wettin bringt die Nachricht, daß der Kaiser Heinrich gefangen genommen und des Herzogs treue Gemahlin Clementina bricht nach Italien auf, den Gatten zu befreien.

**3. Akt.** Des Kaisers Lager in Ancona. Clementina gewinnt in der Verkleidung eines deutschen Sängers die Gunst des Kaisers und verlangt die Befreiung des Herzogs, ohne sich zu erkennen zu geben.

**4. Akt.** In Heinrichs Burg. Der Kaiser kommt zu Heinrich und stiftet einen neuen Bund mit ihm, indem er ihn zum Herzog von Bayern macht. Irmgard, die Heinrich liebt und Clementina haßt, sucht die letztere mit Konrad von Wettin zu verdächtigen, als aber Clementina eines der deutschen Lieder anstimmt, erkennen alle in ihr jenen Sänger, der Heinrich befreit hat und der Herzog ist überzeugt von ihrer Treue.

---

## Hermione.

Oper in 4 Akten von M. Bruch. Text, nach Shakespeare, von E. Hopffer.

Personen: Leontes, König von Sizilien = Bariton. Hermione, seine Gemahlin = Sopran. Perdita = Sopran. Polyxenes, König von Arkadien = Tenor. Florizel, sein Sohn = Tenor. Irene = Alt. Camillo = Bariton. Schäfer Tityrus = Baß. Der Oberpriester des Apollo = Baß. – Ort: Syrakus und Arkadien.

Berlin 1872.

**1. Akt.** Königsburg in Syrakus. Der auf Polyxenes eifersüchtige Leontes will diesen durch Camillo vergiften lassen, doch tritt Camillo in die Dienste des Polyxenes und entflieht mit ihm.

Verwandlung: Gemach im Schlosse. Leontes hält seine Gemahlin Hermione für schuldig und läßt sie in den Kerker werfen.

**2. Akt.** Kerker. Irene hat Hermiones Kind, um es vor der Wut des Königs zu schützen, an Polyxenes gesandt. In einem Traum sieht Hermione, wie ihr Kind aus einem untergehenden Schiff vom Schäfer Tityrus gerettet wird.

Verwandlung: Gerichtsplatz. Da der Spruch des Apollo die Königin unschuldig nennt, wütet Leontes, aber die Götter strafen ihn, da sein Sohn stirbt und Irene den Tod Hermiones verkündet.

**3. Akt.** In Arkadien. Florizel liebt Perdita, die von Tityrus unerkannt erzogene Tochter Hermiones. Da

Polyxenes eine Ehe zwischen beiden nicht gestatten will, entflieht das Liebespaar nach Sizilien, gefolgt von Tityrus, der die Erkennungszeichen Perditas mitnimmt.

**4. Akt.** Königsburg in Syrakus. Leontes empfängt Florizel und Perdita gütig und verspricht ihnen Schutz. Polyxenes kommt dazu und versöhnt sich mit Leontes, indem er ihm Perdita als die Tochter Hermiones zu erkennen giebt. Da Polyxenes Perdita seinem Sohne vermählen will, zweifelt Leontes nicht mehr, daß er der Vater des Mädchens ist.

Verwandlung: In Irene's Haus. Irene führt alle in ihr Haus und zeigt den Staunenden eine Statue Hermiones. Hermione ist es selbst, sie lebt und wird von Leontes und Perdita in Glück umarmt.

---

## Die Hexe.

Oper in 3 Akten von August Enna. Text nach Arthur Fitgers gleichnamigem Trauerspiel.

Personen: Thalea = Sopran. Almuth, ihre Schwester = Sopran. Gela, Magd = Mezzosopran. Edzard, Offizier = Tenor. Xaver, Jesuit = Tenor. Lubbo, Wachtmeister = Bariton. Simeon, jüdischer Gelehrter = Baß. Der Pfarrer = Baß. – Ort: Thaleas Gut und Dorf. Zeit: Nach dem dreißigjährigen Kriege.
Kopenhagen 1891.

**1. Akt.** Bibliothekssaal in Thaleas Schloß. Thalea war mit Edzard verlobt, glaubt ihren Bräutigam in einer Schlacht gefallen und hat sich mit Simeon, einem alten jüdischen Gelehrten, wissenschaftlichen Studien hingegeben, dadurch nun zu einer freien Anschauung in Glaubenssachen gelangend. Deshalb ist sie bei den Bewohnern der Umgegend in den Verdacht gekommen, eine Ketzerin, eine „Hexe" zu sein. Thalea, die nicht mehr an ein Glück der Liebe glaubt, läßt sich durch den Volksglauben nicht in ihren Studien stören. Da bringt ihre Schwester Almuth die Nachricht von der Beendigung des Krieges und der Rückkehr des totgeglaubten Edzard. Als Edzard kommt, flammt in Thalea die Liebe wieder empor, er aber neigt sich der aufblühenden jüngeren Schwester zu, da sie jetzt so erscheint, wie ihm Thaleas Bild in den vielen Jahren seit seiner Abwesenheit immer vorgeschwebt. — Edzards Wachtmeister Lubbo, ein Fanatiker, warnt den Freund vor Thalea, die auch er für eine Hexe hält, möchte ihn wieder fort haben, aber Almuth hält Edzard zurück. Thalea empfindet wohl, was in dem Geliebten vorgeht, beschließt aber, ihn sich wieder zu gewinnen. — Lubbo verbündet sich mit dem Jesuiten Xaver gegen Thalea.

**2. Akt.** Ein Saal im Schlosse. Es ist der Vorabend

von Thaleas Hochzeit mit Edzard. Selbst traurig, fordert sie ihre Schwester auf zu singen, um ihr diese trübe Stimmung zu nehmen (Almuths Lied: „Es waren zwei Königskinder"). — Almuth liebt Edzard, der zu ihr kommt und ihr auch seine Liebe gesteht („O Almuth, Almuth, süße Rose"). Almuth aber, in Gedanken an ihre Schwester, reißt sich entsetzt aus seinen Armen. Thalea findet Almuth in heftiger Erregung und entringt ihr ein Geständnis (Almuth: „Ja, ich liebe ihn in seliger Qual"). Thalea trotzt dem Geschick und hält an Edzard fest.

**3. Akt.** Dorfkirchhof. Edzard scheint entschlossen, sein früher gegebenes Wort zu halten und sich mit Thalea zu vermählen. Inzwischen hat Xaver das Volk gegen die „Hexe" aufgereizt. Als Thalea mit dem Hochzeitszug kommt und die Kirchenschwelle erreicht, bebt sie zurück, im letzten Augenblick bedenkend, daß sie das Glück der Schwester vernichte. Das Volk glaubt aber, sie wage sich aus andern Gründen nicht in das Haus Gottes und laut schallt nun der Ruf: „Verflucht sei sie! Die Hexe in die Flamme". Edzard weist das Volk zurück, aber Thalea, ihren Brautschmuck Almuth zu Füßen werfend, sinkt ohnmächtig zusammen. Als das Volk die Erwachende wieder bedroht, schützt sie ein Priester mit der Bibel, aber Lubbo fordert, sie solle auf dieser Bibel den Glauben beschwören. Als Thalea dies stolz verweigert, durchbohrt sie Lubbo mit einem Dolche. Sterbend vereinigt sie Edzard mit Almuth.

---

## Das Hexenlied.

Romantische Oper in 1 Akt von Emil Kaiser. Text mit Zugrundelegung des gleichnamigen Gedichts Ernst v. Wildenbruchs.

Personen: Der Prior des Benediktiner-Ordens = Baß. Medardus, Benediktiner-Mönch = Bariton. Der Stadtschultheiß = Baß. Konrad, ein junger Bürger = Tenor. Edith, dessen Braut = Sopran. Hadwiga = Sopran. — Ort: Eine kleine freie deutsche Reichsstadt. Zeit: 14. Jahrhundert.
Berlin 1894.

Marktplatz der Stadt mit der Kirche, an welcher ein starker Holzpfahl sichtbar ist.

Medardus ist in Gedanken versunken. Er sucht die Liebe und glaubt sie schließlich im Glauben zu finden; so geht er in die Kirche ab.

Fröhlicher Chor kommt mit Edith und Konrad, deren Hochzeit gefeiert werden soll. (Chor: „Froh erglänzt der junge Tag" und Duett: „Unter Frohsinn heit'ren Scherzen".) Vor der Trauung soll aber Hadwigas Mutter als Hexe ver-

brannt werden und der Richtzug zieht über die Bühne. Da stürzt Hadwiga herein und fleht die Menge um Erbarmen für die Mutter. Statt Mitleid findet sie Haß; man verabscheut sie, weil sie von der Mutter ein Lied gelernt, ein Hexenlied, das die Herzen verzaubert. Wild stürzt das Volk auf sie; der Scheiterhaufen soll auch sie verbrennen und Hadwiga entrinnt nur, indem sie sich an den Pfahl bei der Kirche klammert, der Freistatt gewährt. Dort findet sie Medardus, der das schöne Mädchen mit Entzücken sieht, zwar zurückschaudert, als er hört, daß sie die Tochter der Hexe sei, aber doch nicht von ihr lassen kann und frägt, wessen man sie beschuldigt. Er kann nicht glauben, daß ein Lied Zauber enthalte und verlangt es zu hören (Hadwigas Lied: „Der Zauber, der mit Allgewalt entströmt dem süßen Liede"): Auf Medardus macht das Lied einen mächtigen Eindruck und er erscheint hingerissen. Er denkt dann zwar an seinen Ordensschwur, aber als Hadwiga zeigt, daß sie ihn liebt, bricht die lang zurückgehaltene Leidenschaft hervor und er will mit ihr entfliehen. Entzückt zieht er sie an seine Brust und so findet ihn der Prior und das Volk. Für sie ist nun kein Zweifel mehr, daß Hadwiga eine Hexe ist, sie reißen sie fort und verbrennen sie mit der Mutter auf demselben Scheiterhaufen. Der an seine Pflicht gemahnte Medardus läßt sie ziehen, als er aber den Ruf seiner Brüder: „Requiescat in pace" vernimmt, Hadwigas Feuertod verkündend, da stürzt er mit dem Ruf: „Hadwiga" entseelt zu Boden. Ein furchtbares Unwetter bricht los und vom verlöschenden Scheiterhaufen schwebt, als Sinnbild von Hadwigas Unschuld, eine weiße Taube zum Himmel empor.

---

## Hiarne.

Oper in 4 Akten und einem Vorspiel von Jngeberg v. Bronsart. Text von H. v. Bronsart und Fr. Bodenstedt.

Personen des Vorspiels: Der Oberpriester = Baß. Hiarne Harald u. Wingulf, Skalden = Tenor u. Bariton. — Personen der Oper: Hiarne, König von Dänemark = Tenor. Harald, Wingulf, Friedleu, Sohn Frothos des Großen = Bariton. Erich, König von Schweden = Bariton. Hilda, seine Tochter = Sopran. Der Oberpriester = Baß. Eine Wahrsagerin = Alt. — Ort: Auf und bei der alten dänischen Königsburg Lethra und zu Sigtuna, der alten schwedischen Königsresidenz.

Berlin 1891.

**Vorspiel:** Meeresstrand. Drei Skalden werben um die Krone, die durch den Tod Frothos erledigt ist, da auch der Erbe derselben, Friedleu, verschollen. Hiarne wird zum König gewählt.

**1. Akt.** Königshalle in Sigtuna. Hiarne kommt als Skalde und wirbt um Erichs Tochter Hilda für den König von Dänemark. Er gewinnt der Geliebten Herz auch in der Verkleidung, da Hilda in ihm den Jüngling ihrer Träume erschaut.

Verwandlung: Hain. Hiarne kommt und löst Hildas Zweifel, indem er sich als König zu erkennen giebt.

**2. Akt.** Felsengegend am dänischen Meer. Hiarnes Nebenbuhler um die dänische Krone befragen die Wölwa (Wahrsagerin); diese verkündet Hiarnes Untergang durch einen König. — Mit dem rückkehrenden Friedleu verbinden sich die beiden Skalden gegen Hiarne.

**3. Akt.** Szene des Vorspiels. Friedleu und seine Verbündeten stören das Hochzeitsfest Hiarnes mit Hilda. Hiarne tötet Harald und Wingulf, stürzt sich dann aber in Bedrängnis ins Meer. Da sich der Oberpriester weigert, nunmehr Hilda mit Friedleu zu verbinden, wird er von letzterem getötet.

Verwandlung: Brautgemach: Hilda vergiftet sich, den Geliebten tot glaubend. Als der gerettete Hiarne kommt, stirbt sie in seinen Armen.

**4. Akt.** Platz am Meer, wie im Vorspiel. Hildas Leiche wird verbrannt. Hiarne kommt als greiser Skalde, singt das Trauerlied und wird von König Friedleu geworben.

Verwandlung: Friedleus Schlafgemach. Hiarne, der Friedleu für einen Betrüger hält, will diesen töten. Als er aber auf seiner Brust das Königsmal sieht, tritt er zurück und wird von Friedleu durchbohrt. Ein Blitz des Gottes Thor zerschmettert indessen die Burg, unter deren Trümmern Friedleu begraben wird. Hiarne schwebt nach Walhalla empor, wo er die geliebte Hilda als Walküre findet.

---

## Hjarne, der Sängerkönig

oder: **Das Tyrfingschwert**; auch unter dem Titel: **König Hjarne.**

Oper in 4 Akten von H. Marschner. Text von W. Grothe.

Personen: Friedebrand, König Frothos Sohn = Bariton. Asloga, seine Schwester = Sopran. Uller, ihr Oheim = Baß. Hjarne, Björn und Gotron, Vasallen des Königs von Dänemark = Tenor, Bariton und Baß. Heröd, Hjarnes Vasall = Bariton. Walla, Aslogas Vertraute = Alt. Ein Skalde = Baß. Der Geist Asmunds = Baß.

Frankfurt a. M. 1863. Neuaufführung: München 1883. Die Oper ist ein nachgelassenes Werk des Komponisten.

Der Vasall Hjarne liebt Asloga, die Tochter des Königs Frotho III. und ist darum verbannt. Frotho ist gestorben,

sein Sohn Friedebrand verschollen, so verlangt Frothos Bruder Uller die Krone und Asloga zur Gemahlin. Hjarne gewinnt aber Asloga mit dem Tyrfingschwert, daß er von dem Geist Asmunds, seines Ahnen, erhalten, welches im Kampf um die gute Sache unbesiegbar macht, in ungerechtem Streit aber sich gegen den Besitzer wendet. Uller, dem die Kräfte böser Geister dienstbar sind, muß vor dem Tyrfingsschwert weichen und Hjarne besteigt den Thron. Unerwartet kehrt der Thronerbe Friedebrand zurück, Uller vereinigt sich mit ihm und Hjarne, der den Prätendenten für einen Betrüger hält, zieht gegen Friedebrand. Als aber im Kampf sein Schwert sich gegen ihn wendet, ist sein Widerstand dahin und er entflieht. Friedebrand besteigt den Thron; das Tyrfingschwert ist in Ullers Besitz. Als fahrender Sänger kehrt Hjarne zurück, von Uller erkannt, der das Schwert gegen ihn zückt, aber durch den Zauber desselben selbst erschlagen wird. Friedebrand versöhnt sich mit Hjarne und dieser bleibt mit Asloga vereint (vergleiche dasselbe Sujet in anderer Bearbeitung, bei der Oper „Hiarne" von J. v. Bronsart).

**1. Akt.** Halle in Hjarnes Schloß. Hjarne hört von Frothos Tod und Ullers Werbung um Asloga. Er will das Tyrfingschwert gewinnen und dann Asloga erkämpfen.

Verwandlung: Bei Asmunds Grab. Hjarne beschwört den Geist Asmunds, der ihm das Tyrfingschwert giebt, aber auch mit dessen Eigenschaften bekannt macht.

**2. Akt.** Aslogas Gemach zu Lethra. Asloga soll am nächsten Tage Ullers Gattin werden; da hört sie Hjarnes Gesang und faßt Mut.

Verwandlung: Hain vor der Burg zu Lethra. Im Bund mit finstern Geistern will Uller Asloga zwingen, die Seine zu werden, da kommt Hjarne, und Uller entflieht vor dem Tyrfingschwert.

**3. Akt.** Wilde Felsengegend. Uller erfährt von den Geistern die Macht des Zauberschwertes, hört dann durch Gotron Friedebrands Heimkehr und eilt diesem zu.

Verwandlung: Krönungssaal in Lethra. Hjarne erhält die Nachricht von Friedebrands Anzug und zieht diesem mit Heeresgefolge entgegen, da Asloga die Kunde für einen Betrug Ullers hält.

**4. Akt.** Hjarnes Zelt. Als Hjarne das Schwert zieht, um in den Kampf zu eilen, sieht er an dem Funkeln desselben, daß seine Sache ungerecht ist. Entsetzt wirft er das Schwert fort und entflieht. Friedbrand kommt siegreich und Uller ergreift das Tyrfingschwert, dessen Zauber er jetzt kennt.

Verwandlung: Krönungssaal in Lethra. Friedebrand besteigt den Thron, Hjarne kommt als Sänger, Uller zieht gegen ihn das Schwert, achtet nicht des drohenden Funkelns und stürzt zusammen. Friedebrand vereinigt Hjarne und Asloga.

---

## Hochzeitsmorgen.

Oper in 1 Akt von Karl v. Kaskel. Text von F. Koppel-Ellfeld.

Personen: Pietro Moralto, Kapitän der Versaglieri = Tenor. Paola Tosta = Bariton. Regina Negri, die Wirtin zur „Stella d'Italia" = Alt. Giovanna, ihre Tochter = Sopran. Toto, Tabaksverschleißer = Baß. Ziegenhirt = Sopran. Ninetta, Kellnerin = Sopran. Bastiano, Versaglieri-sergeant = Baß. Zwei Versaglieri. — Ort: Italienische Grenzfeste unweit Mentone. Zeit: Gegenwart.
Berlin 1894.

Paola Tosta liebt Giovanna und diese hat sich ohne Leidenschaft seine Liebe gefallen lassen. Nun aber hat der Kapitän Pietro Moralto um sie geworben und für diesen ist ihre Liebe voll erwacht. Als jedoch Paola als Schmuggler-führer gefangen gebracht wird und erschossen werden soll, fleht sie bei Pietro um sein Leben. Pietro sagt zwar aus Liebe zu, Paola entfliehen zu lassen, seine Soldatenehre ver-hindert ihn aber an der Erfüllung dieses Versprechens. — Da kommt der Tabaksverschleißer Toto, der Paolos Dienste als Schmuggler gebraucht und befreit den Gefangenen. Um-sonst beschwört der Befreite Giovanna, mit ihm zu ent-fliehen, sie liebt ihn nicht, ihr Herz gehört Pietro. Beim anbrechenden Morgen soll die Hochzeit stattfinden, da tritt Paola dazwischen zückt den Dolch auf den Kapitän und trifft die schützend vortretende Giovanna, welche mit einem Liebeswort für Pietro ihren Geist aushaucht.

Chor der Versaglieri: „Es flammt das Herz, es schwillt der Mut", mit dem Refrain: „Wir Versaglieri sind die Elite der italienischen Armee". Romanze Giovannas: „Wir waren Kinder und spielten zusammen auf sonniger Flur". Arie Pietros: „Für einen Mann von Ehre". Arioso Paolas: „Das Weib, das Du am meisten liebst". Kanzone Pietros: „Zigeunerin sitzt am Hochgericht". Szene zwischen Gio-vanna und Pietro: „Sein Schicksal geht mir nah" und Duett: „Ich sehe (fühle) tief im Herzen lodern den Kampf der Liebe und der Pflicht". Romanze Pietros: „Soldatenruhm war all' mein Streben". Arioso Paolos: „Vorüber alle Todesqual", Szene mit Giovanna: „Ich hörte rufen, All-mächt'ger Du?" und Arie: „Ha, Schändliche, mit meinem

Lieben hast Du ein schnödes Spiel getrieben". Gebet Giovannas: „Maria, Mutter der Schmerzen". Anbruch des Morgens mit Gesang der Ziegenhirten und Mädchen. Duett zwischen Pietro und Giovanna: „Wenige Stunden, selige Lust". Ensemble „Himmelshuld, Mutterseegen" und Auftritt Paolas: „Ich gebiete Halt!".

## Das hölzerne Schwert.

Musik-Komödie in 2 Bildern von Heinrich Zoellner. Text vom Komponisten.

Personen: Heinrich IV., König von Frankreich = Bariton; ein Oberst = Baß; ein Rittmeister = Bariton; Lisette, Tochter des Wirts vom Gasthof „zum roten Ochsen" in Paris = Sopran; Jean Gautier = Tenor; Lambert = Baß; Zigeunermutter = Alt; Zigeunermädchen Jamira = Sopran; Alda = Mezzo-Sopran. Ort: Paris. Zeit: Ende des 15. Jahrhunderts.

**1. Bild.** Platz vor dem „Roten Ochsen". Der König als Soldat verkleidet, will sehen, was seine Soldaten treiben. Die Zigeuner tanzen (Lied: „Ich schlage dich, mein Tambourin"). Jean bezahlt sie (Altfranzösisches Lied: „Zu Markte ging ich frohgesinnt"). Der König erfährt von Jean, daß er sein Paradeschwert versetzt und dafür ein hölzernes in die Scheide steckt. Er läßt ihm durch die Zigeunermutter die Zukunft prophezeihen, die ihm fürstliche Gnade bringen wird. Lambert führt ein Scherzspiel auf.

**2. Bild.** Platz vor dem Pavillon im Park des Königs. — Der König komponiert ein Lied („Komm, Aurora""). Lisette kommt, durch einen anonymen Brief dorthin beschieden (Lied: „Es träumt' einst meiner Mutter"). Der König hat den ersten Zug der Leibdragoner hierher befohlen, um Jean und Lambert zu strafen. Er befiehlt Jean, dem Lambert den Kopf abzuschlagen, weil er nach dem Thron getrachtet hat. Jean sträubt sich, fleht dann um ein Wunder zum Himmel, daß sein Schwert in ein hölzernes verwandelt werde. Der König etwas verblüfft, schenkt ihm eine Börse, damit er sich sein stählernes Schwert wieder kaufen kann und giebt sich als der Soldat von gestern zu erkennen.

## Die Hugenotten.

Oper in 5 Akten von Meyerbeer. Text von Scribe und Deschamps.

Personen: Margarete von Valois = Sopran. St. Bris, katholischer Edelmann = Baß. Valentine, seine Tochter = Sopran. Raoul de Rangis, protestantischer Edelmann = Tenor. Marcel, sein Diener = Baß. Urbain, Page = Sopran. Graf Nevers = Bariton. Bois Rosé, protest. Soldat = Tenor. Cossé, Tavannes u. Thoret, kathol. Edelleute Retz, Méru u. Maurevert = kleine Gesangspartien. Ein Nachtwächter. — Ort: In Paris und in der Touraine. Zeit: 1572.
Paris 1836.

Die Bartholomäusnacht bildet den Hintergrund des Werkes. Der scheinbare Frieden zwischen Katholiken und Hugenotten ist hergestellt, aber die katholische Partei, an deren Spitze hier St. Bris steht, ist entschlossen, die Glaubensfeinde zu vernichten, während Margarete und der edle Nevers für dauernden Frieden sind.

**1. Akt.** Saal bei Nevers. Der protestantische Edelmann Raoul wird von den versammelten katholischen Edelleuten beim Gastmahl empfangen (Raouls Arie: „An diesem Ort mich hier zu finden"). Als im fröhlichen Kreise jeder die nennen soll, die er liebt und Raoul genötigt wird, den Anfang zu machen, erklärt dieser, eine Unbekannte zu lieben, die er einst ritterlich vor Zudringlichen befreit hat (Romanze: „Ihr Wangenpaar"). Als sein Diener Marcel erscheint, ein ehrlicher, aber rauher Krieger, stimmt dieser, um den geliebten Herrn vor Gefahr zu warnen, das Streit-Lied der Hugenotten an, Luthers Choral: „Eine feste Burg". — Marcel verweigert zu trinken, singt aber, aufgefordert, das Trutzlied: „Die Klöster brennet alle ab". — Nevers, der Gastgeber, geht, eine Dame zu empfangen, die man für sein Liebchen hält; Raoul erkennt durch ein Fenster seine Unbekannte und hegt von diesem Augenblick an nur noch Verachtung für sie. Es ist aber Valentine, die Raoul wirklich liebt und nur zu Nevers kam, ihn zu bestimmen, von der mit ihr bestimmten Hochzeit zurückzutreten, worin Nevers hochherzig stimmt. Ein Page, Urbain, bringt Raoul einen anonymen Brief und fordert ihn auf, ihm mit verbundenen Augen zu einem Stelldichein zu folgen (Cavatine: „Eine holde, edle Dame").

**2. Akt.** Garten der Königin Margarete, worin sich dieselbe mit ihren Damen ergeht (Arie: O glücklich Land"). Sie schwärmt mit ihrer Umgebung für den Frieden (Damenterzett: „Zwiespalt entweiche"). Sie empfängt nunmehr Valentine, für deren Gatten sie einen anderen Edelmann

gewählt. Es ist Raoul, den Margarete nun allein empfängt (Duett: „Wer bist Du“). Als die Damen und Edelleute kommen, erkennt Raoul die Königin, der er huldigt. Sie verkündet jetzt, daß sie zum Zeichen des Friedens Raoul mit Valentine verbinden wolle und läßt sich von allen schwören, den alten Haß zu begraben (Ensemble: „Süße Eintracht schirm uns wieder“). Als aber St. Bris jetzt seine Tochter Valentine vorstellt, die Raoul für die Geliebte des Grafen Nevers hält, weist er sie mit Abscheu zurück und nur das Machtwort der Könign verhindert blutigen Streit.

**3. Akt.** Vor einer Schenke in Paris zechen Katholiken und Protestanten (Lied des Hugenotten Bois Rosé und seiner Kameraden: „Er nahm den Säbel in die Rechte“). Ein ausbrechender Streit wird durch eine Zigeunerbande unterbrochen, welche Tänze aufführt. — St. Bris, der Valentine nun doch mit Nevers vermählt, will sich an Raoul rächen, da erhält er durch Marcel eine Herausforderung desselben und der Edelmann Maurevert nimmt für St. Bris den Zweikampf an. Valentine hat in der nahen Kapelle gelauscht und möchte den Geliebten vor dem Tod bewahren. In einem folgenden großen Duette bestimmt sie Marcel dafür zu sorgen, daß Raoul nicht ohne Begleitung komme. Mit einem Männerseptett beginnt das Duell. Der Waffenlärm zieht Anhänger beider Parteien herbei; Margarete zieht vorüber und Valentine bestätigt Marcels Worte, daß man Raoul nach dem Leben trachte. Hierdurch kommt Raoul auch zur Erkenntnis, daß er Valentine falsch beschuldigt habe.

**4. Akt.** Saal bei Nevers. Valentine ist die Gattin Nevers geworden, aber umsomehr liebt sie Raoul (Romanze: „Er füllt allein mein Herz“). Als der Geliebte erscheint, muß sie ihn vor den nahenden Katholiken verbergen und Raoul hört, daß die Hugenotten in dieser Nacht getötet werden sollen. Der edle Nevers, der nicht zum Mörder werden will, wird von St. Bris für die Nacht unschädlich gemacht. Es folgt die berühmte Schwerterweihe: „Geheiligt sei die Rache“. Als alle den Saal verlassen, sucht Raoul den Ausgang, seine Glaubensbrüder zu warnen, wird aber von Valentinens Liebe aufgehalten (Duett: „Zur Rettung aller bin ich erkoren“). Sein Herz hält ihn eine Weile zurück, als aber das Zeichen zum Beginn des Hugenottenmordes ertönt, stürzt Raoul zum Fenster und eilt hinaus, Valentine ohnmächtig zurücklassend.

**5. Akt.** (An vielen Bühnen wird von diesem Akt nur die letzte Verwandlung dargestellt, da die Oper sehr lang ist, andere Bühnen vereinigen einen Teil der vorletzten Ver-

wandlung mit der letzten zu einem Akt. Das Original hat drei Szenen.)

Saal im Hotel de Nesle. Die Führer der Hugenotten sind versammelt, da stürzt Raoul herein und enthüllt die Schrecken der Bartholomäusnacht, als deren erstes Opfer das Haupt der Protestanten, Admiral Coligny, bereits gefallen. Alles eilt zu den Waffen.

Verwandlung: Kirchhof. Valentine findet Raoul mit Marcel. Nevers, der sich befreite, ist gefallen; sie nimmt Raouls Glauben an und Marcel segnet das Paar ein. In der nahen Kirche sind die Frauen der Hugenotten versteckt; die Katholiken dringen herein und es erfolgt eine furchtbare Metzelei. Im Kampf wird Raoul von Valentine getrennt.

Verwandlung: Quais von Paris. Raoul kommt tötlich verwundet; Valentine und Marcel stützen ihn, aber St. Bris dringt herbei, seine Leute schießen und getroffen sterben Raoul und Valentine vereinigt im Tode.

## Der Husar.

Komische Oper in 2 Akten von Ignaz Brüll. Text von Viktor Léon (nach Scribe).

Personen: Erdö János = Baß. Ilona, seine Tochter = Sopran. Stef i Gruber = Baß. Etelka, seine Frau = Mezzosopran. Pepi, deren Sohn = Tenorbuffo. Kathinka = Alt. Rádai Férencz Baßbuffo. Ein Husar = Tenor. Ort: Ein ungarisches Dorf. Zeit: um 1860.

**1. Akt.** Dorfplatz. Vor dem Hause Erdös. Der Husar, der auf der Flucht vor den ihm verfolgenden Panduren begriffen ist, eilt über den Platz und verbirgt sich in der Scheune. Das ganze Dorf ist in Aufregung, da am heutigen Tage die feierliche Hochzeit Ilonas stattfinden soll. Alles ist vorbereitet, nur der Bräutigam, der mit seinen Eltern von Wien kommen sollte, fehlt. Der Husar wird irrtümlich für diesen gehalten, der auch Husar ist. Die Verlobung ist schon vor zwanzig Jahren von den Eltern des Brautpaares verabredet worden und der Bräutigam daher von Angesicht unbekannt. Der fremde Husar läßt sich nach anfänglichem Staunen den Irrtum gern gefallen, da er auf diese Art den Verfolgern zu entgehen hofft. Diese rücken, nachdem er den Hochzeitsstaat angelegt hat, in das Dorf ein, um dem flüchtigen Husar zu suchen, der beschuldigt wird, einen Edelmann erschossen zu haben. Der wirkliche Bräutigam Pepi kommt nun in Husarenuniform mit seinen Eltern an, wird für den Mörder, in dem man einen altbekannten Räuberhauptmann vermutet, gehalten und in das Gefängnis geschleppt.

**2. Akt.** Ungarische Bauernstube. Der Husar, der inzwi-

schen mit Ilona getraut worden ist, gesteht dieser die Täuschung. Sie schwören sich ewige Liebe. Als der Husar fort ist, kommt Pepi, der, nachdem sich der Irrtum aufgeklärt hat, wieder aus dem Gefängnis entlassen worden ist. Alle bemitleiden Ilona, die nun mit dem „Räuberhauptmann" verheiratet ist. Da bringt der Bote dem Anführer der Panduren ein Schreiben des Kreisgerichts, in dem ihm mitgeteilt wird, daß der gefürchtete Bandit in der vergangenen Nacht getötet worden ist. Nun entsteht allgemeine Verwirrung.

„In der Früh war er tot, Und z' Mittag nimmt er a Frau, Und heut Nacht geht er durch — Das ist ein Toter, schau, schau!"

Man glaubt, daß Ilona mit seinem „Geist" getraut worden ist, als er plötzlich leibhaftig wieder erscheint, da es ihm unmöglich war, zu entfliehen. Er erzählt den Mord, an dem er schuldlos sei, da er aus Notwehr gehandelt hat. Der Pandurenführer bringt ihm einen Beutel mit 2000 Gulden, da sich inzwischen herausgestellt hat, daß der Tote der Räuberhauptmann war, auf dessen Kopf die Belohnung von den Behörden ausgesetzt war. Der Husar wird nun von den Schwiegereltern mit großer Freude als Sohn aufgenommen, während Pepi unverrichteter Sache wieder abziehen muß.

## Idomeneus.

Oper in 3 Akten von Mozart. Text von Varesco.

Personen: Idomeneus, König von Kreta = Tenor. Idamantes, sein Sohn = Alt. Electra, Tochter Agamemnons = Sopran. Ilia, Tochter des Priamus, als Gefangene auf Kreta = Sopran. Arbaces, Freund des Idomeneus = Bariton. Der Oberpriester des Neptun = Baß. Erster u. Zweiter Opferpriester. Die Stimme des Orakels. Ort: Cydonia. Zeit: Kurz nach Beendigung des trojanischen Krieges.
München 1781.

Idomeneus ist bei der Rückfahrt von Troja vom Sturm befallen, hat dem Neptun (Poseidon) gelobt, das erste, was ihm auf Kreta entgegenkomme, zu opfern, und als dies sein Sohn Idamantes ist, sucht er ihn mit Agamemnons Tochter Electra zu vermählen, welche auch Idamantes liebt. Dieser aber liebt und wird geliebt von der gefangenen Ilia und begreift die Beweggründe seines Vaters nicht, der ihn, um ihn vor dem Opfertod zu retten, mit Electra verbunden in die Verbannung schicken wollte. Der über die Verzögerung des Opfers zürnende Gott sendet ein Ungeheuer, welches das Land verheert. Idamantes, der nun alles erfährt, tötet das Ungeheuer und ist zum Opfer bereit, aber Ilia will für ihn sterben. Neptun ist dadurch versöhnt, sein Orakel verkündet: Idomeneus soll vom Thron steigen, Idamantes König und Ilia seine Gattin werden.

**1. Akt.** Ilias Gemach im Palast und Seegestade. Große Arie der Ilia: „Wann werden je, Ihr Götter, sich meine Leiden enden?") dazu Idamantes, der, die Flotte des Idomeneus gesehen, beschließt, den gefangenen Trojanern die Freiheit zu schenken und gesteht, daß er es aus Liebe zu Ilia thue. Da bringt Arbaces die Nachricht von dem Sturm und man glaubt Idomeneus verloren. Darüber ist Electra besonders erschreckt, die nun ihre Aussicht auf Idamantes schwinden sieht (Arie: „So starbst Du, o großer König"). Idomeneus, nach dem Gelübde gerettet, kommt mit seinen Gefährten; mit Grausen aber sieht er sich von dem Sohn zuerst begrüßt („Himmel, was seh' ich? Weh mir!"). Der Akt schließt mit einem Chor zu Ehren Neptuns.

**2. Akt.** Halle im Palast und Hafen. Idomeneus enthüllt Arbaces sein Gelübde und beschließt, Idamantes mit Electra vermählt nach Argos zu senden. Ilia begrüßt den König: „Wenn je in vollem Glanze". Electra dankt dem Idomeneus für seinen Beschluß („Wie glänzt freundlich mir des Glückes Sonne"). Nunmehr soll Idamantes mit Electra das Schiff besteigen, da sendet der erzürnte Meergott das Ungeheuer, vor dem alle in Schrecken entfliehen.

**3. Akt.** Im Garten und vor dem Palaste (Ilias Arie: „Euch, Ihr einsamen Schatten"). Sie klagt ihr Leid. Idamantes kommt zu ihr; er will Abschied nehmen und den Tod suchen im Kampfe mit dem Ungeheuer; Ilia fleht ihn an zu bleiben und gesteht dem Entzücken ihre Liebe. Sie werden von Idomeneus und Electra überrascht. Idomeneus fordert seinen Sohn nochmals zur Flucht, da kommt der Oberpriester und verkündet, wie entsetzlich das Ungeheuer das Land verwüste. Nun gesteht der König, wer das versöhnende Opfer sein soll. Da erschallt Jubelruf, Idamantes hat das Ungeheuer erschlagen und ist nun bereit zum Opfer. Ilia will für ihn das Opfer sein. Das Orakel ertönt, Idomeneus steigt vom Thron, Idamantes wird Herrscher, Ilia seine Gattin. Electra wütet, aber muß entsagen.

## Indra.

Oper in 3 Akten von Flotow. Text von Putlitz.

Personen: Don Sebastian, König von Portugal = Tenor. Don Luiz Camoens = Bariton. Pedro, Offizier = Tenor. Der Beichtvater des Königs. = Baß. Fernand, Begleiter des Königs = Bariton. José, Wirt = Tenor. Zigaretta, seine Frau = Sopran. Kudru, indische Gauklerin = Mezzosopran Indra, ihre Sklavin = Sopran. Ort: Lissabon und Sofala in Ostafrika. Zeit: 1751.

Wien 1852.

**1. Akt.** Hafen in Sofala. Indra produziert sich mit einer Gauklerbande. Sie singt ein Lied, dessen Dichter Ca-

moens ist, der als Krieger anwesend, sich in sie verliebt. Da dessen Offizier Pedro Camonens aus Eifersucht wegschickt, sammeln die Kameraden Geld, damit der Dichter sich vom Soldatendienst loskaufen kann. Das Geld benutzt Camoens aber, um Indra von ihrer Herrin Kudru zu befreien und entflieht dann mit ihr, begleitet von dem lockern José, der seine Frau Zigaretta in Lissabon verlassen, aber von ihr erwischt ist.

**2. Akt.** Hafenplatz in Lissabon. Der König Don Sebastian wird auf einer Fahrt verwundet, zu Camoens gebracht und von Indra geheilt. Als Pedro Indra sieht, will er ihr das von Camoens übergebene Gedicht „Die Lusiade" entreißen, doch der König tritt dazwischen und befreit seine Retterin.

**3. Akt.** Zimmer bei José. José entgeht seinem Schicksal nicht, denn in Matrosentracht ist ihm Zigaretta gefolgt und kommt nun zu ihm. Der König trifft mit Indra zusammen, von der er das Gedicht erhalten und verlangt den Namen des Dichters zu erfahren. Indra verweigert das, als aber Pedro Camoens als Deserteur anbringt, da nennt sie seinen Namen. Der König löst des Dichters Fesseln und er, der selbst um Indras Liebe geworben, legt das Mädchen in Camoens Arme.

---

## Ingwelde.

Oper in 3 Aufzügen von Max Schillings. Text von Ferdinand Graf Sporck.

Personen: Die Thorsteinsöhne, Klause = Bariton. Brau = Tenor. Siwart = Tenor. Gorm = Baß. Ortolf = Bariton. Gaudulf = Baß. Ingwelde, seine Tochter = Sopran. Gest, sein Pflegesohn = Tenor. – Ort: Norwegen. Zeit: Zur Wikingerzeit.
Karlsruhe 1894.

**1. Akt.** Ein Wohnraum in der Burg von Gladgard. Gaudulf und Ingwelde sehen im Traum den Rachekampf mit den Thorsteinsöhnen. Gest errät hinzutretend ihren Traum. Gaudulf beklagt den Verlust seiner vier Söhne, Gest sagt ihm tröstend Sohnestreue zu. Ortolf, der Herold der Thorsteinsöhne, kommt höhnend im Narrengewand, um die Fehde anzusagen. Eine kurze Liebesscene zwischen Gest und Ingwelde.

Verwandlung. Freier Wiesenplan. Der Kampf entbrennt, zieht sich aber nach dem Walde hin. Ingwelde verfolgt ihn von der Warte aus. Von den Kämpfern ungesehen, naht Klause über das Wasser, um Ingwelde zu rauben. Diese aber bemerkt sein Kommen und setzt die Burg in Brand. Klause dringt in die brennende Burg und bemächtigt sich Ingweldens.

Der Kampf kommt nun wieder näher und Geſt befreit ſeine Geliebte und ſchlägt Klauſe nieder. Siwart verlangt Ingwelde als Blutrecht. Durch Klauſes Tod ihm verbunden, ſoll das Los nun entſcheiden, welchem der Brüder ſie zufällt. Sie ſchwört einen furchtbaren Eid, daß ſie nur dem Toten die Treue halten wolle. Da bewegt ſich Klauſe, der nur betäubt war, und durch ihren Eid gebunden, muß Ingwelde ihm folgen. Aber die Mannen beider Parteien ſchwören ſich Feindſchaft bis in den Tod.

**2. Akt.** Halle in der Burg der Thorſteinſöhne. Während des Hochzeitsmahles hat der Skalde Bran das Lob Ingweldens geſungen. Dieſe erwidert ihm, daß ſie ſich wohl der Sitte, aber nie der Minne beugen wolle. Die Männer gehen zur Jagd. Während ihres Alleinſeins überredet Ingwelde Klauſe mit ihr zu Gandulf zu fahren und ihn zu verſöhnen, dann wolle ſie ihm Liebe ſchenken. Brans Fackel ſoll dem Boote den Weg weiſen. Dieſer, zurückbleibend, ſingt träumeriſch („Es ſtieg ein Stern"); jedoch bald erfaßt ihn Argwohn über Ingweldens Milde. Er will die Fackel fortnehmen, die im ſelben Augenblick verlöſcht. Klauſes Geiſt kündet ihm deſſen Tod und ſtachelt ihn zur Rache auf. Der ſanfte Jüngling reift zum Kämpen und ſchleift ſeine Axt unter wildem Geſang („Sa, ſa plumpes Geſtein"). Die heimkehrenden Brüder bringen Klauſes Leichnam, halten aber ſein Sterben durch Gandulfs Tod für geſühnt. Bran teilt Klauſes Schatz in zwei Teile, indem er für ſich verzichtet und nur auf die Rache Anſpruch erhebt.

**3. Akt.** Am Strande nahe Burg Gladgard. Geſt und Ingwelde ſitzen im Liebesgeſpräch. Ingwelde von Qual über den Verrat gepeinigt, ſieht überall Klauſes Geiſt und bittet Geſt mit ihr in ferne Länder zu ziehen. Er verſpricht es ihr, als Bran erſcheint, um Rache zu nehmen. Er erſchlägt Geſt, der Ingwelde ſchützen will. Bran, von Ingweldens Anblick bethört, vergißt die Rache. Vergeblich mahnt Klauſes Geiſt. Ingwelde will Bran erſchlagen, allein ſie vermag es nicht. Erſt als das brennende Totenſchiff Geſts auf dem Meere erſcheint, iſt ihnen ihr Schickſal klar. Die zur Rächenden gewordene Jungfrau und der zornentbrannte Sänger ſuchen den Tod gemeinſam auf dem Meere. Die entſetzten Mannen ſehen ein Boot auf das Totenſchiff zugleiten. Ingwelde und Bran ſteigen zu Geſt. Das Geiſterſchiff Klauſes fährt ſie in den Grund und ſinkt mit ihnen. Aus der Tiefe tönt Geſang („Ihr trotzigen Helden"). Die am Ufer Stehenden ſinken in tiefer Ergriffenheit auf die Knie.

---

## Jakob und ſeine Söhne.

(Siehe: Joſef in Egypten.)

## Iphigenia in Aulis.

Lyrische Tragödie in 3 Akten von Gluck. Text von du Rollet.

Personen: Agamemnon = Bariton. Klytämnestra, seine Gemahlin = Mezzosopran. Iphigenia, beider Töchter = Sopran. Achilles = Tenor. Patroklos = Baß. Kalchas, Oberpriester = Baß. Arkas, Befehlshaber von Agamemnons Leibwache = Tenor. Artemis (Diana) = Sopran. – Ort: Aulis. Paris 1774.

**1. Akt.** Griechisches Lager. Arie des Agamemnon: „O Artemis, Erzürnte! Umsonst gebeutst Du mir dies schreckliche Opfer". Der König hat die Göttin erzürnt und sie rächt sich, indem sie durch widrige Winde die Abfahrt der griechischen Flotte nach Troja verhindert. Um sie zu versöhnen, soll Agamemnon seine Tochter Iphigenia der Göttin zum Opfer bringen. Kalchas enthüllt den Griechen das Verlangen der Göttin („Die Göttin will, daß ich Euch jetzt belehren soll"). Er dringt in Agamemnon, das Opfer zu gewähren (Duett: „Du siehst, wie laut das Heer schon wütet"). Unerwartet kommt Klytämnestra mit Iphigenia im Lager an und Kalchas deutet dies als einen Wink der Götter, daß Agamemnon gehorchen solle. Die Ankunft der Frauen wird mit festlichem Tanz und Gesang gefeiert. Klytämnestra deutet die Zurückweisung von seiten Agamemnons dahin, daß Achilles, Iphigenias Bräutigam, untreu geworden sei (Duett: „Verhaßt sei Dir Achill" und Arie Klytämnestras: „Waffne Dich mit zürnendem Mute"). Iphigenia kann das nicht fassen (Arie: „Weh' mir, mein Herz, noch unerfahren"). Zu ihr kommt der nichtsahnende Achilles; als sie ihm Untreue vorwirft, weist er das zurück und versichert seine Liebe (Duett: „Ist's ein Traum, der mich täuschet?")

**2. Akt.** Palast Agamemnons. Iphigenia ist von neuem Zweifel wegen ihres Vaters Haltung bewegt, aber Klytämnestra bringt frohe Nachricht (Duett: „Bald Tochter macht Dich Hymen glücklich"). Achilles feiert Iphigenia mit Sang und Tanz. Als er die Braut aber zum Altar führen will, verkündet Arkas, daß Agamemnon am Altar warte, die Tochter zu opfern. Klytämnestra fleht Achilles um Rettung an (Arie: „Ach, zum Tode verdammt durch den grausamsten Vater" und Terzett: Achilles, Klytämnestra, Iphigenia: „Fürstin, beruhige Dich"). Achilles tritt Agamemnon entgegen (Duett: „Er kommt! Götter, mäßigt den Zorn meines Herzens"). Gereizt befiehlt der König die Beschleunigung des Opfers (Recitativ: „Es geschehe mein Gebot" und Arie: „O Du, dem Vaterherzen Teurer").

**3. Akt.** Ein Zelt. Die Griechen verlangen von Arkas, der Iphigenia bewacht, ungestüm das Opfer. Achilles kommt, um Iphigenia entfliehen zu lassen. (Duett: „Geliebte, folge mir"!). Die Tochter Agamemnons jedoch will den geliebten Achilles vor Schande bewahren und beschließt, den Opfertod zu erdulden (Arie des Achilles: „Wohlan! geh' und gehorch' — Grausame!"). Die Griechen kommen Iphigenia zu holen, sie verteidigt den Vater gegen Klytämnestra und eilt fort (Arie Klytämnestras: „Schleud're Zeus, Deine Blitze").

---

## Iphigenia auf Tauris.

Oper in 4 Akten von Gluck. Text, nach dem Französischen des Guichard, von J. D. Sander.

Personen: Iphigenia, Oberpriesterin der Diana = Sopran. Oreste = Bariton. Pylades = Tenor. Thoas, König der Scythen = Baß. Diana = Sopran. Erste und zweite Priesterin. Ein Scythe. Ein Tempeldiener. — Ort: Tauris.

Paris 1779. — Durch den seltsamen Schluß der „Iphigenie in Aulis" (siehe diese) erscheint die vorliegende Oper nicht als Fortsetzung der ersten „Iphigenie", was sie doch aber in der That ist.

Klytämnestra hat Agamemnon nach der Rückkehr aus Troja erschlagen und wurde dafür von ihrem Sohn Oreste ermordet. Von den Eumeniden verfolgt, befragt der Muttermörder das Orakel des Apollo und es wird ihm Rettung verheißen, wenn er die Schwester aus Tauris hole. Da er von der Rettung Iphigeniens durch Diana (Artemis) nichts weiß, glaubt er, es sei das Götterbild Dianas (Apollos Schwester) gemeint, eilt mit seinem Freund Pylades nach Tauris, um das Dianastandbild zu rauben, findet aber dort Iphigenia, erkennt die eigene Schwester und kehrt mit ihr nach Griechenland zurück, von der Verfolgung der Eumeniden befreit.

**1. Akt.** Dianatempel. Iphigenia sucht den Dienst der Göttin zu reinigen, denn bisher mußte sie, der Sitte des Landes gemäß, alle Fremden opfern. Sie hat von Oreste geträumt und sehnt sich nach dem Bruder; das jetzige Dasein ist ihr verhaßt und sie sieht Diana um Erlösung an (Arie: „O Du, die einst mir Rettung gab"). Thoas kommt; von einem Traumbild erschreckt, will er Diana neue Opfer bringen (Arie: „Die Ahnung banger Furcht"). Da bringen die Scythen Oreste und Pylades, die sie gefangen haben und Thoas befiehlt ihren Tod.

**2. Akt.** Das Innere des Tempels. (Arie des Oreste: „Ihr, die Ihr mich verfolgt" und Arie des Pylades: „Nur

einen Wunsch, nur ein Verlangen"). Pylades wird fortgeführt und Oreſtes bleibt allein zurück; die Eumeniden erſcheinen am Eingang und quälen ihn, da tritt Iphigenia zu ihm, erfährt wer er iſt und was ſich in ihrem Vaterhaus Schreckliches begeben. Iphigenia iſt erſchüttert (Arie: „O laß mich Tiefgebeugte weinen").

**3. Akt.** Iphigeniens Gemach. (Arie: „Ewig werd' ich ſein gedenken"). Als Oreſtes und Pylades gebracht werden, enthüllt Iphigenia ihnen, daß ſie einen von ihnen retten wolle und bezeichnet Oreſtes. Als ſie gegangen, drückt Pylades ſeine Freude über des Freundes Rettung aus, aber dieſer will in edler Liebe Pylades gerettet ſehen (Duett: „Und Du verſicherſt noch, daß Du mich liebeſt"). Als Iphigenia zurückkehrt, erklärt Oreſtes, daß ſie Pylades retten ſoll, ſonſt würde er ſich ſelbſt töten. So gezwungen giebt die Prieſterin nach und übergiebt Pylades ein Schreiben an ihre Schweſter Elektra. Pylades beſchließt, Oreſtes zu retten.

**4. Akt.** Opferhalle. Iphigenia ſchaudert vor dem bevorſtehenden Opfer und giebt ſich ihrem Bruder zu erkennen. Thoas aber, von Pylades Befreiung unterrichtet, verlangt wütend die Opferung des Oreſtes, läßt ſich auch nicht durch das Geſtändnis bewegen, daß es der Prieſterin Bruder ſei. Da kommt Pylades bewaffnet mit ſeinen Schiffsgefährten und im ausbrechenden Kampf erſcheint die Göttin Diana und weiſt die Scythen zurück, deren Verehrung ſie nicht mehr dulden will. Von ſanften Winden geleitet enteilen die Griechen mit Iphigenia und den griechiſchen Unterprieſterinnen dem ungaſtlichen Lande.

---

## Iris.

Oper in 3 Akten von Pietro Mascagni, Text von L. Illica. (Eine deutſche Ueberſetzung iſt nicht vorhanden).

Perſonen: Der Blinde = Baß; Iris, ſeine Tochter = Sopran Dara = Tenor; Kyoto = Bariton. Ort: Japan.

**1. Akt.** Vor der Hütte der Iris. Die aufgehende Sonne preiſt ſich ſelbſt durch einen Dithyrambus als Schöpferin aller Schönheit der Welt. Iris tritt aus ihrer Hütte; ſie hat geträumt, man habe ihr die Puppe wegnehmen wollen und fabelhaftes Getier habe ſich im Garten gezeigt, aber ſchließlich hat die Sonne alle böſen Träume verſcheucht. Jauchzend hält Iris die Puppe dem aufſteigenden Geſtirne entgegen (Arie: „Ho fatto un triste sogno pauroso"). Sie liebt die Sonne und ſucht einen Platz für ihren blinden Vater, wo er recht warm beſchienen wird. Da erſcheinen hinter einer Hecke Oſaka und

Kyoto, blicken lüstern nach dem schönen Mädchen aus und beschließen, sie zu entführen. Der Vater warnt sie; Ungeheuer giebt es nicht nur im Traume, auch auf der Erde stellen sie unschuldvoller Schönheit nach. Unter munterem Gesange nähern sich eine Anzahl Wäscherinnen, auch Osaka und Kyoto haben ihren Plan vorbereitet und kommen mit einem Marionettentheater zurück, begleitet von allerlei Volk, Geishas, Musikanten u. a. m. Alle scharen sich um den Kasten, nur Iris bleibt auf die Mahnung ihres Vaters hinter der Hecke und sieht von hier aus zu. Die Handlung des aufgeführten Stückes ist folgende: Ein alter Japaner will seine Tochter als Sklavin verkaufen, sie will aber lieber sterben. Jor, der Sohn der Sonne erscheint vor ihrem Fenster und verkündet ihr, daß sie nicht durch Gift oder Dolch, sondern durch den Kuß der Sonne sterben solle, um in seinen Armen zum Nirwana einzugehen. Iris, die dem Vorgange mit einer steigenden Bewegung gefolgt und immer weiter eingetreten ist, wird mit Hilfe der Geishas von den Wüstlingen ergriffen und fortgeschleppt.

**2. Akt.** Das Innere eines verrufenen, dem Götzen Josephara geweihten „Grünen Hauses". Am goldenen Standbilde Josipharas liegt Isis schlafend auf einem Ruhebette, Osaka betrachtet sie (Arie: „In questa noia matta"). Iris erwacht („Ognora sogni") und glaubt unter dem Eindrucke des Puppenspiels den Sohn der Sonne vor sich zu haben. Auch begreift sie seine Liebesbeteuerungen nicht, da sie ja bisher nur mit Puppen gespielt hat, und als er sie küssen will (Arie: „Or dammi il baccio"), verlangt sie weinend, in ihre Heimat zurückgebracht zu werden. Zornig stößt Osaka sie von sich und überläßt sie Kyoto. Dieser kleidet sie in ein prächtiges Gewand und zeigt ihre Schönheit der lüsternen Menge, die das Haus anfüllt. Osaka sieht sie wieder und wird von neuem durch ihre Schönheit hingerissen. Da erscheint ihr blinder Vater, er kennt das Los, das ihr bevorsteht, hält sie aber für schuldig und bewirft sie mit Straßenschmutz. Da durchzuckt eine Ahnung von dem ihr drohenden Schicksale das Mädchen, und verzweifelt stürzt sie sich zum Fenster in einen tiefen Abgrund hinab.

**3. Akt.** Lumpensammler finden ihre Leiche, man hört die Stimmen Osakas, Kyotos und des Blinden, die als Symbole verschiedenartiger Formen der Selbstsucht auftreten.. Unter dem Strahle der aufgehenden Sonne verwandelt sich die Scene in einen märchenhaften Teich voller Lotosblumen, und Iris wird von Jor zur Sonne emporgetragen.

# Ivanhoe.

Romantische Oper in 4 Akten von Arthur Sullivan, Text nach W. Scotts gleichnamigem Roman von Julian Sturgis, deutsch von H. Wittmann.

Personen: Richard Löwenherz, König von England; Prinz John, sein Bruder; Cedrik, ein edler Sachse; Wilfried von Ivanhoe, sein verstoßener Sohn; Lady Rowena, sein Mündel; de Beaumanoir, Großmeister; de Bois-Gilbert, Commandeur des Templerordens; de Bracy, normannischer Ritter; Bruder Tuck, ein Einsiedler; Locksley, Anführer der Geächteten; Isaak von York, ein Jude; Rebekka, seine Tochter; Ulrika Wamba, Narr, und Oswald, Haushofmeister bei Cedrik. Ort; England. Zeit: Ende des 12. Jahrhunderts.

**1. Akt.** Halle in Cedriks Schloß. Cedrik beklagt Englands Geschick, unter die Herrschaft der Normannen gekommen zu sein. Aus seiner Rede erfahren wir, daß er seinen Sohn verstoßen hat, weil er sein Auge zu Lady Rowena, die königlichen Blutes ist, erhoben hatte. Unter dem Gesange „Allheil" setzen sich alle zum Mahle hin. Isaak begehrt für die Nacht ein Obdach und erhält es, ebenso Bois-Guilbert und de Bracy, die freilich als Normannen von den Sachsen kühl aufgenommen werden. Der Templer preist Rowenas Schönheit und bedauert, daß sie nicht anwesend ist. Doch da erscheint sie bereits, behält aber den Schleier vor dem Gesichte. Die Ritter müssen vom Kreuzzuge erzählen, und Cedrik freut sich, daß auch sächsische Ritter, allein voran König Richard, sich rühmlich ausgezeichnet haben. Ein Pilger, der die Gastlichkeit des Hauses ebenfalls in Anspruch genommen hat und kein anderer ist als Ivanhoe, erzählt noch mehreres darüber, verschweigt aber den Namen des Ritters, der beim Turnier gesiegt und sogar Bois-Guilbert geworfen habe. Dieser selbst nennt jedoch den Namen: Wilfried von Ivanhoe, und bedauert, daß er nicht Genugthuung fordern könne. Der Pilger bürgt dafür, daß Ivanhoe sich ihm stellen werde, was der Ritter bezweifelt. Auch Rowena nimmt sich des Angegriffenen warm an; Cedrik, um das ihm unangenehme Gespräch abzubrechen, hebt die Tafel auf, und alle begeben sich zur Ruhe. de Bracy erbittet die Hilfe des Templers bei seinem Vorhaben, Rowena nach dem bevorstehenden Turnier zu entführen.

Verwandlung. Rowenas Gemach. Rowena ist allein (Lied: „O Mond, wie dein Licht dem Silber gleich"). Ihre Frauen geleiten den Pilger zu ihr, von dem sie Näheres über Ivanhoe zu erfahren wünscht; sie läßt deutlich durchblicken, daß sie ihn liebt, und Ivanhoe scheidet von ihr in seliger Hoffnung. Er warnt Isaak vor den Anschlägen des Templers,

der ihn fangen wolle, um ein Lösegeld zu erpressen, und verspricht ihm seinen Schutz, wenn er ihm für das Turnier Rüstung und Waffen besorgen wolle.

Verwandlung. Vor den Turnierschranken in Ashby. Das Volk bejubelt den als „schwarzen Ritter" ungekannten König Richard als Sieger des vorigen Tages. Der Einsiedler Tuck reizt ihn mit derben Späßen und der König droht ihm, er werde ihn in seiner Klause aufsuchen und züchtigen; Tuck lacht ihn aus. Prinz John will, um die Sachsen zu beleidigen, den Juden Isaak auf ihrer Tribüne unterbringen, Rebekka bittet ihn, davon abzustehen. Ein Bote bringt ihm einen Brief, worin ihm mitgeteilt wird, daß sein Bruder Richard frei und in England sei; er ist besorgt und argwöhnt, daß es der schwarze Ritter sein könnte. Inzwischen hat Ivanhoe Bois-Guilbert in den Sand gestreckt und muß, um von Rowena den Siegespreis zu empfangen, den Helm abnehmen. Unter allgemeinem Jubel wird er erkannt, nur Cedrik wendet sein Gesicht zornig ab.

**2. Akt.** Einsiedelei im Walde. König Richard hat den groben, aber ehrlichen Tuck aufgesucht, der so thut, als ob er sich nur von Wasser und Brot nähre, schließlich aber allerlei Leckerbissen und Wein hervorholt. Beide schmausen und trinken, ihren Streit wollen sie ein andermal ausfechten. Der König singt ein Lied: „Was frag' ich viel nach Ruhm und Geld", und Tuck giebt gleichfalls einen munteren Gesang zum Besten („Der Wind bläst eisig über'm Meer"). Locksley tritt mit andren Geächteten auf und bittet um Hilfe für Cedrik und Rowena, die überfallen und nach des Templers Schloß Torquilstone gebracht worden seien. Ivanhoe liege tötlich verwundet in derselben Burg und werde von Isaak und Rebekka gepflegt. Alle brechen rasch auf.

Verwandlung. Burgweg vor dem Schlosse. Cedrik macht de Bracy Vorwürfe, daß er an dem Ueberfalle Teil genommen habe. De Bracy weist die Vorwürfe zurück und warnt Cedrik, ihn nicht zu reizen; er brauche nur zu sagen, daß der Verwundete Ivanhoe sei, und dieser müsse sterben. Wenn Rowena die Seine werden wolle, werde er ihn retten. Rowena ist um Ivanhoes willen zu allem bereit: Cedrik will nichts davon wissen, da sein Sohn für ihn tot sei. Der Templer kommt aus der Burg; ihm hat es jetzt die schöne Rebekka angethan, und er will sie trotz allen Widerstandes gewinnen (Gesang: „Wirb um die Kalte").

Verwandlung. Turmzimmer im Schlosse. Die wahnsinnige Ulrika singt ein wildes Lied („Wetzet die Beile") und erzählt der entsetzt zuhörenden Rebekka, was ihr Los sein werde. In demselben Zimmer ist einst Ulrikes Vater im Kampfe gefallen, und sie selbst, die letzte ihres Stammes mußte sich den Lüsten

des Templers preisgeben. Rebekka fleht sie an, ihr zu helfen, sie weist die Jüdin zurück (Rebekkas Gebet: „Gott Israels, o komm"). Dem eintretenden Templer bietet sie ihr reiches Geschmeide an, wenn er sie freiließe, hohnlachend weist er es zurück und prahlt mit seiner Macht über sie. In ihrer Verzweiflung will sie sich zum Fenster hinausstürzen, da verkündet ein Trompetenstoß das Nahen von Feinden, und der Templer eilt weg.

**3. Akt.** Kammer auf Torquilstone. Ivanhoe liegt auf dem Krankenbette (Lied: „Sanft, mit beschwingtem Fuß"), Rebekka und Ulrika treten ein; Ivanhoe ist entschlummert. Ulrika, die weiß, daß das Mädchen ihn liebt, mahnt sie, ihn zu pflegen, sie werde ihr die Hochzeitsfackel anzünden. Rebekka bleibt allein beim schlafenden Ivanhoe, sie weiß, daß sie ihn liebt („Ja, sie spricht wahr") und ist selig in diesem Gedanken. Das Kampfgetöse erweckt den Verwundeten, Rebekka muß ihm berichten, was sie vom Fenster aus sieht. Die Geächteten, an ihrer Spitze der schwarze Ritter, erstürmen nach heftigem Kampfe den Vorhof, da lodert ein Feuer empor: Ulrika hat die Burg angezündet. Der Templer stürzt ins Zimmer und schleppt Rebekka mit sich fort, Ivanhoe wird vom Könige aus der brennenden Burg gerettet, unter ihren zusammenstürzenden Mauern findet Ulrika den Tod.

**4. Akt.** Im Walde bei Torquilstone finden sich die Geretteten zusammen. Der schwarze Ritter, jetzt als König erkannt, überredet mit vieler Mühe Cedrik, seinem Sohne zu verzeihen und in seine Ehe mit Rowena zu willigen. Isaak kommt angestürzt und bittet um Hilfe für Rebekka, die ins Ordenshaus gebracht und wegen angeblicher an dem Tempelritter verübter Schwarzkunst zum Feuertode verurteilt worden sei.. Ivanhoe, obwohl noch nicht vollständig genesen, ist sofort bereit, seiner treuen Pflegerin beizustehen und folgt Isaak.

Verwandlung. Im Templestown. Chor der Templer: „Fremuere principes". Der Großmeister verkündet, daß die zum Tode verurteilte Jüdin für sich einen Gottesstreiter gefordert habe. Da keiner sich findet, soll sie zum Scheiterhaufen gebracht werden, trotz Bois-Guilberts Einspruch, der sie für sich zu retten wünscht. Im letzten Augenblicke erscheint Ivanhoe als Rebekkas Kämpe und streckt Bois-Guilbert im Zweikampfe tot zu Boden. Der König hebt den entarteten Tempelorden auf und läßt auf der Zinne des Ordenshauses die englische Fahne aufziehen. Schlußchor: „O Liebe, die uns alles zwingt".

# Jessonda.

Oper in 3 Akten von L. Spohr. Text von Gehe.

Personen: Jessonda, Witwe eines Rajah = Sopran. Amazili, ihre Schwester = Sopran. Dandau, Oberbramin = Baß. Nadori. Bramin = Tenor. Tristan d'Accunha, General der Portugiesen = Bariton. Ein indischer Offizier = Bariton. — Ort: Goa. Zeit: 16 Jahrhundert. Kassel 1821.

Der portugiesische Offizier Tristan d'Accunha hat sich vor Jahren in die Indierin Jessonda verliebt, doch mußte dieselbe die Frau eines Rajah werden.

**1. Akt.** Inneres einer Pagode. Der alte Rajah ist gestorben und Nadori erhält den Befehl von Dandau, der Wittwe Jessonda mitzuteilen, daß sie den Scheiterhaufen mit der Leiche teilen müsse (Chor: „Kalt und starr, doch majestätisch", Recitativ: „Nadori! Du hast dem Opfer Dich entzogen" und Duett: „Aus dieses Tempels heil'gen Mauern"). Ein Offizier bringt die Nachricht, daß bei den Portugiesen ein hoher Krieger angelangt sei und es solle die Stadt mit Sturm erobert werden. Dandau baut auf Brahma (Arie und Chor: „Der auf Morgen-Abendgluten").

Verwandlung: Gemach Jessondas. Jessonda weiß, daß sie sterben muß und sagt es ihrer Schwester Amazili. Diese erinnert sie aber an ihre Liebe und Jessonda klagt, daß sie ihn nicht wiedergesehen, den sie liebt (Arie: „Ihr Ihr Fühlende betrübet, kennet Ihr die stumme Pein?"). Nadori kommt, um Dandaus Befehl auszurichten; als er Amazili sieht, ist er, der vorher nie ein Weib gesehen, hingerissen von ihrer Schönheit („Ja, das — das ist Frauenschöne, die nie gesehen"). Sein Wesen ist umgewandelt, da die Liebe seine Brust schwellt.

**2. Akt.** Das Lager der Portugiesen. (Chor: „Kein Sang und Klang auf dieser Welt"). Zu Tristans Ehren werden Waffenspiele veranstaltet. Dann gedenkt er seiner Liebe (Arie: „Der Kriegslust ergeben, zog er mit wüstem Sinn"). — Tristan hat den Braminen in der Stadt erlaubt, daß eine Frau nach Landessitte an der Quelle, die in der Nähe des Lagers sich befindet, heilige Waschung übe. Die Portugiesen verlassen den Platz. Es ist Jessonda, die mit Amazili kommt (Duett: „Laß für ihn, den ich geliebet"). Nadori ist ihnen gefolgt; seine Liebe zu der Schwester giebt ihm den Plan ein, Jessonda zu retten (Arie: „Daß mich Glück mit Rosen kröne"). Er gesteht Amazili seine Liebe und sie erwidert dieselbe (Duett: „Schönes Mädchen, wirst mich hassen" und Arie: „O neu Gefühl, was mich beseelt").

Als Jessonda aus der heiligen Flut zurückkehrt, erblickt sie Tristan. Er will sie nun nicht mehr lassen, sie ist glücklich, mit dem Geliebten leben zu können. Da kommt Dandau, er hat Tristans Wort und, seiner Ehre folgend, muß dieser die Geliebte mit blutendem Herzen zum Tode ziehen lassen.

**3. Akt.** Zelt. Tristan kann nicht unternehmen, da er Waffenruhe abgeschlossen hatte, da meldet Lopez, daß Dandau selbst den Vertrag gebrochen und nun ruft Tristan, der von Nadori unterstützt wird, mit Eile zu den Waffen (Terzett: „Auf! und laßt die Fahnen fliegen"). Verwandlung. Platz in Goa. Gewitter, das vom Chor durch Gebet beschworen wird. — Mitten im Sturm der Elemente kommt die halb schon zum Tode geschmückte Jessonda herein und sucht Schutz bei der Statue Brahmas (Arie: „Hohe Götter, schauet nieder"). Beflügelten Schrittes kommt Amazili und verkündet Rettung, denn Tristan naht. Dandau will das Opfer nicht in die Hände der Portugiesen fallen lassen und Jessonda ermorden, schon aber ist Tristan da und hält die gerettete Geliebte in den Armen, während Amazili zu Nadori fliegt. Tristan führt Jessonda, Nadir und Amazili nach Europa. („Kommt mit in unser Vaterland.")

---

## Johann von Paris.

Komische Oper in 2 Akten von Boildieu. Text von St. Just.

Personen: Die Prinzessin von Navarra = Sopran. Der Oberseneschall der Prinzessin = Bariton. Johann von Paris = Tenor. Olivier = Sopran. Pedrigo, Gastwirt = Baß. Lorezza, seine Tochter = Mezzosopran. — Ort: Ein Wirtshaus in den Pyrenäen. Zeit: 17. Jahrhundert. Paris 1812.

Als Johann von Paris reist der Dauphin incognito seiner Braut, der Prinzessin von Navarra, entgegen, trifft mit ihr in einem Wirtshaus der Pyrenäen zusammen. Seine ungenierte Einladung zum Mittagsmahl erregt das Entsetzen des Seneschalls der Prinzessin, diese geht aber auf den Spaß ein, der jedoch damit endigt, daß sie sich in Johann verliebt.

**1. Akt.** Platz vor dem Wirtshaus. Alles ist in Vorbereitung, die Prinzessin, die hier absteigen will, zu empfangen (Chor und Szene: „Säumet nicht, thut Eure Pflicht"). Olivier kommt und verlangt Platz für Johann (Terzett: „Willkommen, Herr Gastwirt" und Arie Oliviers: „Begiebt mein Herr sich auf die Reise"). Johann erscheint

(Arie und Chor: „Macht's Freunde Euch bequem" und Duett zwischen Johann und Olivier: „Den Ruhm über alles zu lieben"). Der Seneschall der Prinzessin erscheint und bestellt sehr komisch gespreizt ein Mittagsmahl (Arie: „Weil man jetzt hier im Haus uns gehorchen wird müssen"). Johann aber erklärt, jetzt der Herr im Hause zu sein (Quartett: Johann, Seneschall, Pedrigo und Lorezza: „Darf ein Mensch so etwas wagen"). Die Prinzessin kommt und erregt sofort Johanns Entzücken (Arie der Prinzessin: „Welche Lust gewährt das Reisen"). Sie erkennt in Johann den Prinzen und beschließt, seine List zu schlagen, darum nimmt sie die Einladung Johanns zum Mittagsmahl an.

**2. Akt.** Dieselbe Dekoration (Johanns Arie: „Der Ritterschaft Zierde und Glanz"). Der nahenden Gesellschaft singt Olivier eine Romanze vor, von der Johann und die Prinzessin die anderen Strophen singen („Der Troubadour, stolz auf der Liebe Bande", mit dem Chorrefrain: „Wenn Kastagnetten klingen"). In dem folgenden Duett giebt sich Johann der Prinzessin zu erkennen („Der Mann, den ich erwählt"), die ihn liebt, worüber er glücklich ist (Schlußchor: „Der Schönheit Ruhm und Ehre").

---

## Josef in Egypten

(auch unter den Titeln: **Jakob und seine Söhne, Josef und seine Brüder**).

Oper in 3 Akten von E. Méhul. Text von A. Duval.

Personen: Jakob = Baß. Josef, unter dem Namen Kleophas, Statthalter in Egypten = Tenor. Simeon = Bariton. Benjamin = Sopran. Ruben = Bariton. Naphtali, Levi, Juda, Dan, Gad, Asser, Issaschar, Gebalon Jakobs Söhne = kleine Gesangspartieen. Utobal, Josefs Vertrauter = Baß, — Ort: Memphis und Umgebung.

Paris 1807.

**1. Akt.** Josefs Gemach im Palast. Josef sehnt sich nach seinem Vater (Recitativ: „Ach mir lächeln umsonst huldvoll des Königs Blicke" und Arie: „Vaterland, Dich mußt' ich jung verlassen"). In der darauf folgenden Arie erzählt Josef seinem Vertrauten Utobal, die aus der Bibel bekannte Geschichte seines Verkaufs („Ich war ein Jüngling noch an Jahren"). — Die Hungersnot hat Jakob mit seinen Söhnen nach Egypten geführt. Josefs Brüder kommen; unter ihnen ragt Simeon hervor, der schuld an Josefs Verkauf ist und die That bereut (Ensemble: „Nein, nein, Gott der Herr ist beleidigt"). — Josef empfängt seine Brüder, sieht zwar Simeon mit Schaudern, aber heißt sie doch willkommen, ohne

sich zu erkennen zu geben (Finale: „Mir ist sein Anblick fürchterlich").

**2. Akt.** Das Zeltlager Jakobs (Chor: „Israels Gott! Schöpfer! Quell alles Lebens"). In Dunkelheit sucht Josef das Lager auf und stößt auf Simeon, der dem Unbekannten seine Schuld und Reue beichet und dann Kleophas erkennend für seine Verwandten um Gnade fleht. — Benjamin tritt zu Josef (Romanze) „Ach mußte der Tod ihn uns nehmen"). Er ist unschuldig an der Brüder That und Josef freut sich seiner; als Jakob erwacht, stürzt er zu des Vaters Füßen (Terzett: „Gesang hört ich entfernt erschallen"). Als Utobal kommt, wird Josef als Kleophas erkannt und dieser führt Jakob und Benjamin mit sich im Triumph nach Memphis (Finale: „Josef, mein Sohn, nie vergißt Dich mein Herz").

**3. Akt.** Festhalle bei Josef, wo dieser seinen Vater und die Brüder bewirtet (Gesang der Jungfrauen: „Lobt den Herrn zum Klange der Saiten"). Josef eilt hinauf zum König, um die Aufnahme der Kananiter zu rechtfertigen und läßt die Brüder durch seine Leibwache schützen (Duett zwischen dem zurückbleibenden Jakob und Benjamin: „Du Trost und Stütze Deines Vaters"). Der von Gewissensqual gepeinigte Simeon kommt und gesteht dem Vater, daß Josef nicht, wie man ihm glauben gemacht, gestorben sei, sondern von ihm und den Brüdern als Sklave verkauft worden. Alle Brüder, von Reue gepackt, flehen den empörten Jakob um Verzeihung (Ensemble: „Trenne Dich von dieser schändlichen Brut. Verworfene!"). Josef kommt dazu, giebt sich zu erkennen, verzeiht und verkündigt ihnen des Königs Huld (Finale: „Vergessen ist, was vorgegangen", mit dem Schlußchor: „Lob Dir, o Herr! Preis Deinem Namen!").

---

## Die Jüdin.

Oper in 5 Akten von Halévy. Text von Scribe.

Personen: Sigismund, Kaiser der Deutschen = stumm. Brogny, Präsident des Konzils zu Konstanz = Baß. Leopold, Reichsfürst = Tenor. Eudoxia, seine Verlobte, des Kaisers Nichte = Sopran. Eleazar, ein Jude, Juwelier = Tenor. Recha, seine Tochter = Sopran. Ruggiero, Oberschultheiß von Konstanz = Bariton. Albert, Offizier der Bogenschützen. — Ort: Konstanz. Zeit 1414.
Paris 1835.

**1. Akt.** Platz vor dem Dom in Konstanz; der Kaiser verkündet den Bürgern von Konstanz ein Fest wegen des Sieges, den Leopold gegen die Feinde erfochten. Ruggiero läßt den Juden Eleazar verhaften, weil er an diesem Ruhe-

tag arbeitet. Da tritt der Kardinal Brogny aus dem Dom und erkennt Eleazar, den er in Rom schon gesehen, als er selbst noch nicht der Kirche angehörte, Gatte und Vater war. Seine Familie ist tot. Auf Eleazars Verwünschungen — denn der Jude haßt ihn, weil durch den Kardinal seine Söhne zum Scheiterhaufen verurteilt wurden — giebt er milde Antwort und befreit ihn (Cavatine und Chor: „Wenn ew'ger Haß, glühende Rache"). Eleazar denkt dennoch nur an Rache. Als der Platz sich enleert, tritt Leopold in unscheinbarer Tracht auf. Er liebt Eleazars Tochter Recha und hat sich in des Juden Haus als Glaubensgenosse eingeschlichen (Arie: „Von Dir fern, Geliebte, schlug bang dieses Herz"). Recha tritt zu Samuel (so nennt sich Leopold) und ist der Meinung, daß er von einer Reise zurückkehrt; da sie sich hier auf dem Platze nicht sprechen können, erwartet sie ihn am Abend in ihres Vaters Haus. — Es beginnt das Fest. Ballett. Eleazar mischt sich mit Recha unter die Menge und betritt, um besser sehen zu können, die Stufen der Kirche. Die empörte Menge will ihn und Recha in den See werfen, sie werden aber durch Leopolds Machtwort gerettet. — Mit dem Auftritt des kaiserlichen Festzuges schließt der Akt.

**2. Akt.** Zimmer in Eleazars Hause. Eleazar, Recha, Leopold und die jüdischen Hausbewohner sitzen beim Mahl (Gebet): „Kehr, o Gott unserer Väter, heute bei uns ein"). Ein Pochen unterbricht die Speisenden, schnell wird alles fortgeräumt und Eleazar läßt die Prinzessin Eudoxia ein. Leopold sucht sich vor seiner Verlobten zu verbergen, die gekommen ist, bei dem Juden einen Brautschmuck zu bestellen (Terzett: „Wie man sagt, besitzest Du ein Geschmeide"). Eleazar geleitet Eudoxia wieder hinaus und Recha, die gegen Leopold Verdacht geschöpft hat, verlangt von diesem Aufklärung. Er verspricht in der Nacht zu ihr zu kommen und alles zu sagen (Rechas Romanze: „Ha, wie bebt mein ängstlich Herz"). Als der Vater zu Bett ist, kehrt Leopold zurück (Duett: „Als mein Herz ich Dir hingegeben"). Er sagt ihr nun, daß er ein Christ sei; schon ist die schauernde Recha bereit, dennoch mit ihm zu fliehen, da werden sie von Eleazar überrascht (Terzett: „Wo eilt Ihr hin?"). Als der Alte hört, daß Leopold ein Christ, will er ihn töten, doch Recha tritt dazwischen. Eleazar kommt zur Besinnung und ist sogar bereit, Recha Leopold zur Gemahlin zu geben, aber soweit darf der Prinz nicht gehen. Eleazar verflucht den Davoneilenden und Recha bricht ob der Schmach zusammen.

**3. Akt.** Festhalle. Der Kaiser sitzt mit seinen Gästen an der Tafel. Gesang und Ballet. Das Volk nimmt den

Vordergrund ein, auch Eleazar und Recha sind darunter. Eudoxia erklärt Leopold zum Gemahl zu nehmen, da tritt Recha hervor und beschuldigt den Prinzen des Verrats, enthüllt, daß er mit einer Jüdin in Liebe verkehrt. Nachdem das erste Entsetzen sich gelegt, fordert Eleazar die Edlen zur Strafe an Leopold auf. Der Kardinal verflucht die Juden und exkomuniziert den Prinzen, der mit Recha und Eleazar gefangen gesetzt wird.

**4. Akt.** Gemach im Gerichtsgebäude. Eudoxia läßt Recha zu sich kommen und fleht die Jüdin an, Leopolds Leben zu retten, indem sie ihn vor Gericht unschuldig erklärt (Duett: „Ach Du nur kannst sein Leben, kannst zurück es geben"). Recha, die Leopold noch immer liebt, will nicht seinen Tod und beschließt, das Geständnis zu Gunsten des Geliebten zu thun. — Der Kardinal sucht in seiner Milde Eleazar zu retten, indem er ihn auffordert, Christ zu werden (Duett: „Dein Kind steht vor Gericht"). Eleazar aber will als frommer Jude sterben, droht jedoch noch vor seinem Tod Rache an einem Christen zu nehmen. Er erinnert den Kardinal an den Tag, wo dieser seine Frau und Kinder durch die Flammen seines brennenden Hauses verloren; eine Tochter von ihm habe er gerettet, sie lebt noch, er könnte ihm Kunde von ihr geben, aber er schweigt und der Kardinal geht tief erschüttert. Eleazar allein; er liebt Recha wie sein eignes Kind, aber sie ist es nicht, Zweifel erfaßt ihn, ob er sie opfern soll und er fleht den Himmel um Erleuchtung an (Arie: „Gott erleuchte meinen Sinn").

**5. Akt.** Platz in Konstanz mit dem Kessel, worin das Wasser siedet, in welchem Recha sterben soll. Volk füllt die Bühne. Marsch und Aufzug des Kardinals mit Eleazar und Recha. Das Todesurteil wird verlesen. Die beiden Juden müssen sterben, Leopold ist zur Verbannung begnadigt, weil Recha seine Unschuld beteuert. Da wird Eleazar wieder schwankend, er fragt selbst Recha, ob sie nicht als Christin leben will, sie aber will als Jüdin mit ihm sterben. Sie wird zum Tode geführt und in dem Augenblick, da sie stirbt, ruft Eleazar dem Kardinal zu: „Dort sieh Dein Kind".

## Kain.

Musikdrama in 1 Aufzuge von Eugen d'Albert. Text von Heinrich Bulthaupt.

Personen: Der Herr; Adam; Eva; Kain; Abel; Adah (Kains Frau); Hanoch, ihr Kind; Lucifer.

Felsenlandschaft. Die Menschen sind aus dem Paradies vertrieben, von dem Adam und Eva dem kleinen Hanoch er-

zählen. Der gottergebene Abel sieht es wieder vor sich erstehen. Alle beten zum Herrn, nur Kain schweigt. Als er allein ist, lästert er Gott und verlangt den Tod. Lucifer steigt empor und kündet dem erschrockenen Kain, daß er durch die Sünde und den Tod die Erlösung in die Welt gebracht habe. Abel erscheint und begrüßt freudig den Morgen. Kain fordert ihn auf, mit ihm dem Leben zu entsagen und als Abel dies ablehnt, zerstört er den Altar und das Opfer und erschlägt dann Abel. — Die Stimme des Herrn ruft den Mörder. Adam, Eva und Adah fordern den Bruder von Kain. Als sie den Mord entdecken, will Adam den Sohn erschlagen, läßt die Axt aber wieder sinken. Der Herr verflucht Kain, der mit den Seinen fortzieht.

---

## Kirke.

Musik-Tragödie in 3 Akten mit dem Vorspiel „Polyphemos" von August Bungert. Text vom Komponisten.

Personen: Gäa = Chor von Baßstimmen. Eros = Tenor. Zeus = Baß. Hermes = Tenor. Athene = Alt. Polyphemos = Baß. Odysseus = Bariton. Periander = Bariton. Zurylochos = Bariton. Perimedes = Bariton. Kirke = Sopran. Die vier Quellen = Sopran und Altsoli. Helios = Tenor. Teiresias = Baß. Antikleia = Alt. Achilleus = Tenor. Ajax = Tenor. Agamemnon = Baß. Here = Alt. Poseidon = Baß. Die drei Moiren = Altsoli. = Ort: auf der Insel Aea. Zeit: vorgeschichtlich.

Dresden 1897.

**Vorspiel:** Gebirgsrücken vom Meer umspült. Die Gestalt der Gäa erscheint in ungeheuren Formen. Der auf einem Löwen reitende Eros weckt die Welt. Hinter fallenden Wolken erscheint der Olymp, dessen Götter Zeus um die Errettung des Odysseus anflehen. Der Nebel sinkt und die Höhle des Cyclopen Polyphemos am Fuße des Aetna wird enthüllt. Trunken vom Weine seiner Gefangenen schnarcht er laut, und erwacht erst schmerzgepeinigt, als Odysseus ihm das Auge ausbrennt. Morgenchor der Okeaniden (Wachst Du Schwester.) Geblendet vermag Polyphmos nicht zu sehen, daß Odysseus und seine Gefährten sich, unter den Bauch seiner Schafe klammern und so unter seinen tastenden Händen entfliehn. Erst als sie das Schiff erreicht haben, verrät Odysseus ihre Flucht. Polyphemos verflucht sie und fleht seinen Vater Poseidon um Rache an. Die Okeaniden umkreisen Heil rufend das fliehende Boot.

Verwandlungsmusik. Perianders Lied hinter der Szene. (Weit übers Meer hin.)

**1. Akt.** Küste der Insel Aea. Kirke, Tochter des

Helios, umgeben von ihren Dienerinnen, beklagt ihr einsames Schicksal. Odysseus, von Hermes geführt, naht sich. Er erhält von dem Gotte ein Mittel den Zaubertrank der Kirke, die seine Gefährten in Schweine verwandelt hat, unwirkbar zu machen. Odysseus und Kirke entbrennen in Liebe zu einander. Als sie sieht, daß ihr Trank bei ihm keine Wirkung ausübt, giebt sie sich ihm ganz hin und entzaubert seine Gefährten. Periander warnt Odysseus, dieser wirft ihm die Lanze in den Rücken. Sie feiern ein wildes Liebesfest. Gäa erscheint. Während ihres Gesanges endigt der Akt.

**2. Akt.** Meeresstrand auf Aea. Die an der Pest erkrankten Freunde des Odysseus verfluchen ihn. Der sterbende Periander mahnt ihn an sein Weib. Odysseus will Kirke entsagen und hilft das Schiff bauen. Da erscheint Helios, um ihn zu töten. Kirke erfleht Gnade für ihn, aber die Pfeile des Sonnengottes haben sein Hirn zerrüttet. Er muß Heilung im Schattenreiche suchen. Kirke schläfert ihn ein und läßt seinen Traum Wirklichkeit werden. Musikalische Ueberleitung. Verwandlung. Im Hades. Unter Grotten fließt der Styx. Odysseus opfert und ruft die Schatten des Teiresias, der ihm die Zukunft prophezeit, der Antikleia, des Agamemnon, Ajax und Achilleus. Die beiden letzten zerren den Periander mit sich, auf dessen Wunden deutend. Ueberwältigt von den auf ihm eindringenden Schatten, fällt Odysseus zu Boden.

**3. Akt.** Olymp. Helios und Poseidon nahen als Ankläger des Odysseus, allein Zeus verbietet ihnen die Rache, weil Odysseus Schicksal, das Selbstbezwingen, lange bestimmt ist. Verwandlung. Palast der Kirke. Diese hält den schlummernden Odysseus im Arm, der den Namen „Penelopeia" flüstert. Kirke versucht ihn kosend zu halten. erscheint aber noch vor dem Grauen des Hades befangen. Völlig erwacht, verlangt er seine Freiheit. Kirke zeigt ihm die blühende, bacchantische Landschaft, die ihn indeß nicht fesselt. Sie singt und tanzt vor ihm (Liebst Du meine Lieder) sie gesteht ihm, daß sie Mutter werde, doch ihre Kunst ist machtlos. Da verzaubert sie die blühende Insel in eine fürchterliche Schreckenslandschaft. Odysseus kämpft sich durch und wird von seinen Gefährten jubelnd begrüßt und gewappnet. Helios erscheint, um Odysseus zu töten, allein Hermes bringt Zeus Gebot, ihn frei zu lassen. Er zieht hin, Kirke von Helios gesegnet, denkt an die Zukunft. und entschlummert langsam. Die drei Moiren spinnen das Schicksal. Gäos brausender Sang schließt die Tragödie.

## Der König hat's gesagt.

Kom. Oper in 3 Akten von Leo Deslibes. Text von Gondinet.

Personen: Marquis von Moncontour = Baß. Die Marquise = Mezzosopran. Baron von Merlussac = Baß. Gautru, Finanzmann = Baß. Marquis v. Flarambel = Sopran. Marquis v. Bluette = Alt. Javotte, Zofe = Sopran. Miton, Professor der Tanzkunst = Tenor. Benoit, ein Bauer = Tenor. Pacome, Diener = Tenor. Die vier Töchter des Marquis von Moncontour = Soprane. — Ort: Versailles. Zeit: 1688. Paris 1873.

Der Lieblingspapagei der Frau von Maintenon ist entflogen und der Marquis von Montcontour hat das Glück, ihn einzufangen. Ludwig XIV. vorgestellt, sagt er in der Verwirrung ja, als ihn der König frägt, ob er einen Sohn habe. Er soll ihn bei Hofe vorstellen. Aber was machen? hat er doch nur vier Töchter. Indessen, der König hat es gesagt, also ein Sohn muß geschafft werden. Er greift den aufgeweckten Bauernjungen Benoit auf, adoptiert diesen und derselbe findet sich mit großer Leichtigkeit in seine Rolle, führt viele Streiche aus, lebt als Grandseigneur, zündet das Kloster, in welchem die vier Töchter des Marquis erzogen werden, an und tritt für die Bewerber der jungen Damen ein. Schließlich hat er sogar ein Duell, in welchem er verwundet wird. Das benutzt der Marquis, ihn für tot auszugeben und läßt sich vom König durch Verleihung des Herzogstitels trösten. Benoit lebt aber, hat sich sogar in die Zofe Javotte verliebt und bekommt dieselbe zur Frau.

## Die Kinder der Haide.

Oper in 4 Aten von Rubinstein. Text, nach K. Becks „Janko", von Mosenthal.

Personen: Graf Waldemar, Offizier = Tenor. Konrad, ein deutscher Schenkwirt auf dem Gute des Grafen = Bariton, Marie dessen Tochter = Sopran. Wanja, Roßhirt = Tenor. Isbrane, eine Zigeunerin = Mezzosopran. Grigori, Bogdan und Pawel, Zigeuner = Baß. Lisa, Zigeunerin = Mezzosopran. — Ort: Die Haiden der Ukraine. Zeit: Gegenwart. Wien 1861.

**1. Akt.** Haide. Bogdan und Pawel fassen den Plan, Konrad zu töten und bedrohen Isbrana, die sie belauscht hat, mit dem Tod, wenn sie den Anschlag verraten würde. Isbrana erzählt aber ihrem Geliebten, dem Roßhirten Wanja, dennoch von dem Vorhaben der Zigeuner.

Verwandlung: Vor Konrads Haus in der Haide. Die Zigeuner überfallen das schlecht bewachte Haus, doch auf Wanjas Hornruf stürzen die Umwohner herbei, die Zi-

geuner müssen fliehen, aber das Haus ist in Brand geraten. Wanja rettet Maria aus den Flammen und bleibt auf Bitten Konrads von nun an bei diesem.

**2. Akt.** Halle in Konrads Haus. Maria hat einen Geliebten, der aber in der Ferne weilt; auf Wunsch des Vaters will sie die Frau Wanjas werden. Mit Zigeunern kommt Isbrana, zu ihrem Schmerz durch Spiel und Tanz Wanjas Hochzeit zu feiern. Da naht Graf Waldemar, er ist der Geliebte Marias. Er giebt den Leuten Geld, damit sie sich bezechen können und verspricht Maria, noch in der Nacht Botschaft zu senden.

**3. Akt.** Dieselbe Dekoration. Es graut der Morgen. Grigori bringt einen Brief vom Grafen, den Isbrana durch Bestechung zu lesen bekommt. Aus Erbarmen für Maria liest sie aber Wanja, der den Brief erwischt, aber nicht lesen kann, nur so viel vor, daß Waldemar ihm ein Roß schenken wird, verschweigt jedoch, daß der Graf während seiner Abwesenheit zu Maria kommen wird. So kommt das Stelldichein zu Stande und Maria will dem Grafen folgen, als Wanja zurückkehrt und alles entdeckt; er stürzt wütend auf Waldemar und erschlägt ihn. Leute eilen herbei und wollen Wanja ergreifen, aber Isbrana kommt mit Zigeunern, die Wanja befreien.

**4. Akt.** Zigeunerlager. Wanja weilt als Räuber unter den Zigeunern, weist aber Isbrana zurück, da sein Herz an Maria hängt. Diese wird mit ihrem Vater gefangen; der Roßhirt will sie ziehen lassen, stößt aber auf den Widerspruch der Zigeuner. Als die Nachricht kommt, daß sich Soldaten dem Lager nahen, entflieht die Bande, nur Wanja und Isbrana bleiben zurück. Sie will ihn zur Flucht mit ihr bewegen, er bleibt. Die Soldaten umzingeln die beiden, sie entreißt Wanja den Dolch, ersticht sich und er wird gefangen fortgeführt.

---

## Die Königin von Saba.

Oper in 4 Akten von Karl Goldmark. Text von Mosenthal.

Personen: König Salomo = Bariton. Baal Hanau, Palastaufseher = Bariton. Assad = Tenor. Der Hohepriester = Baß. Sulamith, dessen Tochter = Sopran. Die Königin von Saba = Mezzosopran. Astaroth, ihre Sklavin = Sopran. – Ort: Jerusalem und die Wüste.
Wien 1875.

**1. Akt.** Salomons Palast. Sulamith soll mit dem geliebten Assad vermählt werden und begrüßt diesen, der dem Gaste des Königs Salomo, der Königin von Saba entgegen-

gezogen war. Als Assad vor der Braut zurückweicht, befragt der König seinen Liebling um die Ursache. Der Jüngling hat die Königin von Saba nicht von Angesicht gesehen, denn sie will sich nur vor Salomo entschleiern, wohl aber hat er eine ihrer Gefährtinnen im Bade erblickt, glühende Leidenschaft zu dieser gefaßt und ihre Liebe erworben. — Die Königin von Saba zieht ein und wird festlich empfangen, als sie sich entschleiert, stürzt Assad zusammen, denn es ist seine Geliebte. Doch die Königin weist den Nahenden zurück und erklärt, ihn nicht zu kennen, worüber Assad von Sinnen kommt.

**2. Akt.** Garten. Mondschein. Die Königin liebt Assad und sucht ihn heimlich auf, versichert ihn ihrer Liebe, eilt aber davon, als die Wächter nahen, die den vor Glück trunkenen Assad finden und für geistesabwesend halten.

Verwandlung: Tempel. Während des feierlichen Gottesdienstes opfert Sulamith Tauben, sie soll heute mit Assad vermählt werden. Als aber dieser, von Salomo hereingeführt, die Königin von Saba wieder sieht, stürzt er auf sie zu, abermals von ihr verleugnet. Zur Raserei gebracht, frevelt der Jüngling an dem Allerheiligsten, wird verflucht und dem Gericht übergeben. Als nun die Königin vermitteln will, tritt Salomo, der den Zusammenhang zu begreifen beginnt, dazwischen und führt Assad mit sich fort.

**3. Akt.** Festhalle. Ballet. Salumith fordert Assad von dem König, und als dieser die Bitte verweigert, geht sie unter Drohungen. Salomo tröstet die trauernde Sulamith und prophezeit ihr Glück und Frieden.

**4. Akt.** Wüstensaum. Assad irrt verbannt umher. Die auf dem Heimweg begriffene Königin findet ihn, will ihn abermals verlocken, doch nun flucht er ihr und sie muß ohne ihn von dannen ziehen. Sturm. Dann erscheint dem verzweifelnden Assad die Braut, erfindet ihre Versöhnung und stirbt in ihren Armen.

---

## Der König von Lahore.

Oper in 4 Akten von J. Massenet. Text von L. Gallet.

Personen: Alim, König von Lahore = Tenor. Scindia, sein Minister = Bariton. Timur, ein Priester = Baß. Indra = Baß. Sita = Sopran. Kaled, des Königs Vertrauter = Mezzosopran. — Ort: Indien. Zeit 11. Jahrhundert, während des Einfalls der Mohamedaner. Paris 1877.

Der König von Lahore liebt Sita, die Nichte des Oberpriesters Timur. Sein Nebenbuhler Seindia verrät die

Tempelbesuche eines Liebhabers, wofür Sita den Tod erleiden soll. Der König erklärt nunmehr, daß er selbst es sei, der Sita aufgesucht und will sie zu seiner Gemahlin erheben. — Um diese Zeit fällt der Sultan Mahmud in das Reich ein, in der Schlacht tötet Scindia den König Alim und besteigt dann den Thron. Gott Indra erhört Alims Bitte und läßt ihn noch einmal zur Erde nieder. Sita soll Scindias Weib werden, als Alim in Bettlertracht zu ihr kommt und sich zu erkennen giebt; er wird für wahnsinnig gehalten. Da jedoch Scindia Sita aus dem Tempel holen will, tötet sie sich und Indra vereinigt nach dem Tode das Liebespaar.

**1. Akt.** Vor dem Tempel Indras. Scindia verlangt Sita von Timur zum Weibe und als man sie ihm verweigert, erhebt er seine Anklage. Sita soll verurteilt werden.

Verwandlung: Das Innere des Tempels. Alim erklärt, daß er Sita im Tempel besucht und fordert sie zur Gemahlin. Scindia schwört Rache.

**2. Akt.** Alims Kriegslager. Alim verliert die Schlacht gegen Mahmud und stirbt. Scindia ergreift Besitz vom Thron und führt Sita fort.

**3. Akt.** Indras Paradies. Ballet. Indra gewährt Alim die Bitte, noch einmal als Mensch zu Sita zurückkehren zu dürfen unter der Bedingung, daß Sitas Tod den seinigen nach sich ziehen würde.

**4. Akt.** Vor dem Palast in Lahore. Scindia hat die Mohamedaner geschlagen und will sich nun mit Sita vermählen. Als Alim erscheint und Sita beansprucht, will ihn Scindia als Wahnsinnigen festnehmen lassen, doch die Priester schützen Alim.

Verwandlung: Das Innere des Tempels. Scindia will Sita mit Gewalt rauben, doch sie ergreift Alims Dolch und durchbohrt sich. Nach Indras Spruch stirbt Alim zugleich mit ihr. Apotheose: Alim und Sita vereinigt im Paradiese Indras.

---

## Die Kriegsgefangene.

Oper in 2 Akten von Carl Goldmark. Text von Emil Schlicht.

Personen: Achilles = Bariton. Agamemnon = Baß. Priamus = Baß. Automedon = Tenor. Idäus = Tenor. Thetis = Mezzosopran Brisëis = Sopran. Ort: Griechisches Heerlager vor Troja. Zeit: Gegen Ende des trojanischen Krieges.
Wien 1899.

**1. Akt.** Im Zelte des Achilles. Dieser trauert über den Tod des Patroklus, dessen Urne er selbst im Grabe beisetzt. Nach

der Bestattung schwört er den Feinden Rache und begeistert seine Mannen zum Sieg. Alleingelassen giebt er sich wieder seinem Schmerze hin („Erloschen sein Blick"). Thetis, seine Mutter, erscheint mit Nereiden auf dem Meere, um ihn zu besänftigen. Briseis, von Agamemnon, dem Achilles geschickt, bedeckt Hektors geschändeten Leichnam mit Erde. Von Achilles über den Grund dieser Ehrung befragt, erklärt sie, daß Patroklus Geist sie um seiner Ruhe willen dazu beauftragt habe. Noch ein zweites verlange er von ihr, daß sie noch verschweigen müsse. Von Achilles zur Ruhe geschickt, kehrt sie zurück, um von Aphrodite das Herz des heimlich geliebten Achilles zu erflehen.

**2. Akt.** Dieselbe Dekoration. Achilles, von Visionen geplagt, erhält von Briseis einen lindernden Trank. Er bittet sie um ein Lied, sie singt ihm sein eigenes Leben, dem die Liebe fehlt („Im rauschenden Forst bei Regennacht"). Von Hermes geführt erscheinen Priamus und Idaeus. Priamus versucht mit allen Künsten des Achilles Herz zu rühren, damit er ihm Hektors Leiche überlasse. Aber Achilles wird erst gerührt, als Briseis ihm zuruft: „Nimm von Patroklus die andere Last, er wartet darauf". Priamus dankt Briseis und erhält von Achilles zwölf Tage Waffenstillstand zur Leichenfeier. Briseis, der Achilles die Freiheit geschenkt hat, kommt zum Abschied, weil das Königsschiff ihrer harrt. Da erkennt Achilles, daß er sie liebt. Nach einem großen Liebesduett öffnen die Sklaven das Zelt, die draußen harrenden Krieger rufen „Zur Schlacht! Zum Siege!"

---

## Die Krondiamanten.

Komische Oper in 3 Akten von Auber. Text von Scribe und St. Georges.

Personen: Bazano, Graf von Campo-Major, Minister und Mitglied der Regentschaft = Baß. Diana, seine Tochter = Sopran. Don Enriquez de Sandoval, sein Neffe = Tenor. Don Sebastian d'Aveyro, Offizier = Tenor. Rebolledo, ein Falschmünzer = Baß. Theophila, seine Nichte = Mezzosopran. Munholz und Barbarigo, Falschmünzer = Tenor und Baß. — Ort: Gebirge von Estremadura, Schloß Campo-Majors in Coimbra und königlicher Palast in Lissabon. Zeit: 1777.
Paris 1841.

**1. Akt.** Gebirgsschlucht in Estremadura. Don Enriquez hat sich verirrt, findet jedoch das Abenteuer interessant. Er entdeckt in der Schlucht eine Falschmünzerbande. Die Falschmünzer sehen ihn und wollen ihn töten, werden aber durch die eintreffende Teophila daran verhindert. Sie kennt Don Enriquez, ist sie selbst doch die hier unbekannte Königin von Portugal, welche die Falschmünzer aufgesucht, um zu

Gunsten des Staatsschatzes die echten Diamanten der Krone durch falsche zu ersetzen. — Die Falschmünzer, welche Theophila für ihre Beschützerin halten, gehorchen ihr in allen Stücken. Enriquez sieht die falschen Diamanten, die er für echt hält und glaubt sie geraubt. Da sie von Soldaten bedroht ist, beschließt die Bande, mit Enriquez' Paß die Grenze zu erreichen. Schon zu spät, die Truppen nahen, aber schnell gefaßt, werfen die Falschmünzer auf Teophilas Rat die Diamanten in einen Sarg und machen sich bereit, als Pilger, unter frommen Gesängen an den Soldaten vorbeizuziehen.

**2. Akt.** Schloß zu Coimbra. Während der sechsjährigen Abwesenheit des Don Enriquez hat dessen Freund Don Sebastian mit Enriquez' Braut Diana einen Herzensbund geschlossen. Enriquez ist nun angekommen und trifft im Schlosse mit Theophila zusammen, die mit Rebolledo hier Schutz sucht, da ihr Wagen zerbrochen. — Da kommt die Nachricht aus Lissabon, daß die Krondiamanten gestohlen seien; verdächtig ist eine gewisse Theophila. An der eintreffenden Personalbeschreibung erkennt Diana die Pseudo-Räuberin, Enriquez aber, der Theophila liebt, bestimmt Diana, durch Verzicht auf deren Hand, die Bedrohte zu retten.

**3. Akt.** Im Palast zu Lissabon. Die Personen treffen hier zusammen und es enthüllt sich den Eingeweihten, daß Theophila die Königin ist, welche die echten Krondiamanten verkauft und durch die eingegangenen Summen den Staat vor dem Finanzruin gerettet. Als sie von dem Staatsrat zur Wahl eines Gatten aufgefordert wird, verwirft sie den vorgeschlagenen Infanten von Spanien und wählt den glücklichen Enriquez. Nunmehr ist Dianas Hand frei und sie darf mit ihrem Geliebten Don Sebastian zum Altar treten.

---

## Der Kuß.

Volksoper in 2 Akten von Friedrich Smetana, Text von E. Krasnohorska. Deutsch von Ludwig Hartmann.

Personen: Fedor Zarkow, ein Landmann. Marinka, seine Tochter. Hanno, ein junger Wittwer. Janusch, sein Schwager. Brigitta, eine alte Verwandte Marinkas. Klara, Dienstmädchen bei Zarkow. Steffan, Führer der Schmuggler. Ein Grenzaufseher. Ort: Böhmisches Gebirge nahe der Grenze. Zeit: Gegenwart.

**1. Akt.** Bauernstube bei Zarkow. Brigitta ruft Marinka schnell herein, da Hanno als Brautwerber erschienen sei. Er

hat sie früher um eines reicheren Mädchens willen verlassen, will aber jetzt, wo er Witwer geworden ist, sein Unrecht wieder gut machen. Marinka ist entzückt und läßt sich auch durch die ernsten Warnungen ihres Vaters nicht überzeugen. Alle putzen sich, um Hanno gebührend zu empfangen, Marinka verläßt der Sitte gemäß einstweilen das Zimmer. Janusch wirbt für seinen schüchternen Schwager Hanno (Arie: „Hanno naht als Werber") und da der Vater nichts einzuwenden hat, wenn Marinka einwilligt, gilt die Sache als abgemacht (Arie des Hanno: „Dank sag' ich, Vater, euch"), obwohl der Vater merken läßt, daß er seine Tochter nicht gern hergiebt. Er meint, daß die beiden überhaupt nicht zusammen passen, da sie zu eigensinnig seien (Arie: „Hart ist dein Kopf"). Hanno verspricht das Beste und erklärt, mit seiner Frau nie hadern zu wollen. Marinka wird geholt (Duett: „Für ewig vereint") und das Glück des Brautpaares schlägt alle Bedenken nieder. Aber als Hanno sie küssen will, stößt sie ihn zu aller Erstaunen heftig zurück und beweist, daß ihr Vater recht hat. Hanno muß von allen Seiten Rat annehmen, wie er ihr ihren Eigensinn brechen könne, durch Güte, durch Kälte, Strenge u. s. w. (Ensemble: „Seh' ich ihr ins Herz"). Hanno und Marinka bleiben allein und sind so zärtlich miteinander, als ob nichts geschehen wäre. Sie streut um die Wiege seines Kindes, die Brigitta und Klara hereingebracht haben, weißen Sand, damit man die Spuren der verstorbenen Mutter sehen könne, die Nachts ihr Kind besucht (Arie: „Schon sank die Sonne") und verspricht, dem Kleinen eine treue Mutter zu sein. Nur küssen darf Hanno sie nicht; sie meint, daß die Verstorbene dies erst zulasse, wenn die Hochzeit vorüber wäre. Hanno ist erzürnt (Arie: „So lang' will ich nicht warten") und will sie zwingen, still zu halten, aber es gelingt ihm nicht (Duett: „Nun geh"). Er versucht es mit zärtlicher Ueberredung, als sie aber auch jetzt standhaft bleibt, wird er ernstlich böse und droht, sich eine Andre zu suchen. Der Vater tritt ein, und schilt beide tüchtig aus (Arie: „Wie ich gesagt, so ist's geschehn"); Hanno verläßt zornig das Haus, da er doch nicht zum Ziele kommt. Marinka stellt Betrachtungen an („Wo eilt er hin?") und erinnert sich der vergangenen Zeit; der eintretenden Brigitta gegenüber, die ihr Vorwürfe macht, rechtfertigt sie ihr Verhalten und bleibt trotzig. Brigitta rät ihr, das Haus zu verlassen und sich den Schmugglern anzuschließen (Arie: „So hör' denn einen guten Rat"); Marinka lehnt den Vorschlag ab, setzt sich an die Wiege und singt das Kind in Schlaf („Schlafe mein Kindlein"). Endlich schläft sie selbst ein; Klara kommt erschrocken, denn Hanno naht sich mit Mädchen und Musikanten, um Marinka zu verhöhnen (Spott-

lied: „Spielt keck zum Tanz“). Marinka erwacht und als sie sich der ihr zugefügten Schmach bewußt wird, als Hanno draußen sogar ein anderes Mädchen küßt (Lied: „Ueberall sind hübsche Mädchen“), schnürt sie ihr Bündel und geht zu den Schmugglern (Ensemble: „Schäm' dich, welche tollen Streiche“).

**2. Akt.** Dichter Wald. Steffan, die Büchse in der Hand, späht vorsichtig umher („Leise, aufgepaßt“) und giebt den Schmugglern Anweisungen (Chor: „Frei ist unsre Bahn“). Da erscheint Hanno, der zum vollen Bewußtsein seines Unrechts gekommen ist und Marinka sucht (Arie: „Fragen möcht' ich alle Sterne“). Janusch tritt zu ihm und tröstet ihn, Hanno will vor dem ganzen Dorfe sein Unrecht eingestehen, wenn Marinka nur wiederkommt. Die Schmuggler haben das Gespräch belauscht, sich aber nicht hineingemischt. Sie warten auf Brigitta, die lange ausbleibt; endlich kommt sie mit Marinka, die sehr ängstlich und aufgeregt ist (Arie: „O hör' das Stöhnen“). Die Schmuggler begrüßen sie freundlich und Steffan, der bald merkt, daß Marinka Hanno noch immer liebt, beschließt, den Vermittler zu machen (Terzett: „Ach scheltet meine Thorheit nur“). Den Kuß will sie Hanno aber immer noch verweigern, trotz Brigittas Ermahnungen. Die Frauen, die allein geblieben sind, sollen einen mit Früchten gefüllten Korb, auf dessen Grunde geschmuggelte Waren liegen, beiseite schaffen. Dabei werden sie von einem Grenzaufseher überrascht und die unerfahrene, zitternde Marinka hätte sich bald verraten, wenn Brigitta nicht mit großer Geistesgegenwart eingegriffen hätte. Brigitta sucht das Mädchen von neuem zur Nachgiebigkeit zu veranlassen (Duett: „Rosen und Dornen steh'n immer zusammen“). Marinka schwankt.

Verwandlung. Waldrand mit Brigittas Hütte. Klara kommt eilig gelaufen, um Brigitta zu benachrichtigen, daß Steffans Vermittlung bei Hanno Erfolg gehabt hat (Lied: „Laß dein Lied erschallen!“). Brigitta ist aber nicht zu Hause. Hanno erscheint reumütig mit dem Vater, Steffan und Janusch, um Marinka um Verzeihung zu bitten (Arie des Vaters: „Gut denn, aber eine Predigt“). Endlich erscheint sie mit Brigitta, stürzt in Hannos Arme und will ihn küssen, aber jetzt will er nicht (Ensemble: „Was? auf's Neue willst du“). Doch es ist nicht böse gemeint; er hat nur seine Nachgiebigkeit beweisen wollen und Marinka küßt ihn herzlich (Schlußchor: „Nun erst folgte die Versöhnung“).

## Lakmé.

Oper in 3 Akten von Deslibes. Text von Gondinet und Grille.

Personen: Gerald und Friedrich, Offiziere der englischen Armee in Indien = Tenor u. Bariton. Nilakantha, Brahmane = Baß. Lakmé, seine Tochter = Sopran. Mallika, deren Begleiterin = Alt. Hadji, Diener = Tenor. Ellen u. Rosa, Engländerinnen = Sopran. Miß Bentson, deren Erzieherin = Alt. — Eine englische Besitzung in Indien.
Paris 1883.

**1. Akt.** Indischer Tempel in einem Hain. Mit einer englischen Gesellschaft dringt Gerald in den heiligen Hain, sieht Lakmé und beide fassen Liebe zu einander. Als der Priester Nilakantha naht, entflieht Gerald, der Brahmane aber schwört dem Eindringling Rache.

**2. Akt.** Stadtplatz. Marktgewühl. Bajaderentanz. Lakmé muß auf Befehl des als Bettler verkleideten Nilakantha singen und dadurch Gerald herbeilocken, der so von dem Brahmanen erkannt wird. Lakmé will den Geliebten retten und mit ihm entfliehen. Nilakantha aber trifft Gerald mit dem Dolch und Lakmé, die noch Leben in ihm findet, läßt ihn durch den Diener Hadji forttragen.

**3. Akt.** Wald und Hütte. Lakmé hat Gerald gepflegt, als sie jedoch sieht, daß er ihr nicht in ewiger Liebe angehören kann, trinkt sie Gift, noch im Tode den Geliebten vor Nikakantha's Wut bewahrend.

---

## Landfrieden.

Oper in 3 Akten von T. Brüll. Text von Mosenthal, nach dessen gleichnamigen Schauspiel.

Personen: Maximilian I. = Bariton. Junker Robert, sein Pflegesohn = Tenor. Kunz von der Rosen, sein Hofnarr = Bariton. Ritter v. Bofesen = Baß. Kayaun, dessen Knappe = Tenor. Menzinger, Patrizier von Augsburg = Baß. Katharina, dessen Tochter = Sopran. Brigitte, seine Nichte = Sopran. — Ort: In und um Augsburg. Zeit: 1518.
Wien 1877.

Kaiser Maximilian hat einen Landfrieden verkündet, der von dem Ritter Bofesen gebrochen wird, da er des Kaisers Pflegesohn Robert zu Liebe dessen Geliebte, Katharina Menzinger, aus Augsburg entführt und auf sein Schloß bringt.

**1. Akt.** Augsburg. Menzinger verkündet des Kaisers Landfrieden und will seine Tochter Katharina mit Raimund Fugger vermählen.

Verwandlung: Felsiger Wald. Bofesen raubt Ka-

tharina für Robert und bringt sie auf seine Burg. Der Kaiser befiehlt die Bestrafung des Ritters.

**2. Akt.** Gemach in Befesens Burg. Kunz von der Rosen kommt, um Katharina zu retten, die inzwischen Liebe zu Robert gefaßt hat. Des Kaisers Truppen zerstören die Burg, Bofesen aber und sein Knappe Kapaun entwischen.

**3. Akt.** In Menzingers Haus. Katharina weilt wieder daheim, sehnt sich aber nach Robert. Sie hat die Verlobung mit dem jungen Fugger gelöst, zur Freude ihrer Base Brigitte, die Raimund liebt.

Verwandlung: Saal im Rathaus zu Augsburg. Fest für Kaiser Max. Fackeltanz. Robert gesteht seine Schuld, aber der pfiffige Kunz von der Rosen weiß ihn vor der drohenden Strafe zu retten, da er auf das alte Recht verweist, wonach ein Mädchenräuber frei sein soll, wenn die Geraubte selbst um ihn wirbt. Katharina wirbt und der Kaiser vereinigt die Liebenden.

---

## Das Leben für den Zar.

Oper in 5 Akten von M. J. Glinka. Text von Baron von Rosen.

Personen: Iwan Susanniu, Bauer im Dorfe Domnin = Baß. Antonida, seine Tochter = Sopran. Bogdan Sobinjin, ihr Bräutigam = Tenor. Manja, ein Waisenknabe, von Susannin an Kindesstatt angenommen = Alt. Ein polnischer Heerführer = Bariton. – Ort: Domnin, Moskau und das Polenlager. Zeit: 1613.

Petersburg 1836.

**1. Akt.** Dorf Domnin. Susannin bringt die Nachricht von der Niederlage der Polen und wirbt um Antonida. Sie liebt ihn, will ihm aber nicht eher angehören, bis das Vaterland durch die Wahl eines neuen Zaren beruhigt ist. Die Wahl ist jedoch schon vorüber, der Gutsherr Romanow ist Zar und, so steht der Verbindung nichts mehr im Wege.

**2. Akt.** Polenlager. Fest. Ballet. Auf die Nachricht der Niederlage und der Wahl Romanows zum Zaren, bricht das Heer nach dem Kloster auf, wo Romanow weilt.

**3. Akt.** Susannins Hütte. Die Polen wollen Susannin zwingen, sie zu dem Zaren zu führen. Dieser beschließt aber Romanow zu retten. Sein Pflegesohn Wanja läßt sich scheinbar von den Polen bestechen, den Zaren zu verraten.

**4. Akt.** Platz vor dem Kloster. Wanja hat sein Pferd zu Tode geritten, um den Zaren zu warnen.

Verwandlung: Wald. Der gezwungene Susannin

führt die Polen durch den Schnee. Da sie ahnen, wie er sie irre führt, beschließt er, für den Zaren zu sterben.

**5. Akt.** Platz vor dem Kreml in Moskau. Der Zar zieht in Moskau ein; er und das Volk ehren Antonida, Sobinjin und Wanja, die um Susannin trauern, der sein Leben für den Zaren gelassen.

---

## Der Liebestrank.

Komische Oper in 2 Akten von Donizetti. Text, nach dem Italienischen des Romani, von G. Ott.

Personen: Adina, eine junge reiche Pächterin = Sopran. Nemorino, ein junger Landmann = Tenor. Belcore, Sergeant = Bariton. Dulcamara, ein reisender Quacksalber = Baß. Gianettina, eine Bäuerin = Sopran. Ein Notar. Ein Mohr in Dulcamaras Diensten. – Ort: Ein Dorf in Italien.

Mailand 1832. – Ganz dasselbe Libretto, französisch bearbeitet von Scribe, behandelt die Oper „Le philtre“ von Auber. Paris 1831.

**1. Akt.** Nemorino liebt Adina, welche nicht an Liebestreue glaubt (Chor der Bäuerinnen: „Labung vor der Sonne Gluten“, Cavatine: Nemorinos: „Welche Huld und welche Reize“ und Cavatine Adinas: „Nichts ist so bizarr gewesen“). Auch den Sergeanten Belcore weist Adina zurück, welcher kecker ist, als Nemorino (Cavatine Belcores: „Wie der holde Jüngling Paris“); Nemorino aber vermag Adina nicht zu entsagen (Duett: „Frag' die lauen Lenzenslüfte“). Da kommt der Quacksalber Dulcamara ins Dorf (Cavatine: „So höre und staune, Du Bauervolk“). Er verkauft auch einen Liebestrank, in Wirklichkeit nur eine Flasche Wein, den Nemorino ersteht (Duett: „Nur Mut! Vielleicht erlesen zu meinem Glück“). Der junge Bauer trinkt die Flasche aus und im Rausch behandelt er Adine so kalt, daß sie sich vornimmt, ihn nun gerade zu gewinnen (Duett: Trala, noch kann ich nichts entdecken“). Sie giebt nun scheinbar Belcore ihr Jawort (Terzett: „Rasch muß es vorwärts gehen“) und die Bauern freuen sich auf das Hochzeitsfest.

**2. Akt.** Das Hochzeitsfest wird gefeiert, aber Adina will erst später den Ehevertrag unterzeichnen. Dulcamara singt eine Baccarole: „Holdes Kind, willst Du mich haben, Du bist schön und ich bin reich“. Der verzweifelnde Nemorino läßt sich von Belcore zum Soldaten werben (Duett: „20 Dukaten? In blankem Goldel“). Nun kommen die Mädchen des Dorfes und erzählen sich, daß der reiche Oheim Nemorinos gestorben und diesen zum Erben engesetzt habe (Mädchenchor: „Kann es wohl möglich sein?“). Da sich nun die Mädchen eifrig um ihn bemühen, glaubt er an den Trank, den ihm Dulcamara gegeben (Quartett: Nemorino, Adina,

Dulcamara, Gianettina und Chor: „Die Dosis soll mir frommen"). Dulcamara bietet jetzt Adina ebenfalls seinen Liebestrank an, diese weist denselben aber zurück, obwohl sie Nemorino wirklich liebt, nun aber für sich verloren wähnt (Duett: „Ach wie grausam; so heiße Liebe"). Da hört sie aber Nemorino (Romanze: „Wohl drang aus dem Herzen"), der sie noch immer liebt. Sie kauft seine Freiheit von den Soldaten zurück, daran erkennt Nemorino ihre Liebe, und sie umarmen sich. Belcore macht gute Miene zum bösen Spiel, tritt Adina ab, und Dulcamara, der geschickt den glücklichen Ausgang seinem Liebestrank zuschreibt, macht zu guter Letzt noch ein gutes Geschäft.

## Lili Tsee.

Japanisches Märchen in 1 Akte von Franz Curti, Text von Wolfgang Kirchbach.

Personen: Kiki-Thum, ein Wagenzieher. Lili-Tsee, seine junge Frau Ming-Ming, Buddhapriester. Lady Whirlbottle, eine reisende Engländerin Taime, Lilli-Tsees Freundin. Ein Staatsbeamter. Ort: Japanisches Industriedorf.

Straße, in der zahlreiche Handwerker arbeiten und einen großen Lärm verursachen. Kiki-Tsum singt zur Zither ein Lied zum Preise seiner Frau. („Lili-Tsee, geliebtes Stäubchen"). Sie hört geschmeichelt zu, meint aber kokett, daß er nur heuchele. Um sie zu necken, besingt er darauf ihre Freundin Taime und erregt dadurch ebenso den Zorn seiner Frau, wie das Wohlgefallen der Taime. (Terzett: „Wie? Was sagt er?") Während beide sich noch darüber streiten (Duett: „Daß mich Buddha"), kommt Lady Whirlbottle, die schon einige Zeit zugehört hat, und rät ihnen, in den Spiegel zu sehen, dann würden sie gleich wissen, wer schöner sei. Da niemand einen Spiegel kennt, will sie ihnen den ihrigen zeigen, sucht ihn aber vergebens (Arie: „Ach, wie soll ich nun mich kämmen"). Alle springen auf, um ihn zu suchen. Als sie weg sind, tritt Kiki-Tsum auf (Lied: „Drüben in Europas Fernen"). Plötzlich sieht er den vermißten Spiegel auf der Erde liegen, blickt hinein und glaubt darin seinen Vater zu sehen, wie er ihn in dessen jüngeren Jahren gekannt hat. Er nimmt den Spiegel als vermeintliches Erbstück seines Vaters an sich (Arie: „Schau' ich dich an"), geht in sein Haus und versteckt ihn in einer Blumenvase, dann geht er weiter. Lili-Tsee kommt mit Ming-Ming, der ihr dringende Liebesanträge macht, und ihr, um ihre Bedenken zu zerstreuen, vorlügt, daß ihr Mann sie mit einer anderen betrüge. Kiki-Tsum kehrt zurück, um zu sehen, ob der Spiegel noch da ist; sein heimliches Benehmen vermehrt

den Verdacht seiner Frau, und als der verschlagene Priester mit allerlei Sophismen auf sie einredet, macht sie ihre Einwilligung davon abhängig, daß er ihr den Namen ihrer Nebenbuhlerin nenne. Der Antwort wird er durch die Ankunft Kiki-Tsums überhoben, der in seinem Wagen einen hohen Staatsbeamten zieht und wieder einmal nach seinem Spiegel sehen muß. Beim Anblick des Beamten zieht Ming-Ming es vor, zu verschwinden, und auch Kiki-Tsum, der den Spiegel vorgefunden hat, zieht mit seinem Wagen weiter. Lili-Tsee, dem sein Benehmen immer verdächtiger wird, untersucht die Vase und findet den Spiegel. Als sie hineinsieht, glaubt sie das Bild der Geliebten ihres Mannes zu erblicken und fleht zu den Göttern um Rache (Arie: „O Buddha!"). Ming-Ming kommt wieder herangeschlichen, sie verlangt von neuem den Namen der Nebenbuhlerin zu wissen. Er will ihn ihr in einer verschwiegenen Ecke des Tempels im Buddhahaine nennen (Duett: „Aber heimlich, ganz verstohlen"). Als er gegangen ist, kehrt Kiki-Tsum zurück und wird zu seiner Frau sehr zärtlich; empört wirft sie ihm Treulosigkeit vor und zeigt ihm zum Beweise den Spiegel mit dem Bildnis seiner angeblichen Geliebten (Ensemble: „Sie, ja sie! Du kennst sie doch"). Sie macht ihm eine sehr wenig schmeichelhafte Beschreibung von dem Bilde, das sie gesehen hat, und schildert sich so selbst als eine wahre Vogelscheuche. Er behauptet dagegen, daß das Bild seinen Vater darstelle, und will den Spiegel einstecken; unter dem Beifall der Menge nimmt sie ihn ihm weg. Der hinzukommenden Lady klagt sie ihre Not; diese ist erfreut, ihren Spiegel wieder zu haben. Ming-Ming soll vor allen Leuten bestätigen, daß darin das Bild von Kiki-Tsum zu sehen ist, kann aber, als er hineinsieht, nur einen frommen Priester erblicken und will ihn im Tempel aufhängen. Die Lady fordert ihr Eigentum zurück und läßt mehrere Leute zu gleicher Zeit hineinsehen, wobei natürlich einer die anderen wiedererkennt (Quartett: „Alle beide sind sie das"). Lili-Tsee durchschaut Ming-Mings Heuchelei; er sucht sich herauszureden, muß aber unter Spott und Schimpf das Weite suchen.

## Linda von Chamounix.

Oper in 3 Akten von Donizetti. Text, nach dem Italienischen des Rossi, von Proch.

Personen: Der Marquis von Boisfleury = Bariton. Arthur v. Sirval, sein Neffe = Tenor. Der Pfarrer = Baß. Anton, ein Pächter = Baß. Marta, seine Frau = Mezzosopran. Linda, beider Tochter = Sopran. Pierotto, ein armer Savoyarde = Alt. Der Verwalter des Marquis = Tenor. — Ort Chamounix und Paris. Zeit: 1760. Wien 1842.

**1. Akt.** Antons Pachthof in Chamounix. Der heutige Tag soll das Schicksal von Antons Familie entscheiden. Der

Marquis kommt und thut sehr gnädig, verlangt auch Linda zu sehen und verspricht Anton, daß er die Pacht behalten solle. — Linda kommt; sie liebt einen jungen Mann, Arthur, der ihr als einfacher Maler genaht ist. Savoyarden treten zu ihr; sie ziehen fort, wollen aber vorher noch einmal der Heimat Freuden genießen. Pierotto ist unter ihnen und singt auf ihr Verlangen ein Lied: „Von der Mutter mußte scheiden, eine Tochter engelrein". Als die Savoyarden den Platz verlassen, kommt Arthur zu Linda (Duett: „Als ich, Teure, Dich erblickte"). — Der würdige Pfarrer sucht den Pächter Anton auf und warnt ihn vor der Gnade des Marquis, denn dieser wolle Linda verführen, es bleibt nichts übrig, als das Mädchen mit den andern Savoyarden nach Paris zu schicken. Trotzdem es den Eltern schwer fällt, sich von der einzigen Tochter zu trennen, sehen sie doch ein, daß dies der beste Weg ist, Linda vor dem mächtigen Marquis zu schützen. Mit einem allgemeinen Gebet schließt der Akt.

**2. Akt.** Lindas vornehmes Zimmer in Paris. Seit drei Monaten hat Linda keine Nachricht von den Eltern, da hört sie Pierottos Gesang auf der Straße und ruft ihn freudig herauf. Mit Erstaunen erkennt er in der vornehmen Dame Linda. Arthur, mit dem sie die Ehe für bevorstehend hält, hat sie mit reichlichen Mitteln versehen, denn nun weiß sie auch, daß es kein Maler, sondern der Sohn der Gräfin von Sirval ist. Nachdem Pierotto sie verlassen, kommt plötzlich der Marquis zu ihr; er bietet ihr ein luxuriöses Leben, wenn sie seine Geliebte sein will. Mit Abscheu weist Linda ihn zurück und ist in Furcht, daß Arthur den Frechen bei ihr finden könnte. Als Arthur aber später kommt, hört sie zu ihrem Schrecken, daß seine Mutter ihn zwingen will, eine andere Ehe einzugehen. In ihrer Verwirrung empfängt sie einen Bettler, an dem sie nicht sogleich ihren Vater erkennt, dann aber reich beschenkt. Als Anton seine Tochter so vornehm vor sich sieht, hält er sie für eine Dirne, wirft das Geld zu ihren Füßen und verflucht Linda. Als hierzu noch Pierotto die Nachricht bringt, daß im Hotel der Gräfin Sirval Arthurs Hochzeit gefeiert werde, wird sie wahnsinnig.

**3. Akt.** Platz in Chamounix. Die Savoyarden kehren in die Heimat zurück, sowohl von den Landleuten, als auch vom Marquis freundlich empfangen. — Einsam hinterher kommt die wahnsinnige Linda, von dem treuen Pierotto geführt. Arthur, der glücklich noch alle Hindernisse überwunden, bringt den Eltern der Geliebten das Eigentumsrecht des Pachthofes und findet Linda in dem traurigen Zustand. Sie erkennt ihn nicht, bis er sie an ihre Liebe erinnert; da

sinkt sie zusammen, und als sie erwacht, ist sie gerettet; selig schließen die Eltern und Arthur Linda in ihre Arme.

## Lobetanz.

Singspiel in 3 Aufzügen von Ludwig Thuille, Dichtung von Otto Julius Bierbaum.

Personen: Lobetanz = Tenor. Die Prinzessin = Mezzosopran. Der König = Baß. Der Förster = Sprechrolle. Der Henker = Sprechrolle. Der Richter = Sprechrolle. Ort: Deutschland. Zeit: Mittelalter.

**1. Akt.** Blühender Frühlingsgarten. Eine Anzahl junger Mädchen streuen Rosen und singen ein Tanzlied („Es ist ein Reihen geschlungen"). Lobetanz, ein fahrender Spielmann, erscheint auf der Mauer und hört ihnen zu, dann springt er keck in den Garten und mischt sich unter die lachenden und ihn neckenden Mädchen. Er erfährt von ihnen, daß heute „Singetag" ist, und da er meint, daß er mit seiner Geige und seinem zerrissenen Anzuge dabei nichts tauge, will er weiterziehen. Aber die Mädchen halten ihn zurück und erzählen ihm, (Lied: „Im Schloß, wo unser König wohnt") daß die schöne junge Prinzessin ganz plötzlich erkrankt wäre; kein Arzt könne ihr helfen, und nun sei der Singetag veranstaltet worden, da der König hoffe, sein Kind werde durch ein neues und unerhörtes Gedicht geheilt werden. Alle Dichter des Landes seien seit Wochen damit beschäftigt, neue Weisen zu ersinnen; er möge doch bleiben und sich die Sache mit anhören, sie wollten die Löcher seines Kleides mit Rosen verdecken. Während dies geschieht, naht sich der Zug, im Mittelpunkt der König mit der bleichen Prinzessin, in ihrem Gefolge u. a. die Dichter mit ihren Harfen. Auf des Königs Geheiß begrüßt seine Tochter die Erschienenen, („An allen Zweigen das reine Weiß") dann soll der Wettgesang beginnen. Aber jeder Dichter will der erste sein, und darüber entsteht ein lauter Streit, als plötzlich aus der Laube, in der Lobetanz sich versteckt hat, eine zarte Geigenmelodie ertönt. Alle, auch die Prinzessin, horchen hoch auf, und Lobetanz muß hervorkommen. Die Prinzessin verlangt trotz des Widerspruchs der Dichter, daß er singen solle, und sein Lied („Soll ich singen zu dir?") ergreift sie so, daß sie schließlich wie tot zurückfällt. Allgemeiner Aufruhr; Lobetanz soll als Zauberer gerichtet werden, entflieht aber; die Prinzessin kommt langsam wieder zu sich.

**2. Akt.** Waldwiese. Lobetanz hat den alten Förster aufgesucht und sich durch seinen Gesang („Lenz, deine Wunder sind tief") dessen Wohlwollen erworben. In der Linde, in deren Geäst sich die Prinzessin einen Sitz hat bauen lassen, träumt er von seinem Abenteuer und erzählt dem Alten, daß

ein Rabe ihm seine Kappe, die er nach ihm geworfen hatte, entführt habe. Der Alte meint bedenklich, er sei nach der Richtung des Galgens hin geflogen und geht dann dem Waidwerke nach. Lobetanz lacht und träumt dann weiter. Er gedenkt seiner Mutter, (Lied: „Will mein Junge Aepfel haben") und der Prinzessin („Blau wie das Wasser im See"), da naht sich die Königstochter ganz allein, ebenfalls in Erinnerungen an Lobetanz verloren. Beider Herzen finden sich rasch (Duett: „Die Welt versinkt uns weltenweit"), die Prinzessin ist wieder frisch und gesund und lacht vergnügt über sein lustiges Lied: „Sitz' im Sattel, reite!" Ihr Liebesspiel wird jäh durch den König unterbrochen, der sie mit seinem Jagdgefolge überrascht und Lobetanz gefesselt fortführen läßt. Er soll als Zauberer sterben; die Prinzessin ist wieder in ihren früheren krankhaften Zustand verfallen.

**3. Akt.** Kerker. Auf Pritschen liegen gefesselte Gefangene, darunter zwei zerlumpte Weiber; Lobetanz, die Geige auf dem Rücken, sieht gedankenvoll vor sich nieder. Er wird verhöhnt, daß er seine Augen zu einer Prinzessin erhoben habe, (Lied: „Bist ein junger Geselle"), da erhebt er sich und will ihnen auch ein Lied zum besten geben, ein lustiges Lied vom Tode, das ein Zecher singt, der merkt, daß er sterben muß. Und nun singt er die grausige Ballade „Stell' die Uhr ab, Freund Hein"; die Gefangenen stimmen in den Kehrreim mit ein und begleiten schließlich mit den Weibern den Inhalt pantomimisch. Ein alter Gefangener mit einem Kopfe, der einem Todtenschädel gleicht, erhebt sich endlich auch und stellt den „Freund Hein" dar.. Der plötzlich eintretende Henker macht dem schrecklichen Auftritte ein Ende und führt Lobetanz unter dem gurgelnden „Turulu" des Alten zum Richtplatze.

Verwandlung. Ein Hügel mit dem Galgen. Das Volk läuft von allen Seiten beim Morgengrauen zusammen; ein junger Bursch singt das Lied: „Noch ehe die Sonne den Nebel hob". Der Zug des Henkers nähert sich, und der Richter verkündet Lobetanz, daß er wegen der an der Prinzessin verübten Zauberei sterben müsse; sein Blut solle den Zauber lösen. Zu diesem Zwecke wird die Bahre, auf der die Prinzessin regungslos liegt, herbeigebracht, und Lobetanz soll sein letztes Wort sprechen. Auf seine und des ihm wohlwollenden Volkes Fürbitte wird ihm gestattet, noch einmal auf seiner Geige zu spielen. Schon beim ersten Tone röten sich die Wangen der Prinzessin, und der König erklärt, Lobetanz solle ihm ein lieber Sohn sein, wenn er sie gesund mache. Bei den Klängen des Liedes: „Weißt du es noch, wie die Vögel uns sangen" richtet sich die Kranke allmählig auf und blickt Lobetanz beseligt an. Als er nun ein Tanzlied anstimmt („Blütenblätter jagt der Wind"), läßt sich

das Volk nicht mehr halten — alle, selbst der Henker und der Richter, schließlich auch der König und seine Tochter, beginnen einen fröhlichen Reigen. Da läßt der Rabe die gestohlene Kappe mitten auf den Galgen fallen, und unter allgemeinem Jauchzen daß dies eine Hochzeit bedeute, fällt der Vorhang.

## Lohengrin.

Romantische Oper in 3 Akten von R. Wagner, Text vom Komponisten.

Personen: Heinrich I., deutscher König = Baß. Lohengrin = Tenor. Elsa von Brabant = Sopran. Friedrich Telramund, brabantischer Edler = Bariton. Ortrud, seine Gemahlin = Mezzosopran. Der Heerrufer des Königs = Bariton. – Ort: An der Schelde. Zeit: 10. Jahrhundert.
Weimar 1850.

**1. Akt.** König Heinrich fordert die deutschen Stämme zum Heerzug gegen die Ungarn auf und weilt jetzt zu diesem Zweck auch in Brabant. Für den unmündigen Herzog Gottfried, Elsas Bruder, regiert Graf Telramund. Gottfried ist indessen seit einiger Zeit verschwunden und angereizt durch seine Gemahlin Ortrud, klagt Telramund vor dem König Elsa als Brudermörderin an. Er selbst beansprucht das Herzogtum. Elsa erscheint, vom Heerrufer zum Gericht gerufen, mit ihren Frauen. Unschuldig, wie sie ist, erklärt sie sich einem Gottesurteil zu unterwerfen und wählt für sich als Ritter eine Traumgestalt (Erzählung: „Einsam, in trüben Tagen"). In Verzückung sinkt Elsa in die Knie und bittet Gott, daß er diesen Streiter senden möge. Da Telramund auf des Königs Geheiß den Gottekskampf annimmt, ruft der Heerrufer zum Streit. Einmal hat er schon vergeblich gerufen, da, als er zum zweitenmale ruft, zeigt sich ein Wunder, das alle in Erregung versetzt. Die Schelde herauf kommt ein Boot, von einem Schwan gezogen, und darin ein Ritter in glänzender Rüstung. Es ist Lohengrin, den Elsa im Traum gesehen; er steigt ans Land, schickt den Schwan in die Flut zurück, begrüßt ehrerbietig den König und fragt Elsa, ob sie ihn zum Streiter will. Selig sinkt Elsa vor ihm in die Knie und giebt ihre Ehre in seine Hand. Er stellt aber eine Bedingung, nie soll sie ihn befragen, wer er sei und woher er komme. Elsa sagt das zu, und nachdem die Kampfrichter den Kampfplatz feierlich abgesteckt und das Gebet gethan ist, besiegt Lohengrin den Grafen Telramund nach kurzem Streit; der Sieger schenkt dem Besiegten das Leben und ergreift Elsas Hand, ihre Unschuld darthuend.

**2. Akt.** Burghof mit dem Münster. Es ist Nacht. Die Geächteten Telramund und Ortrud nahen sich in Knechtestracht. Ortrud sucht den vernichteten Gatten aufzurichten.

Sie ist eine Heidin, Tochter Radbods des Friesenfürsten und zauberkundig. Ihr Streben geht danach, Elsa zu bewegen, die verbotene Frage an Lohengrin zu thun oder diesen selbst zu vernichten, denn sie weiß, daß er verloren ist, wenn es gelingt, ihm ein, wenn auch noch so kleines Glied zu rauben. Als Elsa auf dem Balkon ihres Frauengemaches in der Morgendämmerung erscheint, erweckt Ortrud ihr Mitleid und wird von ihr aufgenommen. Telramund zieht sich zurück. Mit dem anbrechenden Morgen beginnt reges Leben auf der Burg, und den sich versammelnden Mannen verkündet der Heerrufer, daß Elsas Streiter vom König zum Herzog von Brabant ernannt sei, welchen Titel Lohengrin zwar zurückweist, indem er sich nur Schützer von Brabant nennen will. — Als sich der König mit Lohengrin, Elsa und dem Gefolge ins Münster begeben will, tritt Ortrud, nunmehr wieder in prächtigem Gewande, vor und erklärt Lohengrin für einen Zauberer, dessen Name Elsa selbst nicht wisse; auch Telramund erscheint, klagt wegen Gottestrug und verlangt den Namen seines Gegners zu wissen. — Lohengrin weist alle zurück, nur eine habe das Recht, nach seiner Herkunft zu forschen — Elsa — wenn sie frage, müsse er Antwort geben. Elsa aber vertraut ihm und betritt mit ihm und dem König die Kirche.

**3. Akt.** Brautgemach. Mit einem Brautlied werden die vermählten Elsa und Lohengrin hereingeführt. Allein, geben sie sich heißem Liebeszauber hin, aber Ortruds Worte sitzen in Elsas Herzen und sie thut die verhängnisvolle Frage, trotz Lohengrins nochmaliger liebevoller Warnung. — Telramund stürzt herein, um Lohengrins Macht durch eine Verwundung zu brechen, dieser aber tötet den heimtückischen Gegner, wendet sich dann trauernd zu Elsa und fordert sie auf, ihm zum König zu folgen, dort werde er Antwort geben.

Verwandlung: Am Ufer der Schelde, wie im 1. Akt. Im Morgendämmern ziehen die Mannen auf, die dem König zum Heere folgen wollen. Da bringt man Telramunds Leiche und Lohengrin rechtfertigt seine That. Aber noch eines bleibt ihm zu thun übrig, hier vor dem König und allem Volk Elsa auf ihre Frage Rede und Antwort zu stehen. Nun giebt er sich in der Erzählung vom heiligen Grahl als Grahlsritter Lohengrin, Sohn des Königs Parcival zu erkennen. Damit ist aber auch die Frist um, die ihm vom Grahlskönig gewährt, um Elsas Unschuld darzuthun. Trauernd nimmt er Abschied von der geliebten Elsa, denn schon naht der Schwan mit dem Boot, das ihn fortführen soll; im innigen Gebet wendet er sich an Gott, Elsa ihren natürlichen Beschützer zurückzugeben und siehe — der Schwan taucht in die Flut und verwandelt sich in Gottfried,

Elsas Bruder, der durch Ortruds Zauber in die Gestalt des Schwans gebannt war. Eine Taube fliegt vom Himmel herab und von ihr gezogen fährt Lohengrin zurück zum Grahl.

---

## Lucia von Lammermoor.

Oper in 3 Akten von Donizetti. Text, nach W. Scotts Roman „Die Braut von Lammermoor", von S. Kammerano.

Personen: Lord Henry Asthon = Bariton. Lucia v. Lammermoor, seine Schwester = Sopran. Edgar von Ravenswood = Tenor. Lord Arthur Bucklaw = Tenor. Raimund = Baß. Gilbert = Tenor. Alisa, Luciens Vertraute = Sopran. – Ort: Schottland. Zeit 1700.
Neapel 1835.

Edgar und Lucia lieben sich, obwohl ihre Häuser einander feindlich gegenüberstehen. Als Lucias Bruder Henry Asthon, das Haupt der Familie, dies erfährt, versucht er diese Liebe zu ertöten. Durch ein falsches Schreiben sucht er Lucia von der Untreue ihres Geliebten zu überzeugen und macht ihr zugleich die Mitteilung, daß ihr Haus nur durch ihre Vermählung mit Lord Arthur vom Untergang gerettet werden könnte. Lucia weicht zwar dem Zwang, als aber Edgar nach längerer Abwesenheit zu ihr zurückkehrt und sie wegen ihrer Untreue verflucht, den Ring der Treue von ihrem Finger reißt und zertritt, wird sie wahnsinnig, tötet Arthur im Brautgemach und stirbt in Raserei. Als Edgar den Tod Lucias vernimmt, tötet er sich auf dem Kirchhof, wo er Henry Asthon zum Zweikampf erwartet.

**1. Akt.** Hain bei einem schottischen Schlosse. Asthon entdeckt, die Liebe Lucias zu Edgar und erklärt, daß nur Arthurs Hilfe sein Haus retten kann (Arie Lucias: „Hier im Hain, an heil'ger Quelle"). Sie erwartet Edgar (Duett: „Verzeih', Lucia, daß ich zu dieser Stunde"). Er sagt ihr, daß er einige Zeit fern sein würde. Sie nehmen Abschied.

**2. Akt.** Zimmer im Schloß. Asthon bereitet die Vermählung Lucias mit Arthur vor (Duett: „O teure Schwester, komme näher"). Raimund, Lucias Lehrer und Vertreter, bewegt sie, dem Bruder zu folgen (Arie: „Laß, o Himmel, sie mich bewegen"). Die Verlobung soll stattfinden, als Edgar hereinstürzt, zwar der Uebermacht weichen muß, aber Lucia verflucht.

**3. Akt.** Saal im Schloß Edgars. Asthon und Edgar bereden einen Zweikampf.

Verwandlung: Saal im Schlosse Asthons. Die Hochzeit soll gefeiert werden, da verkündet Raimund, daß

Lucia ihren Bräutigam ermordet habe. Lucia kommt, sie ist wahnsinnig (Arie: „Süße Tönel ich vernahm seine Stimme“).

Verwandlung: Kirchhof. Edgar erwartet den Feind (Arie: „Grabesstätte meiner Ahnen“). Da vernimmt er die Kunde, daß Lucia wahnsinnig und sterbend sei und nur noch nach ihm verlange. Die Sterbeglocke ertönt, Lucia ist tot. Edgar folgt ihrem Verlangen und ersticht sich.

## Lucrezia Borgia.

Oper in 3 Akten von Donizetti. Text, nach Victor Hugos gleichnamigem Schauspiel, von F. Romani.

Personen: Don Alfonso, Herzog von Ferrara = Bariton. Lucrezia Borgia, seine Gemahlin = Sopran. Gennaro = Tenor. Orsino = Alt. Liweretto = Tenor. Petrucci = Baß. Vitelozzo = Baß. Gazella = Tenor. Junge venetianische Edelleute im Gefolge des Gesandten in Ferrara. Rustighello, Diener des Herzogs = Tenor. Gubetta, Diener der Herzogin = Baß. — Ort: Venedig und Ferrara. Zeit: 16. Jahrhundert.
Mailand 1833.

Gennaro ist, ohne es zu wissen, Lucrezias Sohn, dessen Existenz auch dem Herzog von Ferrara ein Geheimnis ist. Lucrezia hat das Verlangen, ihren Sohn zu sehen, und sie sucht diesen in Venedig auf. Gennaros Freunde sagen aber diesem, daß die ihm Unbekannte die Verbrecherin Lucrezia Borgia sei, und er wendet sich mit Abscheu von ihr. Als er kurz darauf mit seinen Freunden in Ferrara weilt, beleidigt er den Herzog, indem er das Wappen seiner Gemahlin Lucrezia beschimpft. Der Herzog hatte Lucrezias Zusammenkunft mit Gennaro in Venedig belauscht, hält diesen für einen Liebhaber seiner Gattin und läßt ihn durch einen Becher Wein vergiften. Lucrezia rettet den Sohn durch Gegengift. Als die Fürstin Negroni seinen Freunden ein Gastmahl giebt, folgt Gennaro, der nicht geladen, ihren Bitten und nimmt daran teil. Lucrezia, die sich an den Venetianern rächen will, hat dies Mahl veranstaltet, an dem vergifteter Wein geschenkt wird. Nachdem die Freunde den tötlichen Trank genommen, erscheint Lucrezia, um sich an ihrer Rache zu weiden, und sieht zu ihrem Schreck auch Gennaro anwesend. Sie will ihm wieder Gegengift geben, als dies aber nicht reicht, um alle zu retten, verschmäht es auch Gennaro und stirbt, nachdem er mit Schaudern erfahren, daß Lucrezia seine Mutter ist.

**1. Akt.** Platz in Venedig und offene Halle. Die Freunde preisen Venedig und sprechen von ihrer Reise nach Ferrara im Gefolge des Gesandten. Orsino warnt vor den Borgias („Einsam nach jener wilden Schlacht“). Die Freunde

entfernen sich, Gennaro schläft ein, Lucrezia tritt zu ihm (Romanze: „Sanft ist sein Schlummer"). Alfonso belauscht sie; Gennaro erwacht (Duett: „Ha, was seh' ich?"); die Freunde kommen, nennen Gennaro den Namen Lucrezias und werfen dieser ihre Verbrechen vor.

**2. Akt.** Vor dem Palast in Ferrara. Alfonso hat unter den Venetianern Gennaro gesehen und brütet Rache (Cavatine: „Freudig der Rache Wonne"). Die Freunde treten auf, sie erzählen von der Einladung zur Fürstin Negroni und Gennaro schändet das Wappen der Borgias, worauf er verhaftet wird.

Verwandlung: Lucrezia weiß nicht, wer der Thäter war, und verlangt für die Schmähung Strafe. Zu ihrem Entsetzen erkennt sie in dem Verhafteten Gennaro. Sie fleht Alfonso um Gnade für ihn, er aber stellt ihr die Wahl, ihn durch Gift oder durch das Schwert töten zu lassen. Lucrezia füllt den Giftbecher für den Sohn; höhnisch schenkt der Herzog dem Verhafteten jetzt die Freiheit, als er aber gegangen, rettet Lucrezia Gennaro durch Gegengift.

**3. Akt.** Straße. Gennaro will Ferrara verlassen, folgt aber dann den Freunden zum Gastmahl der Fürstin Negroni (Duett zwischen Orsino und Gennaro: „Hör' mich, dann, Orsino, entscheide").

Verwandlung: Saal bei der Fürstin. Gastmahl (Trinklied Orsinos: „Um stets heiter und glücklich zu leben"). Da verlöschen die Kerzen, Sterbegesänge erschallen und Lucrezia erscheint, um ihnen zu sagen, daß sie Gift getrunken. Fünf Opfer sollen ihrer Rache fallen; da tritt Gennaro vor, er ist der Sechste. Als er hört, daß ihr Mittel nicht reiche, um alle zu retten, weist auch er es zurück. Er will sie ermorden, aber sie ruft, daß er ein Borgia ist und ihr Sohn. Noch einmal fleht sie ihn an, das Gegengift zu nehmen, als er aber die Todesrufe der Freunde hört, stürzt er zusammen.

---

## Die lustigen Weiber von Windsor.

Komische Oper in 3 Akten von Otto Nicolai. Text, nach Shakespeares gleichnamigen Lustspiel, von Mosenthal.

Personen: Sir John Falstaff = Baß. Herr Fluth = Bariton. Frau Fluth = Sopran. Herr Reich = Bariton. Frau Reich = Mezzosopran. Anna, deren Tochter = Sopran. Fenton = Tenor. Junker Spärlich = Tenor. Dr. Cajus = Baß. – Ort: Windsor. Zeit: 17. Jahrhundert.
Berlin 1849.

**1. Akt.** Ein Hofraum mit den Häusern Fluths und Reichs. Sowohl Frau Fluth, die aus ihrem Hause kommt,

als auch die dazutretende Frau Reich haben von Falstaff Liebesbriefe erhalten, deren gleichlautenden Inhalt die Frauen austauschen (Duett: „Nein, das ist wirklich doch zu keck"). Sie beschließen Rache. — Fluth und Reich kommen mit Dr. Cajus und Spärlich. Der letztere, vermögend, aber unsäglich albern, soll Anna Reichs Gatte werden. Auch Cajus wirbt um sie. Annas Erwählter jedoch ist der junge Fenton, der, als er um die Geliebte wirbt, vom Vater zurückgewiesen wird (Duett: „Wenn Eure Seele je empfunden").

Verwandlung: Zimmer bei Fluth: Frau Fluth bereitet sich vor, Falstaff zu empfangen, indem sie eine Szene spielt, wobei der Lehnstuhl den dicken Schlemmer vorstellen muß (Arie: „Frohsinn und Laune würzen das Leben"). Frau Reich kommt, und nachdem diese sich versteckt, empfängt Frau Fluth Falstaff. Mitten in die Szene hinein platzt verabredetermaßen Frau Reich und meldet Herrn Fluth mit seinen Freunden. Falstaff läuft ängstlich hinter den Wandschirm, wird dann von den Frauen in den Waschkorb gesteckt, mit alter Wäsche zugedeckt und entkommt so dem wütenden Gatten, der ihn sucht, seiner Frau eine Szene macht, aber nichts findet.

**2. Akt.** Im Wirthaus zum Hosenband. Falstaff erhält von Frau Fluth ein Einladung zum Stelldichein und vergißt darüber das, was er im Korb ausgestanden. Vergnügt trinkt er mehrere Gäste unter den Tisch und empfängt dann den ihm unbekannten Herrn Fluth, der sich als Herr Bach bei ihm einführt, ihm Geld giebt und auffordert, bei Frau Fluth für ihn zu werben. Falstaff geht darauf ein und sagt seinem Gast, daß er ein Stelldichein, das ihm Frau Fluth gewährt, dazu benützen würde (Duett: „Wie freu ich mich, wie freu ich mich, wie treibt mich das Verlangen").

Verwandlung: Garten bei Reich. Fenton verscheucht Dr. Cajus und Spärlich und sieht Anna, die ihm Liebe schwört.

Verwandlung: Zimmer bei Fluth, wie vorher. Falstaff wird abermals von Fluth überrascht und entwischt in ein Nebenzimmer, wo Frau Reich ihn in Weiberkleider steckt. Fluth kommt und macht seiner Frau eine Szene, da er sie für untreu hält. Glücklich, aber arg zerschlagen, entwischt Falstaff, da man ihn für die verhaßte alte Wahrsagerin hält, während Fluth mit seinen Freunden ihn im Hause sucht.

**3. Akt.** Zimmer bei Reich. Die Frauen haben ihren Männern ihre Streiche erzählt und versöhnt beschließen alle noch einen gemeinsamen Scherz mit Falstaff zu treiben. Bei dieser Gelegenheit will Reich auch seine Tochter Anna mit

Spärlich verloben, Frau Reich dasselbe mit Dr. Cajus thun, während Anna einen Plan faßt, ihren geliebten Fenton zu gewinnen (Arie: „So schweb' ich Dir, Geliebter, zu").

Verwandlung: Wald bei Hernes Eiche. Falstaff wird als Jäger Herne von verkleideten Elfen und Geistern arg geplagt, bis man ihm gesteht, wie er von allen geprellt ist. Diese Zeit benützen Fenton und Anna, sich heimlich trauen zu lassen, und Dr. Cajus wie auch Junker Spärlich gehen leer aus.

## Die Magd als Herrin.

(La serva Patrona.)

Komische Oper in 2 Akten von G. Pergolesi. Text von J. A. Nelli.

Personen: Pandolfo = Bariton. Serpina = Sopran. Scapin = stumm. Neapel 1731 und Paris 1752 in italienischer, Paris 1754 in französischer Sprache (La servante maîtresse). — Dieses Werk ist die erste eigentliche komische Oper (Opera buffa). Nur zwei Personen singen darin.

Der Junggeselle wirtschaftet mit Serpina, denkt aber nicht ans Heiraten. Da fängt ihn Serpina auf echt weibliche Weise mit der Eifersucht. Der Diener Scapino muß sich als Kapitän anziehen, und als Pandolfo glaubt, der Kapitän will ihm Serpina wegfischen, heiratet er sie selbst, wodurch die Magd zur Herrin geworden ist.

## Die Makkabäer.

Oper in 3 Akten von A. Rubinstein. Text, nach dem gleichnamigen Schauspiel von Otto Ludwig, von Mosenthal.

Personen: Antiochus, König von Syrien = Baß. Kleopatra, seine Tochter = Sopran. Georgias, Feldhauptmann = Bariton. Leah = Alt. Judah = Bariton. Eleazar = Tenor. Joarim = Mezzosopran. Benjamin = Sopran, deren Söhne. Noëmi, Judahs Gattin = Sopran. Boas, deren Vater = Baß. Jojakim, ein Priester = Baß. Simei = Bariton. Amri = Tenor. — Ort: Die Gebirgsstadt Modin, in und um Jerusalem. Zeit; 160 v. Chr.

Berlin 1875.

**1. Akt.** In Modin, vor Leahs Haus. Eleazar ist mißgestimmt aus Neid über seinen Bruder Judah, dem löwenkühnen Helden. Leah liebt Eleazar am meisten von ihren Söhnen und tröstet ihn mit der Aussicht auf das Hohepriesteramt, durch das er auch die Krone erringen könne. Judah ist ihr entfremdet, weil er Noëmi zum Weibe nahm, die einem ihr verhaßten Stamm entsprossen. Als

Juda jedoch Noëmi zu ihr führt, giebt sie dennoch, wenn auch halb widerwillig, ihren Segen. — Auf die Kunde vom Tode des Hohenpriesters wird Eleazar für dieses Amt erwählt, aber während er nach Jerusalem ziehen will, erschallt die Kunde vom Nahen der feindlichen Syrer. Diese kommen unter Führung des Georgias und stellen das Standbild des Pallas auf, zu der die Juden beten sollen. Entrüstet tötet Judah den Boas, den Vater seines Weibes, weil er zur Anbetung des Götzen bereit ist, stürzt das Standbild der Pallas um und reißt durch seinen Mut die Juden soweit hin, daß die Syrer entfliehen müssen.

**2. Akt.** Thal bei Emmaus. Mitten im Siege gegen die Syrer muß Judah die Waffen ruhen lassen, weil der Priester Jojakim wegen des anbrechenden Sabbaths zur Ruhe auffordert. Umsonst will Judah ein Unheil abwenden und den sichern Sieg nicht aus den Händen geben. Die Juden hören auf den Priester und als die Syrer vorrücken, lassen sie sich willenlos töten. Mit Mühe entkommt Judah.

Verwandlung: Kleopatras Gemach. Der feige Eleazar hat den griechischen Namen Phaon angenommen und aus sinnlicher Glut für Kleopatra betet er zu den Heidengöttern.

Verwandlung: In Modin. Leahs Anhänger haben einen Sieg erfochten, doch lähmend wirkt die Nachricht vom Untergange des Heeres Judahs. Neu gestärkt ziehen die Sieger heran und ihr Führer Phaon ist Leahs Sohn Eleazar. Wütend wendet sich das Volk gegen die sonst gepriesene Leah, die an einen Baum gefesselt wird, während man ihre jüngeren Söhne Joarim und Benjamin dem Feind als Geiseln sendet. Von Noëmi befreit, eilt Leah mit dieser den Söhnen nach.

**3. Akt.** Judah begeistert das Volk in Jerusalem, und als Noëmi ihm die Nachricht von dem Vorgefallenen bringt, bricht er eilends mit seinem neuen Heer gegen die Syrer auf.

Verwandlung: Zelt des Königs Antiochus. Träume und trübe Nachrichten umdüstern das Gemüt des Königs. Als Leah kommt, ihre Söhne zu erflehen, läßt Antiochus sie auffordern, zu seinen Göttern zu beten, sonst müßten sie den Tod im glühenden Ofen sterben. Da stellt sich auch Eleazar auf die Seite der Brüder, die Jehova nicht verleugnen wollen, und der König läßt alle drei den Martertod vor den Augen der Mutter sterben. Während Antiochus wahnsinnig wird und Leah vor Schmerz stirbt, bricht der siegreiche Judah herein, vom Volk zum König von Israel erhoben.

## Manon.

Oper in 4 Akten von J. Massenet. Text von Meilhac und Gille.

Personen: Chevalier des Grieux = Tenor. Graf des Grieux, sein Vater = Baß. Lescaut, Manons Vetter = Bariton. Marfontaine, ein reicher Pächter = Baß. don Bretigny = Bariton. Manon = Sopran. Pousette und Rosette, deren Freundinnen = Sopran u. Alt. – Ort: Amiens, Paris und bei Havre. Zeit 1721.

Paris 1884.

**1. Akt.** Wirtschaft zu Amiens. Manon Lescaut soll wegen ihres Lebenswandels in ein Kloster gesteckt werden; auf der Poststation in Amiens aber benutzt sie einen unbewußten Moment um mit dem Chevalier des Grieux durchzugehen.

**2. Akt.** Manon führt ein bescheidenes Leben bei des Grieux, der sie indessen wirklich liebt. Mit dem von der Familie Manons beauftragten Lescaut, einem Gardeducorps, kommt Herr von Bretigny und weiß die nach Reichtum lüsterne Manon für sich zu gewinnen.

**3. Akt.** Promenade in Paris. Mitten, im Lärm von Paris hört Manon, daß des Grieux aus Liebeskummer Geistlicher werden will. Sie eilt nach dem Seminar St. Sulpire, wo ihr ehemaliger Geliebter sich befindet.

Verwandlung. Sprechzimmer im Seminar. Manon kommt, und als des Grieux sie sieht, kommt sein fester Vorsatz, der Welt zu entsagen, ins Wanken, und abermals entflieht er mit Manon.

**4. Akt.** Spielsaal. Des Grieux ist, um Manons Wünsche befriedigen zu können, ein Spieler geworden. Als er eines Tages hoch im Gewinn ist, beschuldigt ihn sein Gegner des falschen Spiels, es kommt zum Streit, wonach er und Manon verhaftet werden.

Verwandlung. Manon soll deportiert werden. Im Verein mit Lescaut, versucht des Grieux sie zu befreien. Das gelingt zwar, aber Manons Lebenskraft ist gebrochen, sie stirbt in den Armen des Geliebten.

## Mala vita.

Oper in 3 Akten von U. Giordano. Text von N. Daspuro.

Personen: Vito Amante, Färber = Tenor. Anetiello = Bariton. Amelia, dessen Gattin = Mezzosopran. Christine = Sopran. Marco, Barbier = Bariton. Nunzia = Sopran. Pietro = Tenor. – Ort: Neapel. Zeit: 1810. Rom 1892.

**1. Akt.** Platz in Neapel. Der kranke Vito thut vor dem Christusbild das Gelübde, eine Gefallene zu heiraten und zu retten, wenn ihm Genesung würde. Als das Freimädchen Christine, ihr Geschick beklagend, erscheint, verspricht Vito, sie zur Gattin zu nehmen.

**2. Akt.** Amelias Zimmer. Amelia lebt unglücklich in der Ehe mit dem Trinker Anetiello und hat seit langem ein inniges Liebesverhältnis zu Vito. Sie läßt durch die Friseurin Nunzia Christine zu sich holen, fordert sie auf, von Vito zu lassen und als diese, die ihr Heil von Vito erwartet, nicht zurücktreten will, ihr sogar Vorwürfe macht, daß sie als Frau und Mutter ein Liebesverhältnis unterhalte, greift Amelia wütend zum Messer, doch verläßt Christine rechtzeitig das Zimmer. Mehr Glück hat Amelia bei Vito selbst, da sie ihn wieder fest an sich zu ketten weiß.

**3. Akt.** Dekoration des 1. Aktes. Während eines Volksfestes bringt Christine die Nachricht, daß alles zur Ehe bereit, aber Vito weist sie kalt zurück, und als Amelia kommt, eilt er mit ihr zum Feste. Allein, verzweifelnd stürzt Christine vor dem Christusbilde zusammen, dann rafft sie sich mühsam auf, wankt nach dem verrufenen Freudenhaus, das sie früher beherbergt, öffnet die Thür und bricht an der Schwelle zusammen.

---

## Manon Lescaut.

Oper in 4 Akten von G. Puccini. Deutsche Textübertragung von L. Hartmann.

Personen: Manon Lescaut = Sopran. Lescaut, ihr Bruder, Sergeant der Königl. Garde = Bariton. Chevalier des Grieux = Tenor. Geronte de Ravoir = Baß. Edmond, Student = Tenor. Der Wirt = Baß. Ein Musiker = Mezzosopran. Ein Balletmeister = Tenor. Ein Lampenanzünder = Tenor. Ein Sergeant der Bogenschützen = Baß. Ein Seekapitän = Baß. Ein Perrückenmacher = stumm. – Zeit: 18. Jahrhundert.

Das Libretto dieser Oper, wie auch „Manon" von Massenet (siehe diese) ist nach dem Werke „Manon Lescaut" des Abbé Prevost gearbeitet.

Manon trifft mit dem Chevalier des Grieux in Amiens zusammen, wo der Sergeant Lescaut seine Schwester dem

Wüstling Geronte verkuppeln will. Manon läßt sich aber von des Grieux entführen. Nachdem sie eine Zeit lang mit ihrem Liebhaber gelebt, führt ihr Bruder Geronte zu ihr, sie folgt dessen Verlockungen und verläßt ihren Geliebten. Des Grieux findet sie wieder, die Liebe zu ihm bestimmt Manon, abermals mit ihm zu entfliehen, doch wird sie wegen ihres Lebenswandels verhaftet und auf ein Schiff gebracht, das nach Amerika segelt. Krank und elend trifft sie des Grieux dort an, und da er ohne Mittel ist, vermietet er sich dem Schiffskapitän, um bei Manon bleiben zu können und an den fernsten Grenzen von Neu-Orleans stirbt die Unglückliche in den Armen des Geliebten.

## Mara.

Oper in 1 Akt von Ferdinand Hummel. Text von A. Delmar.

Personen: Eddin, ein Tscherkesse = Tenor. Mara, sein Weib = Sopran. Dmitri, beider Kind = Sopran. Djul, Maras Bruder = Bariton. — Ort: Kaukasus, Elbrusplateau. Zeit: Gegenwart.
Berlin 1893.

Während der Ouverture fällt ein Schuß. Der aufgehende Vorhang zeigt ein Thal, hinten Felsen und Schlucht, vorn Eddins Hütte, gegenüber ein hohler Baum, dessen Oeffnung durch Ranken verdeckt ist. Mara wartet auf Eddin, den sie gegen den Willen ihres Stammes, der Eddin feind ist, geheiratet. Dmitri, ihr Sohn, kommt und spielt „Kuckuck" mit ihr. Dann singt sie ihn in Schlaf: „Leise, leise nickt die Rose" und trägt ihn in die Hütte. Verstört kommt Eddin mit entladenem Gewehr. Als er eine neue Kugel in die Flinte stößt, errät Mara, daß er den Schuß abgefeuert, der sie erschreckt. Auf ihre Frage gesteht er wohl, daß er einen Verfolger getötet, steht aber weiter nicht Rede. Die Rächer nahen, und auf Maras Flehen versteckt sich Eddin in dem hohlen Baum. Es ist Maras Bruder Djul, der mit Tscherkessen kommt und Eddin sucht, weil er, Tribut verweigernd und verfolgt, Maras Vater erschossen. Sie sinkt zusammen, da sie aber trotzdem den geliebten Mann nicht verraten will, droht Djul den Knaben Dmitri zu töten. Im tiefsten Schmerz schweigt Mara auch jetzt, wie aber die Tscherkessen das Kind ergreifen wollen, tritt Eddin hervor und stellt sich selbst („Niemand betritt die heil'ge Schwelle"). Rührend nimmt er von seinem Weibe Abschied und bittet seine Feinde um den Tod durch die Kugel. Nein! ruft Djul: „Vom Fels, wo der Vater erschossen, sei'st lebendig Du ins Thal gestoßen". Bebend fleht Eddin: „O lebend, lebend nimmermehr!" Mara schreit auf; als Eddin weggeführt ist, neigt

sie sich in brünstigem Gebet und faßt den Entschluß, den geliebten Mann den süßen Tod von einer lieben Hand empfangen zu lassen. Eddin erscheint mit den Tscherkessen auf dem Fels, winkt mit erhobenen Händen ein letztes Lebewohl, da ergreift Mara die zurückgebliebene Flinte, ruft: „Die heil'ge Jungfrau segne Dich!" und erschießt ihn. Mara bricht in die Knie und verbirgt mit den Händen ihr Gesicht. Dmitri kommt aus der Hütte, schleicht zu ihr, nimmt ihr langsam die Hände vom Gesicht und sagt: „Kuckuck!" Während er mit seinem Kleidchen ihre Augen zu trocknen sucht, fällt der Vorhang.

## Marie, die Tochter des Regiments.

Komische Oper in 2 Akten von Donizetti. Text, nach dem Französischen des St. Georges und Bayard, von Gollmick.

**Personen:** Marchesa von Maggiorivoglio = Sopran. Sulpiz, Feldwebel = Baß. Tonio, ein junger Schweizer = Tenor. Marketenderin = Sopran. Die Herzogin von Craquitorpi = Sopran Hortensio, Haushofmeister = Baß. Ein Korporal = Baß. Ein Notar = Sprechrolle. Ein Bedienter = Sprechrolle. — Ort: Bei Bologna und im Schlosse der Marchesa. (Im Original sind die Soldaten Oesterreicher, auf der Bühne werden sie auch als Franzosen wiedergegeben.)
Paris 1840.

Marie ist von Soldaten des 2. Regiments auf dem Schlachtfelde gefunden, vom Regiment als Tochter auferzogen worden und folgt ihren „Vätern" als Marketenderin. In einer Lebensgefahr im Gebirge von dem jungen Schweizer Tonio errettet, hat sie Liebe zu diesem gefaßt, der, um sie zu gewinnen — denn sie hat geschworen, nur einen vom Regiment zu heiraten — Soldat wird. Trotzdem wird sie von dem Geliebten getrennt, da sie grade zu dieser Zeit ihre Verwandte, die Marchesa von Maggiorivoglio findet, die aus Briefen, die der wackere Sergeant Sulpiz getreu aufbewahrte, entnimmt, daß Marie ihre Nichte ist. Marie muß Abschied nehmen von dem teuern Regiment und von dem Geliebten und der Marchesa folgen. — Der zweite Akt spielt auf dem Schlosse der Marchesa. Die einzige Freude, die Marie hat, trotz des Reichtums, ist der alte Sulpiz, der als Invalide bei ihr wohnen darf. Sie soll sich sogar „standesgemäß" mit dem Sohn der Herzogin von Craquitorpi vermählen, will es auch schließlich über sich ergehen lassen; als sie aber kriegerische Klänge hört, Soldaten kommen, sogar ihr Regiment und darunter auch noch der geliebte Tonio als Offizier, da wirft sie alles über den Haufen, jubelt den Truppen zu und stürzt Tonio in die Arme. Entrüstet zieht sich die Herzogin zurück, und die Mar-

chesa, die Marie liebt wie ihre Tochter, willigt unter dem Jubel Mariens in deren Verbindung mit Tonio.

**1. Akt.** Chor und Ensemble. Duett zwischen Sulpiz und Marie: „Ha, sie ist's, der Donner, zum Entzücken". Darin Mariens Lied: „Auf dem Felde der Ehre". Ensemble: Tonio soll als Spion erschossen werden, wird aber durch Mariens Erzählung, daß er ihr das Leben gerettet, Freund der Soldaten. Mariens Regimentslied: „Weiß nicht die Welt, sagt nicht die Welt". Liebesduett: „Wie, Du, Du liebst mich". Finale: Chor der Soldaten, Tonios Rekrutenlied: „Ich trete unter Eure Fahnen". Mariens Abschied: „So lebet wohl, Ihr teuern Waffenbrüder".

**2. Akt.** Gesangsszene: „Der junge Tag erglüht im Haine". Mariens Jubelarie beim Erscheinen des väterlichen Regiments: „Heil Dir, o mein Vaterland" und Terzett zwischen ihr, Sulpiz und Tonio: „Endlich sind wir vereint". Finale: Marie erzählt ihre Lebensgeschichte, die Marchesa giebt aus Liebe für sie nach und vereinigt sie mit Tonio. Schlußchor: „Heil Dir, o mein Vaterland".

---

## Martha oder: Der Markt zu Richmond.

Oper in 4 Akten von F. v. Flotow. Text, nach dem Französischen, von Friedrich.

Personen: Lady Harriet Durham, Ehrenfräulein der Königin = Sopran. Nancy, ihre Vertraute = Mezzosopran. Lord Tristan Mikleford, ihr Vetter = Baß. Lyonel = Tenor. Plumkett, ein reicher Pächter = Baß. Der Richter von Richmond = Baß. Drei Mägde und drei Diener der Lady = kleinere Gesangspartieen. Ort: Das Schloß der Lady, in und bei Richmond. Zeit: Die Regierung der Königin Anna.
Wien 1847.

Um sich eine Zerstreuung zu bereiten, zwingt Lady Harriet ihren steifen englischen Vetter Tristan, mit ihr und Nancy den Mägdemarkt in Richmond zu besuchen und zwar in den Kleidern von Dienstboten. — Auf dem Markt treffen sie den reichen Pächter Plumkett und seinen Pflegebruder Lyonel, dessen Herkunft unbekannt ist und der nur einen Ring als einziges Erkennungszeichen besitzt. Unter dem Namen Martha und Julia lassen sich Harriet und Nancy von diesen beiden dingen, da sie aber auch Handgeld nehmen, so wird aus dem Spaß Ernst, der Richter zwingt die Mädchen, den Pächtern zu folgen. — Eine ergötzliche Szene beginnt im 2. Akt, als Martha und Julia spinnen sollen, es nicht können und die Männer es ihnen zeigen. Der schwärmerische Lyonel faßt innige Neigung zu Martha und nachdem sie ihm auf sein Bitten ein Volkslied gesungen, gesteht er ihr seine Liebe. Obwohl Martha auch Gefallen an Lyonel findet, so kann sie den Spaß doch nicht zu weit trei-

ben und von ihrem Vetter Tristan ausgeforscht, entflieht sie in der Nacht mit Nancy. — Plumkett entdeckt nun Julia im Gewande einer königlichen Jägerin, wird aber von ihr und ihren Genossinnen vertrieben. Lyonel bewahrt sehnsüchtig die Rose, die er von Hariet-Martha erhalten, als er aber die Geliebte als Hofdame erblickt, inmitten des königlichen Hofstaats, von ihr verläugnet und für wahnsinnig erklärt wird, sucht er die Liebe zu ihr aus seinem Herzen zu reißen. — An dem Ring, den er besitzt, wird er als Sohn eines hochgestellten Mannes erkannt und von der Königin rehabilitiert. Harriet ist darüber glücklich, denn sie liebt ihn und will nunmehr die Seine werden. Jetzt aber weist Lyonel diejenige zurück, die ein so frevelhaftes Spiel mit ihm getrieben. — Nachdem Plumketts und Nancys Herzen sich gefunden, verhelfen sie dem Freund zu seinem Glück. Harriet und Nancy ziehen ihre Mägdetracht wieder an, suchen Lyonel auf dem Markt zu Richmond, wo sie ihn zum erstenmal gesehen, wieder auf und Lyonel, gerührt von der Demut Harriets, erkennt darin ihre wahre Liebe, und vereinigt sich mit ihr.

**1. Akt.** Zimmer der Lady. Chor und Szene. Duett: Nancy und Harriet: „Von den edlen Kavalieren". Szene und Terzett: Nancy, Harriet, Tristan: „Schöne Lady und Cousine", mit dem Mägdechor hinter der Szene: „Wohlgemut, junges Blut, über Weg, über Steg".

Verwandlung: Der Mägdemarkt zu Richmond. Chor und Aufmarsch der Mägde. Szene und Duett zwischen Lyonel und Plumkett: „Ja, seit früher Kindheit Tagen". Finale: „Der Markt beginnt, die Glocke schallt".

**2. Akt.** Zimmer in Plumketts Pachthof. Szene: Lyonel, Plumkett, Harriet, Nancy: „Nur näher, blöde Mädchen" und Spinnquartett: „Immer munter dreh' das Rädchen". Szene: Lyonel mit Harriet und Volkslied: „Letzte Rose, wie magst Du so einsam hier blühn". Finale: „Warte nur, das sollst Du büßen", mit dem Terzett: Tristan, Harriet, Nancy: „Fort von hinnen laßt uns eilen". (Hiermit schließt gewöhnlich der 2. Akt, obwohl im Original noch die Szene folgt, wo sich Plumkett und Lyonel zur Verfolgung der Entflohenen aufmachen.)

**3. Akt.** Wald und Wirtshaus. Plumketts Porterlied mit Chor: „Laßt mich Euch fragen, könnt Ihr mir sagen". Chor der Jägerinnen und Lied Nancys: „Jägerin, schlau im Sinn", mit anschließendem Ensemble: „Blitz, die wilde Jagd". Szene und Arie Lyonels: „Ach, so fromm, ach so traut". Finale: „Die Herrin rastet dort" mit dem großen Ensemble: „Mag der Himmel Euch vergeben".

**4. Akt.** Pachtzimmer, wie vorher. Arie Harriets: „Den Tenern zu versöhnen". Duett zwischen Harriet und Lyonel: „Der Lenz ist gekommen, die Rosen erblüh'n." Duett zwischen Plunkett und Nancy: „Ja, was nun?"

Verwandlung: Der Mägdemarkt in Richmond. Finale: „Hier die Buden, dort die Schenke", mit dem Schlußgesang: „Der Lenz ist gekommen".

---

## Meister Roland.

Oper in 3 Akten von Graf Géza Zichy, deutsch von Max Kalbeck.

Personen: Meister Roland, Kunstschütze = Tenor. Lévelesol, Akrobat = Baß. Yvette, Blumenmädchen, seine Tochter = Sopran. Mad. Parbleu, Seiltänzerin = Mezzosopran. Beauvieux, Habitué = Tenor. Damoiseau, Leutnant = Bariton. Circusdirektor = Tenor. Ort: Paris. Zeit: Gegenwart.

**1. Akt.** Vorraum eines Cirkus; Garderoberäume der Darsteller. Mehrere Tänzerinnen lassen sich ankleiden. Aus ihren Gesprächen erfährt man, daß Rolands alte Liebe, Madame Parbleu, nach zweijähriger Abwesenheit wieder auftreten wird, und daß er jetzt seine Liebe Yvette zugewandt hat (Arie der Yvette: „Blumen von allen Arten"). Beauvieux führt seinen Freund Damoiseau in den Cirkus ein („Du wirst mit mir zufrieden sein"), rät ihm aber, nicht Roland in die Quere zu kommen, der keinen Spaß verstehe; Yvette solle er daher in Ruhe lassen. Madame Parbleu erscheint und wird Dumoisin vorgestellt; wie sie erzählt, hat sie Roland einst laufen lassen, kann es aber ohne ihn nicht aushalten, und erschrickt heftig, als sie hört, daß Yvette seine Braut sei (Terzett: „Entgeht für heute"). Damoisin verfolgt trotz der Warnungen seines Freundes Yvette mit Liebesanträgen (Arie: „Dein Körbchen ist an Düften reich") und schenkt ihr ein goldenes Herz, das seiner verstorbenen Mutter gehört hat; sie nimmt es an, aber nur, um ihn nicht zu kränken. Mad. Parbleu, die beide belauscht hat, will sich durch Yvettes Untergang Rolands Liebe erringen. Ein zärtliches Billet, das er von ihr erhält, zerreißt er und erklärt Yvette, daß er nur sie liebe (Duett: „Mögen draußen Stürme hausen"). Dann hat er mit Mad. Parbleu eine lange Aussprache, lehnt aber jede Aussöhnung ab. Sie behauptet, daß Yvette ihn betrüge (Arie: „Ein Leben ohne Leidenschaft") und betrachtet bedeutungsvoll seine Gewehre, die Lévelesol eben herbeibringt. Er lacht sie aus. Lévelesol, der aus Rolands Benehmen zu entnehmen glaubt, daß er mit Yvette nur ein frivoles Spiel treibe, droht, ihn zu erschlagen, wenn er das Mädchen unglücklich mache. Yvette glaubt an die

Möglichkeit, daß Roland ihr treulos werden könne, will aber trotzdem nicht von ihm lassen. — Die Hauptnummer der Vorstellung, Roland als Kunstschütze, steht bevor, aber Lévelesol, an dem er seine Fertigkeit erproben soll, ist verschwunden. Der Cirkusdirektor bietet in seiner Not dem Stellvertreter eine hohe Belohnung, und Yvette übernimmt aus Liebe zu Roland das gefährliche Wagestück. Er soll eine Rose, die sie im Munde hält, wegschießen — die geringste Bewegung, und sie ist verloren. Sie besteht die Probe zu allgemeinem Jubel, und Roland erklärt, sie jetzt heiraten zu wollen. Mad. Parbleu schwört ihr Rache. (Ensemble: „Was ich im Stillen barg.")

**2. Akt.** Dieselbe Dekoration. Roland hat Yvette geheiratet, und Madame Parbleu sucht nach einer Gelegenheit, sich zu rächen. Sie stiehlt aus Yvettes Garderobe Damoisins goldenes Herz (Arie: „Was will ich machen?"), wird aber dabei von Lévelesol überrascht. Listig weiß sie ihn von ihren angeblich guten Absichten zu überzeugen und versucht dann, Roland durch allerlei Verführungskünste zu umgarnen („O laß' an deiner Brust mich lehnen!"). Der ahnungslose Lévelesol, hat auf ihre Veranlassung das Herz Damoisin überbracht, und dieser sieht darin eine Aufforderung Yvettes, zu ihr zu kommen. In einem Nebenraume findet die Unterredung statt, und Roland, der aus den Worten seines unschuldigen Weibes ihre Treulosigkeit zu entnehmen glaubt, holt sein Gewehr, um beide zu erschießen, findet sie aber nicht mehr vor (Arie: „Vergebens! Entfloh'n ist sie"). Während im Nebenraume Beauvieux und Damoisin mit den Tänzerinnen ein Gelage veranstalten, tritt Yvette zu ihrem Manne ein. Ihre Verlegenheit fällt ihm auf, und seine Unruhe wächst, als er im Nebenzimmer Mad. Parbleu ein anzügliches Lied singen hört („Ich weiß ein luft'ges Vögelein"). Yvette bemüht sich zärtlich um ihn und stimmt, um ihn zu zerstreuen, ein Tanzlied an („Hin und her"), aber er bleibt unruhig und muß immer wieder auf Mad. Parbleus Lied hören (Arie: „Nein, ich kenne sie genau"). Als sie nun gar selbst erscheint, eilt er ihr zärtlich entgegen; Lévelesol, der ihr gefolgt ist, stellt sich ihm in den Weg. Wütend ergreift Roland das Gewehr um ihn zu erschießen; Lévelesol reißt es ihm weg, Roland stürzt racheschnaubend hinaus. Yvette ersucht Mad. Parbleu, ihrem Glücke nicht mehr im Wege stehen zu wollen („O hör' mich an!"), wird aber mit Hohn zurückgewiesen. Als sie ihr gründlich die Wahrheit sagt, will Mad. Parbleu sie erstechen; Lévelesol rettet seine Tochter und beschließt, die Parbleu unschädlich zu machen.

**3. Akt.** Champs Elysées. Lévelesol erzählt seiner von ihrem Manne verlassenen Tochter, daß er das Drahtseil, auf

dem Mad. Parbleu heute Abend ihre Kunst zeigen werde, soweit durchschnitten habe, daß es reißen müsse. Sie will sich nicht zur Mitschuldigen machen und bittet ihn, sein Vorhaben aufzugeben (Arie: „Höre, was mir heut geträumt"). Sie weiß, daß sie nicht mehr lange leben wird, und bittet ihren Vater, Roland zu sagen, daß sie ihm stets treu gewesen sei. Damoisin sucht Yvette wieder zu überreden, die Seine zu werden. Aus der Unterredung entnimmt Roland, der sie belauscht, erschüttert, daß sein Weib ihn gar nicht betrogen habe, bittet sie schluchzend um Verzeihung („Ich war so roh") und will sich mit ihr vor Mad. Parbleus Nachstellungen in die Einsamkeit flüchten („Wir räumen morgen ihr das Feld"). Zum letzten Male eilen beide in den Cirkus.

Verwandlung: Das Innere des Cirkus. Mad. Parbleu will eben mit ihren Künsten auf dem Drahtseil beginnen, als Yvette atemlos herbeistürzt und ihr mitteilt, daß das Seil verletzt sei. Bis ein neues besorgt wird, soll Roland seinen berühmten Rosenschuß vorführen. Mad. Parbleu weiß im entscheidenden Augenblicke durch ihr auffallendes Benehmen Yvette zu einer Bewegung zu veranlassen, und von Rolands Kugel getroffen, sinkt seine junge Frau tot zu Boden. Lévelesol, der die letzten Vorgänge nicht kennt, glaubt, daß Roland sie absichtlich getroffen habe; dieser weiß, wer der eigentliche Mörder ist und erschießt Mad. Parbleu, die höhnisch lachend in ihrer Loge sitzt.

## Mudarra.

Große Oper in 4 Akten von Fernand Le Borne, Text von L. Tieccelin und L. Bonnemère, deutsch von A. Brunnemann.

Personen: Mudarra, maurischer Ritter = Tenor. d'Avaugour, bretonischer Edelmann = Bariton. Graf Penmarck = Baß. Alienor, seine Tochter = Sopran. Daracks, ein Zigeuner = Tenor. Mikla, eine junge Zigeunerin = Mezzosopran. Ripaille, Söldnerführer = Bariton. Der Bischof = Bariton. Eine Witwe = Mezzosopran. Ein Bauer = Tenor. Ein Diener = Bariton. – Ort: Afrika und die Bretagne. Zeit: 13. Jahrhundert.

**Prolog.** Halle in Mudarras Palast. Frauen aller Länder und Rassen tanzen und nähern sich Mudarra in verführerischen Stellungen, aber er sucht nicht den bloßen Sinnengenuß, er sucht echte, wahre Liebe. Enttäuscht gehen die Frauen weg, nur eine junge Egypterin bleibt und scheint mit ihren Verführungskünsten mehr Glück zu haben, bald aber weist Mudarra auch sie von sich und steht auf. Nach Frankreich will er gehen, wo er die wahre Liebe gewiß finden wird; auf seinen Wink erscheint ein Schiff und führt ihn fort.

**1. Akt.** Platz vor der Stadt St. Pol de Léon in der

Bretagne. Bauern, Söldner, Zigeuner u. s. w. sind in lebhafter Bewegung; der Krieg ist beendet, und Feldherr Montfort kehrt siegreich zurück. Mudarra, der auf feindlicher Seite gefochten hat und als Verführer aller Weiber bekannt ist, soll im Kampfe gefallen sein. — Der Zigeuner Daracks fragt Mikla nach dem Grunde ihres Kummers. Nach einigem Zögern gesteht sie ihm, daß sie am Abende der Schlacht einen verwundeten maurischen Ritter getroffen habe. Sein Blick habe sie ins Herz getroffen und sie könne ihn nicht wieder vergessen. Mudarra mit einem Mädchen am Arme tritt hinzu, und als er als Ungläubiger und Gegner Montforts unfreundlich empfangen wird, erklärt er, daß er es jetzt mit Montfort halte, und fordert ungestüm einen Platz am Tische. Bei der hieraus entstehenden Schlägerei wäre er unterlegen, wenn nicht d'Avaugour ihn als seinen Lebensretter erkannt und befreit hätte. Die Menge verläuft sich; Mudarra bleibt allein zurück, Mikla tritt zu ihm und erkennt in ihm den maurischen Ritter, der es ihr angethan hat. Er klagt ihr („Im sonnenreichen Land"), daß er vergebens Liebe suche; sie meint, daß sie sein Sehnen stillen und ihm bis in den Tod treu sein werde (Liebesduett: „In den Arm sollst du mir nun sinken").

Verwandlung. Marktplatz in St. Pol de Léon; Bettler sprechen die Vorübergehenden um eine Gabe an. Alienor hat bereits ihr ganzes Geld hingegeben, als Mudarra und Mikla, die sich noch umschlungen halten, auftreten. Mudarra ist von Alienors Anblick wie gebannt, und als sie es bedauert, daß sie nicht weiter helfen kann, bietet er ihr seine Börse an. Mikla erkennt, daß der Geliebte sie schon zu vergessen beginnt, ist außer sich, und versucht vergeblich, ihn fortzuziehen. — Der Graf Penmarck, Alienors Vater, kehrt aus dem Felde zurück und wird festlich empfangen (Großes Ensemble: „Preis dem Herrn!").

**2. Akt.** Alienors Gemach. Alienor kann sich des Eindrucks nicht erwehren, den Mudarra auf sie gemacht hat (Gebet: „Ave Maria!"), sie hofft, von ihrer sündigen Liebeglut befreit zu werden. Ihr Vater tritt ein und erklärt ihr, daß nun nichts mehr ihrer Heirat mit d'Avaugour entgegenstehe. Sie sucht ihre Angst und Verlegenheit mühsam zu verbergen; ihr Vater ahnt, daß sie einen andern liebt, und macht ihr Vorwürfe, da d'Avangour ihr Wort habe. Der Eintritt ihres Verlobten unterbricht den heftigen Auftritt, und es gelingt dem Grafen, seine Tochter anscheinend zu beruhigen und mit ihrem Geschicke zu versöhnen.

Verwandlung. Vor dem Schlosse Penmarck. Mudarra klagt, daß Alienor ihm nicht angehören solle, und fühlt, daß er zum ersten Male wirklich von reiner Liebe erfüllt

ist. Der Graf mit seiner Tochter und ihrem Verlobten nähert sich, und der arglose d'Avaugour bittet Mudarra, an seinem Glücke teil zu nehmen. Die Landleute begrüßen das junge Paar, und Zigeunerinnen führen einen Tanz aus. Mikla singt ein Lied („Unterm Himmelsblau") und wird so anzüglich, daß Mudarra ihr heftig Schweigen gebietet. Sie soll ins Gefängnis geworfen werden, die Zigeuner beschützen sie.

**3. Akt.** Alienors Brautgemach. Daracks und Mikla haben sich eingeschlichen, nebenan in der Kapelle findet die Trauung des jungen Paares statt. Mikla klagt über Mudarras Untreue, Daracks rät ihr, Alienor zu vergiften, und schüttet in einen Becher, den er vom Tisch nimmt, ein Gift, das langsam tötet. Beide verschwinden hinter einem Vorhange, der Brautzug betritt das Gemach (Chor: „Auf dem Pfade, den ihr beschreitet"). Alienor ist bleich und zittert; die Brautjungfern bedauern sie und lassen sie dann allein. Sie beklagt ihr Geschick und wünscht sich den Tod („Weh mir, nun ist's geschehen!"). Da steigt Mudarra zum Fenster hinein, sie sieht ihn nicht, glaubt nur seine Stimme zu hören und schlummert mit seligen Liebesgedanken ein. Er weckt sie und sucht sie zu überreden, mit ihm zu fliehen; als sie sich sträubt, winkt er einem Sklaven und läßt sie von ihm hinaustragen. Auf ihre Hilferufe eilt d'Avaugour herbei, und da dieser nur die Zigeuner sieht, die hinter dem Vorhange hervorgetreten sind, glaubt er erst, sie wären die Schuldigen. Mikla macht ihn auf die Fliehenden aufmerksam, und während er ihnen nacheilt, entdeckt sie, daß der Becher noch unberührt dasteht. In ihrer Verzweiflung, den Geliebten verraten zu haben, schlürft sie den giftigen Trank und eilt dann d'Avaugour nach, um Mudarra, wenn möglich, noch zu retten.

**4. Akt.** Felsiger Hohlweg am Meere. Mudarra mit dem Sklaven, der die ohnmächtige Alienor trägt, treten auf. Er bemüht sich, sie ins Leben zurückzurufen; als es ihm gelungen ist, giebt sie allen Widerstand auf und ist beseligt in dem Gedanken, daß sie ihm angehören darf. — Liebesscene. — Da erscheint d'Avaugour, es kommt zwischen beiden Nebenbuhlern zum Kampfe, Mudarra wird verwundet. Er greift in der Todesnot zum Dolche, d'Avaugour fällt und ist in seine Hand gegeben. Als Mudarra großmütig sein Leben schonen will und d'Avaugour ihn von neuem angreift, stürzt Mikla, die den Tod schon im Herzen spürt, hinzu und ersticht ihn. Mudarra ist glücklich, daß Alienor jetzt ihm allein angehört, aber lange währt seine Freude nicht, denn Gewissensbisse foltern ihn, als er Mikla hinsterben sieht und den Leichnam des Gegners betrachtet. Vergebens sucht Alienor ihn zur Flucht zu bewegen, er glaubt die anklagende Stimme des Toten zu hören und ersticht sich.

# Maurer und Schlosser.

(Le maçon.)

Komische Oper in 3 Akten von Auber. Text von Scribe und Delavigne.

Personen: Oberst Leon von Merinville = Tenor; Irma, eine Griechin = Sopran; Roger, ein Maurer = Tenor; Baptiste, ein Schlosser = Baß; Henriette, dessen Schwester = Sopran; Zobëide, Irmas Gespielin = Sopran; Madame Bertrand = Mezzosopran; Usbeck und Ricca, türkische Sklaven im Gefolge des Gesandten = Baß u. Tenor. — Ort: Die Vorstadt St. Antoine in Paris. Zeit: 1788.

Paris 1825.

**1. Akt.** Platz vor einem Wirtshaus. Roger und Henriette feiern Hochzeit. Lied Rogers: „Auf, Handwerksmann, Sonntag ist heute" mit dem Refrain: „Nur Courage, nicht verzagen." Die neidische Madame Bertrand kann nicht begreifen, wie Roger plötzlich das Geld zur Hochzeit bekommen („Ja, er ging fort aus meinem Haus, viel ärmer als 'ne Kirchenmaus"). — Roger hat aber das Geld von dem jungen Offizier Leon bekommen, dem er das Leben gerettet. Mit Freuden wird auch Leon von ihm begrüßt (Quartett: Leon, Roger, Baptiste, Bertrand: „Seh' ich recht, gnäd'ger Herr"). Liebesduett zwischen Roger und Henriette: „Ich muß fort, denn man erwartet mich". Zwei Unbekannte treten auf, suchen einen Maurer (Finale: „O schweige doch, mich dünkt, dort kommen Leute") und fordern Roger auf, mit ihnen zu kommen. Roger weigert sich („Nein, heute kann ich Euch nicht mehr begleiten"), doch zwingen sie ihn, zu folgen („O Gott, ich kann nicht widerstehen").

**2. Akt.** Ein Zimmer bei dem türkischen Botschafter. Chor mit Irma und Zobëide. Lied Irmas: „Vor der schönen Zelmire". Allein gelassen, drückt Irma ihre Sehnsucht nach dem geliebten Leon aus (Arie: „Ach, überall auf meinen Wegen"). Nunmehr werden von Usbeck und Ricca (den beiden Unbekannten des ersten Aktes), Roger und Baptiste, welch letzterer auch gezwungen wurde, hereingeführt und ihnen Arbeit angewiesen. Roger muß Steine herrichten, eine Thür damit zu vermauern und Baptiste Ketten schmieden (Duett: „Keine Rast, angefaßt"). Dann werden sie von den Sklaven noch weiter geführt. Leon kommt, um die Geliebte zu entführen (Arie: „Bald' werd' ich sie sehen" und Duett mit Irma: „Nun wohlan, komm, laßt uns schnell entweichen"). Ricca und Usbeck erwischen aber das Liebespaar, fesseln sie mit den von Baptiste geschmiedeten Ketten und Roger muß die Beiden einmauern. Da der Maurer seinen Wohlthäter Leon erkennt, faßt er den Plan zur Rettung und mit seinem, während der Arbeit gesungenen Liedchen: „Nur Courage, nicht verzagen" ermutigt er den Freund.

**3. Akt.** Dekoration des 1. Aktes. Henriette jammert über das Ausbleiben Rogers (Arie: „Ach, an meine Ehe denk' ich nur

mit Grauen"). Von Madame Bertrand gereizt, kommt sie mit dieser in Streit (Zankduett mit Chor: „Darf man, junge Frau, Sie wohl fragen?"). Roger, von den Sklaven zurückgeführt, denkt über die Rettung Leons und Irmas nach (Arie: „Gott, was ist hier zu thun?"). Da ihm die Augen verbunden waren, kennt er das Haus nicht, als aber die bösartig spionierende Madame Bertrand ihn bei Henriette verklagt, daß sie gesehen, wie er in das Haus des türkischen Botschafters getreten, da sieht er Licht, eilt fort und läßt durch die Behörden die Eingemauerten befreien, die nun kommen, ihm danken und alles aufklären (Finale: „Gewalt'ger Lärm im Viertel hier" und Schlußchor: „Nur Courage, nicht verzagen").

## Medea.

Oper in 3 Akten von L. Cherubin. Text von Framery.

Personen: Kreon, König von Korinth = Bariton; Dirke, seine Tochter = Sopran; Jason, Führer der Argonauten = Tenor; Medea, seine Gattin = Sopran; Neris, deren Begleiterin = Sopran; Eucharis, Dirkes Freundin = Sopran; ein Hauptmann = Baß — Ort: Korinth.

Paris 1797.

1. Akt. Halle im Palast zu Korinth. Jason will sich mit Dirke vermählen, als die von ihm verlassene Medea erscheint und da er sie zurückweist, Rache schwört.

2. Akt Zwischen dem Palast und dem Junotempel. Medea hat von König Kreon, der sie verbannt, einen Tag Aufschub erhalten, ist heimlicher Zeuge der Hochzeit zwischen Jason und Dirke und faß ihren Plan.

3. Akt. Felsengegend. Medea hat sich in ihr Zaubergewand gehüllt und beschwört die Unterirdischen. Sie hat ein giftgetränktes Gewand der Dirke zum Brautgeschenk gegeben und als sie es anlegt, stirbt Dirke unter Qualen. Vor Jasons Augen tötet Medea ihre beiderseitigen Kinder, die Jason innig liebt und dann entflieht sie auf ihrem Zauberwagen.

## Die Medici.

Oper in 4 Akten von R. Leoncavallo. Text vom Komponisten. Deutsch von Emil Taubert.

Personen: Lorenzo de Medici = Bariton; Giuliani de Medici = Tenor; Giambattista da Montesecco, päpstlicher Capitano = Baß; Francesco Pazzi = Baß; Bernardo Bandini = Tenor; Erzbischof Salviati = Baß; Poliziano = Bariton; Simonetta Catanei = Sopran; Fioretta de Gori = Sopran; die Mutter der Simonetta = Alt. — Ort: Florenz. Zeit: Die historischen Begebenheiten von 1471—1478.

„Die Medici" sind der erste Teil der epischen Dichtung in Form einer historischen Trilogie „Crepusculum", deren andere Teile: „Gerolamo Savanarola" und „Cesare Borgia" folgen sollen.

1. Akt. Der erste Akt soll den idyllischen Teil der Oper bilden und hat des Poliziano Schilderung vom ersten Begegnen

Giulianos und Simonettas zur Unterlage. — Lorenzo rastet mit seinen Gästen, worunter Poliziano und Montesecco, auf der Jagd in einer Waldlichtung. Lorenzo spricht mit Poliziano von Poesie und Liebe und freut sich des Lobes, welches ihm der berühmte Dichter spendet. Nachdem die Gesellschaft sich entfernt, tritt Simonetta. ein Liebeslied trällernd, mit ihrer Freundin Fioretta auf. Während Fioretta der Jagd zuschaut, bleibt Simonetta allein. Sie ist krank, der nahe Tod winkt ihr, aber sie sehnt sich nach Leben und Genuß. Montesecco findet sie und will sie zum Kusse zwingen, doch wird sie durch das Nahen Giulianos von dem Lästigen befreit. Als Giuliano die schöne Simonetta sieht, entbrennt er in Liebe und auch sie kann sich des süßen Gefühls nicht erwehren, giebt ihm auf seine Bitten für den nächsten Tag ein Stelldichein Die zurückkehrende Fioretta merkt das Vorgefallene und ist betroffen, denn sie selbst liebt Giuliano Montesecco hat gelauscht und hält nun Simonetta für die Geliebte Giulianos.

**2 Akt.** Santa Trinita in Florenz. Nacht. Franzesco Pazzi, Erzbischof Salvati, Bandini und Montesecco verschwören sich unter dem Schutze des Papstes gegen das Leben der Medici. Auf einem Gastmahl sollen beide Brüder getötet werden, denn der Papst fürchtet die wachsende Macht der Familie, die daran ist, den Thron von Florenz zu besteigen. Vorläufig ergeht sich Lorenzo als Dichter und Sänger und empfängt als solcher den Zuruf des Volkes, das seinen Liedern lauscht und Lorenzos Canzone vom Mai mit Tanz begleitet. Auch Simonetta ist in der Menge; sie soll wegen ihres Leidens nicht tanzen und so fordert Poliziano sie auf, ein Tanzlied zu singen. Sie thut dies, läßt sich von der Lust hinreißen, wird wild und wilder, mischt sich schließlich tanzend in die Reihen, fällt aber von einem Blutsturz betroffen, ohnmächtig zu Boden. Sie wird fortgebracht, die Menge verliert sich und niemand bleibt, als der betroffene Giuliano und Fioretta. Er fordert die Freundin Simonettas auf, ihm Nachricht von ihr zu bringen, aber von ihrer Stimme seltsam berührt, frägt er sie, ob sie leide und erfährt, daß sie ihn liebt.

**3. Akt.** Der Ponte vecchio mit den Häusern Simonettas, Montesseccos und Fiorettas. Das letztere ist dem Publikum geöffnet und man sieht in Fiorettas Zimmer. Fioretta kommt von der kranken Simonetta, tritt in ihre Wohnung und ergeht sich in Selbstanklage. Sie hat die Freundin verraten und genießt Giulianos Liebe, doch fühlt sie, daß er trotzdem immer nur an Simonetta denkt — Die Verschworenen erscheinen auf der nächtlich dunkeln Straße. Der Mordstreich ist mißglückt, da nur Lorenzo, nicht sein Bruder auf dem Gastmahl erschienen. Jetzt sollen beide in der Kirche getötet werden und da Montesecco sich weigert, in der Kirche einen Mord zu begehen, obwohl der Papst ihm Absolution erteilen will, so werden andere Hände bestimmt. — Simonetta

erlauscht diese Scene, als sie an der Schwelle ihres Hauses die kühlende Luft genießen will. Zu gleicher Zeit ist Giuliano bei Fioretta eingetreten, von Montesecco bemerkt; er frägt wieder nur nach Simonetta, die er zu sehen wünscht, als aber Fioretta ihm liebend gesteht, daß sie sich von ihm Mutter fühle, neigt er sich gerührt zu ihr. — Montesecco erblickt Simonetta, die ihm gesteht, den Mordplan zu verraten Er glaubt sie durch Eifersucht unschädlich zu machen und führt sie zu Fiorettas Thür, wo sie den Heißgeliebten im Arm der Freundin sieht. Trotzdem, wenn auch tödlich dadurch getroffen, eilt sie hinein und Montesecco lauert mit gezogenem Dolch an der Thür, bereit, wenn sie den Plan verrate, den heraustretenden Giuliano zu ermorden, denn hier hindert ihn keine Kirche. Die sterbende Simonetta aber kann nichts flüstern als: „Die Medici — Mord — morgen — ich —" da stürzt sie tot nieder. Montesecco stößt den Dolch in die Scheide und flüstert im Gehen: „Gott selbst verdammte feierlich die Medici zum Tod".

4. **Akt.** Das Innere der Kirche Santa Regarata. Während des Credo versammeln sich die Verschworenen, wiegeln das Volk auf und als das Sanctus beginnt, ersticht Francesco Pazzi den Giuliano, der der entsetzten Fioretta zu Füßen stürzt. Lorenzo wird von Poliziano in die Sakristei gerettet, eilt dann aber hervor und gewinnt das Volk, indem er sie an die Thaten seiner Verfahren erinnert. Wütend eilt die Menge den entflohenen Mördern nach. Giuliano stirbt, indem er Fioretta als seine Braut erklärt und sie in des Bruders Schutz giebt. Lorenzo nimmt Fioretta als Schwester an sein Herz und dann, der davoneilenden Menge nachschauend, ruft er aufgerichtet: „Sie bahnen mir zum Thron die Pfade noch. — Sei Du mein Rächer, Volk! Ich herrsche doch!"

---

## Mefistofele.

Oper in 4 Akten, einem Prolog und Epilog von A. Boito.
Text vom Komponisten.

Personen: Mefistofele = Baß; Faust = Tenor; Margareta = Sopran; Marta = Alt; Wagner = Tenor; Helena = Sopran; Panthalis = Alt; Nereus = Tenor

In der ursprünglichen Form zuerst aufgeführt; Mailand 1868, dann wesentlich umgearbeitet; Bologna 1875. — Während andere Komponisten, die Göthes Faust als Libretto bearbeiteten, nur den ersten Teil der Tragödie in Betracht zogen, hat Boito auch Stücke des zweiten Teils mit verwendet, bringt vom ersten Teil den Prolog im Himmel, den Osterspaziergang, die Teufelsverschreibung, die Gartenszene, Walpurgisnacht und Gretchen im Kerker; vom zweiten Teil: die klassische Walpurgisnacht mit Helenaszene und im Epilog: Fausts Tod.

**Prolog.** Der Himmel, mit der Wette Mefistofeles und des Herrn.

**1. Akt.** Osterspaziergang mit dem Gespräch zwischen Faust und Wagner.

Verwandlung: Die Erscheinung Mefistofeles als grauer Bruder und die Verschreibung des Faust.

**2 Akt.** Garten. Faust und Margarete, Mefistofele mit Martha.

Verwandlung: Harzgebirge und Walpurgisnacht.

**3. Akt.** Kerker. Faust bei Gretchen und der letzteren Tod.

**4 Akt.** Klassische Walpurgisnacht, wobei Helena hineingezogen ist. Faust begeht in Rittertracht den Bund des Mittelalters mit dem kassischen Altertum in der Vereinigung mit Helena.

**Epilog.** Studierzimmer Fausts. Faust stirbt im Gebet. Mefistofeles Kampf mit den himmlischen Rosen. Die Engel schließen mit einem Chor, der den Ruhm des Ewigen preist.

---

## Die Meistersinger.

(Vom Komponisten-Dichter nicht klassifizierte) Oper in 3 Akten von R. Wagner. Text vom Komponisten.

Personen: Hans Sachs, Schuster = Bariton; Veit Pogner, Goldschmied = Baß; Eva, seine Tochter = Sopran; Magdalena, deren Amme = Alt; Beckmesser, Schreiber = Baß (buffo); Kothner, Bäcker = Baß; Walther von Stolzing, ein junger Ritter aus Franken = Tenor; David, Sachsens Lehrbube = Tenor; ein Nachtwächter = Bariton; außerdem singend = Tenor und Baß acht andere Meistersinger. — Ort: Nürnberg. Zeit: 16. Jahrhundert. München 1868.

**1 Akt.** Das Innere der Katharinenkirche. Walther von Stolzing sieht Eva in der Kirche, naht sich ihr nach Beendigung des Gottesdienstes und fragt sie, ob sie schon Braut sei. Eva sieht den Ritter mit unverhohlener Neigung und ihre Amme klärt Walther auf, daß Evas Vater, der Goldschmid und Meistersinger Veit Pogner beschlossen habe, Eva dem Sieger beim Wettgesang der Meistersinger am Johannistag zur Frau zu geben. Zugleich bestimmt Magdalena den von ihr begünstigten Lehrbuben David, dem Ritter zu sagen, was er thun müsse, um im Stande zu sein, an der Preisbewerbung teilzunehmen. David, der mit anderen Lehrbuben in diesen Teil der Kirche gekommen ist, um die Vorbereitungen zum hier stattfindenden Freisingen der Lehrlinge (Freiung) zu treffen, giebt in seiner Unerfahrenheit dem Ritter abschreckenden Bescheid. Aber die Liebe siegt und trotz „Bar" und „Stollen", trotz „Schwarztintenweis" und „abgeschiedene Vielfraßweis" meldet sich Walter bei den eintretenden Meistersingern zur Freiung. — In der Versammlung verkündet Pogner seinen Entschluß betreffs seiner Tochter Eva und zwar soll, trotz Hans Sachsens Vorschlag, dem zuhörenden Volke eine

Stimme zu geben, die Zunft allein entscheiden. Zugleich bezeichnet Pogner den Ritter Walther von Stolzing als Werber, was Beckmesser, der Stadtschreiber, und Wächter (Merker) der „Tabulatur“ beim Wettsingen, der sich Hoffnungen auf Evas Hand macht, übel vermerkt. Auf seine Frage nach dem Lehrmeister nennt der Ritter Walther von der Vogelweide als den, von dem er die Dichtkunst und die Waldvögel als die von denen er das Singen gelernt hat. Da die Meister den Ritter zur Freiung zulassen, so schließt sich Beckmesser in das, vorher von den Lehrlingen aus Vorhängen zurechtgestellte Gemerk ein und Walther beginnt sein Lied. Beckmesser notiert Fehler auf Fehler, sodaß der Spruch gefällt wird: „Versungen und verthan“.

**2 Akt** Straße zwischen der, in einem Eckhaus sich befindlichen Werkstatt des Schusters Haus Sachs und Pogners Haus. Abend. Magdalena hört von David den mißlungenen Ausgang von Walthers Freiung und aus Schmerz darüber vergißt sie sogar, von dem Inhalt ihres Korbes wie gewöhnlich dem Lehrbuben etwas abzugeben, wofür dieser von seinen Kameraden verspottet wird. Pogner kommt mit Eva, ohne daß letztere in ihrer Aufregung nach dem Ritter zu fragen wagt. Hans Sachs, auf den Walthers Gesang einen tiefen Eindruck gemacht, rückt sein Werkzeug an die Hausthür, um in der schönen Abendluft ein paar Schuhe für Beckmesser fertig zu machen. Ihn, der sich immer so gütig gegen sie benimmt, will Eva ausfragen und so erfährt er, durch gutmütige List nachhelfend, daß sie den Ritter liebt. Als Walther erscheint, stürzt sie ihm entgegen und verspricht ihm, in eine Flucht zu willigen. Als sie aber davon wollen, beleuchtet Hans Sachs, der sie belauscht, mit seinem Arbeitslicht die Straße und hält sie so zurück. Das Liebespaar zieht sich in den Schatten von Pogners Haus zurück, da auch Beckmesser mit einer Laute die Straße heraufkommt, um Eva ein Ständchen zu bringen. Sachs, der auf die Straße herausgekommen, stört Beckmesser durch lautes Klopfen und einigt sich schließlich mit dem Stadtschreiber, ihn singen zu lassen, aber als Merker jeden Fehler im Gesang durch einen Schlag auf die Schuhe zu bezeichnen. Beckmesser singt nun, verstößt aber so sehr gegen die Tabulatur, daß Sachs durch die vielen dadurch herausgeforderten Hammerschläge die Schuhe fertig machen kann. Durch den dadurch entstandenen Lärm sind die Nachbarn herbeigelockt, David kommt mit einem Knittel und haut auf Beckmesser, den er für einen Nebenbuhler um Magdalenens Gunst hält, ein, was die anderen Lehrbuben benützen, um eine große Schlägerei anzuzetteln. Im Gewirre versucht Walther mit Eva zu entfliehen, Sachs erwischt sie aber und zieht Walther in seine Werkstatt, während Eva bestürzt in ihr Haus eilt. Die Ruhe stellt sich wieder her, die Straße ist leer, der Mond geht auf und der

Nachtwächter, der von dem ganzen Lärm nichts gehört hat, ruft ruhig die Stunde aus.

**3 Akt.** Zimmer bei Hans Sachs. Der Meister sitzt studierend im Lehnstuhl, ist gut gelaunt und verzeiht dem mehrmals Flehenden. David die Anstiftung der Prügelei von gestern Abend. Vergnügt stattet David nun dem Meister eine Gratulation zum Namenstag (Johannistag) ab. Walther, der die Nacht bei Sachs geschlafen, erzählt einen angenehmen Traum und bringt ihn auf Sachsens Anregung in Verse, um dadurch ein neues Meisterlied zu gewinnen. Walther singt zwei „Bare" und Sachs, davon befriedigt, schreibt sie nieder. Während der Ritter geht, noch einen dritten Bar zu ersinnen und sich zum Fest anzukleiden, kommt der lahmgeschlagene Beckmesser und findet die beiden Verse, die von Sachsens Hand geschrieben, sie zu sich steckend. Er weist sie dann dem Meister als Beweis vor, daß dieser selber ein Bewerber um Evas Hand sei, worauf Sachs das unvollendete Lied dem Stadtschreiber überläßt. Er kommt unter dem Vorwand, sich Schuhe machen zu lassen und als Walther, festlich gekleidet, die Geliebte erblickt, improvisiert er den dritten Vers seines Werbeliedes. Der davon entzückte Sachs ruft Magdalena und David herbei, giebt in seiner Freude dem Lehrbuben eine kräftige Ohrfeige, ihn dadurch zum Gesellen schlagend und tauft das Preislied „Die Morgentraumdeut-Weise".

Verwandlung. Johannisfest auf der Bürgerwiese an der Pegnitz. Aufzug der Gewerke, Anfahrt der jungen Mädchen aus Fürth und Einzug der Meistersinger. Hans Sachs wird vom ganzen Volk jubelnd begrüßt, worauf er seinen Dank ausspricht und es beginnt die Werbung. Die Lehrbuben improvisieren durch herbeigeschleppte Rasenstücke ein Empor für die Sänger und Beckmesser trägt zuerst die beiden Verse Walthers vor, aber so ungeschickt und die Worte verdrehend, daß er über den Unsinn ausgelacht wird. Als er nun wütend die Ehre der Autorschaft des ausgehöhnten Liedes auf Sachs schiebt, weist dieser das zurück und fordert Walther zum Singen auf. Walther besteigt den Rasenhügel und singt unter allgemeiner Begeisterung sein Preislied. Zum Meistersinger ernannt, erhält er Evas Hand zum Lohne.

## Merlin.

Oper in 3 Akten von Karl Goldmark. Text von S. Lipiner.

Personen: Artus, König der Briten = Bariton; Ginevra, seine Gemahlin = stumm; Modred, sein Neffe = Tenor, Gawein = Bariton, Lancelot = Bariton, Merlin = Tenor, Ledwyr = Bariton, Ritter der Tafelrunde; Viviane = Sopran; Fee Morgana = Alt; der Dämon = Baß. — Ort: Wales. Zeit: 6. Jahrhundert.

Wien 1886.

**1. Akt.** Vor Arturs' Burg bei der Stadt Karleon. Merlin ist vom Fürsten der Hölle mit einer reinen Jungfrau gezeugt und

selbst des Zaubers mächtig, solange kein Weib sein Auge blendet. Als Merlin den Dämon zwingt, dem christlichen Artus gegen die heidnischen Sachsen helfend beizustehen, gehorcht dieser nur widerwillig und beschließt, von der Fee Morgana in das Geheimnis von Merlins Zauberkraft eingeweiht, ein herrliches Weib zu schaffen, das Merlins Sinne gefangen nehmen soll Das ist Viviane, bei deren Anblick von Liebe ergriffen, Merlins Zauberharfe verstummt.

**2 Akt.** Merlins Zaubergarten. König Artus nimmt Abschied von Merlin und als Lancelot, des Königs Neffe, Modred als Verräter bezeichnet, sieht Merlin, dessen Zauberblick die Fähigkeit hat, überall die Wahrheit zu schauen, keinen Fehl an Modred so daß Artus beruhigt auf ferne Fahrt zieht. Der Dämon bringt Viviane, welche Merlins Zauberschleier ergreift und in die Luft wirft. Liebliche Geister werden dadurch zum Spiele herbeigerufen. Merlin kommt zu Viviane, der er nun seine Liebe gesteht und sie zugleich vor dem Schleier warnt, denn hätte sie ihn um den Kopf geschlungen, wäre alles rings umher in eine Felsenwüste verwandelt worden. — Da hört Merlin die Kunde von dem Verrat Modreds, der sich zum König ausgerufen. Modred ein Verräter? Dann besitzt ja Merlin keine Zauberkraft mehr, da sein Blick ihn getäuscht? Nun begreift er, daß Viviane und die Liebe zu ihr ihm das bereitet; er will sie von sich stoßen, da wirft sie den Zauberschleier um seinen Kopf, der Garten wird zur Felsenwüste, worin er in feurigen Ketten gefesselt liegt.

**3. Akt.** Die Dekoration vom Schluß des 2 Aktes. Die Fee Morgana erscheint der reuigen Viviane und verkündet ihr, daß eine Liebe, die stärker wie der Tod sei, Merlin erretten könne. — Der gekettete Merlin sieht, wie die Schlacht zwischen Modred, der sich mit den heidnischen Sachsen verbündet hat, und Artus sich zu Gunsten des ersteren neigt. Als er vergebens an seinen Fesseln reißt, verspricht er um die Freiheit seine Seele der Hölle, worauf der Dämon seine Ketten löst.

Verwandlung. Der wieder hergestellte Zaubergarten Merlins. Merlin gewinnt die Schlacht für Artus, wird aber sterbend hereingebracht Als der Dämon hohnlachend kommt, seine Seele in Empfang zu nehmen, giebt sich Viviane aus Liebe für Merlin den Tod und rettet so, nach Morganas Wahrsagung den Geliebten für den Himmel, selbst im Tode mit Merlin vereint.

## Merlin.

Oper in 3 Akten von Ph. Rüfer. Text von L. Hoffmann.

Personen: Merlin = Tenor; der Teufel = Baß; Vivinae = Sopran; König Artus = Bariton; Ginevra, seine Gemahlin = Mezzosopran; Gawein = Baß; Aleard = Tenor. — Ort: Das Land der Phantasie und Artus' Hof. Zeit: 6 Jahrhundert.

Berlin 1887.

**1. Akt.** Wald. Der Teufel rüstet seinen Sohn Merlin mit Zauberkraft aus und sendet ihn zu König Artus.

Verwandlung. Phantastisches Thal. Merlin findet Viviane und gewinnt deren Liebe. Scheidend verspricht er, am dritten Tage wiederzukehren.

**2. Akt.** Artus' Hof. Merlin kommt zum König, dessen Sehnsucht nach dem heiligen Gral er stillt, indem er ihm sein Zauberroß leiht, das ihn sicher ans Ziel bringen wird. Er selbst eilt dann zu Viviane zurück.

Verwandlung. Phantasie-Landschaft. Merlin umgiebt Viviane mit lieblichem Zauber, und als er wieder von dannen geht, bezeichnet er ihr einen Quell, dessen Versiechen allein ihr seinen Tod verkünden wird; dann wird auf ihren Wunsch der Sturmwind sie zu ihm tragen.

**3. Akt.** Wüste. Merlin stößt in der Wüste auf Artus, den das Zauberpferd hierhergetragen. Als der ermüdete König entschlummert, zeigt der Teufel seinem Sohn den strahlenden Gral und fordert ihn auf, denselben herabzureißen und das heilige Blut zu entweihen, damit der Teufel Macht darüber gewinne. Von Engelchören zurückgehalten, erscheint dem schwankenden Merlin die geliebte Viviane, die den Lebensquell versiechen sah und vom Sturm hierhergetragen wurde. In ihrer Liebe selig, verweigert Merlin die ruchlose That und wird mit Viviane vom Teufel getötet.

---

## Mignon.

Oper in 3 Akten von A. Thomas. Text, nach Goethes „Wilhelm Meister", von Barbier und Carré.

Personen: Wilhelm Meister = Tenor; Friedrich = Tenor; Philine = Sopran; Laërtes = Bariton; Lothario = Baß; Mignon = Mezzosopran; Jarno = Baß. — Ort: Eine kleine Stadt, ein Schloß und in Italien. Zeit: 18 Jahrhundert.

Paris 1869.

**1. Akt.** Hof eines Gasthauses. Wilhelm Meister kommt dazu, wie der Zigeuner Jarno die zu seiner Truppe gehörende Mignon durch Peitschenhiebe zum Tanzen zwingen will. Er schützt das Mädchen und kauft es den Zigeunern ab, nimmt sie auch auf ihr Flehen ganz zu sich, doch verlangt er von ihr, daß sie in

seiner Begleitung Knabentracht anlegen soll. In der Zwischenzeit ist Wilhelm auf den Schauspieler Laërtus gestoßen, in dessen Gesellschaft sich auch die kokette Philine befindet, vor deren Wankelmütigkeit Laërtes Wilhelm warnt. Der junge Baron Friedrich schwärmt in albernster Weise für die Schauspielerin, kann es aber nicht verhindern, als die Gesellschaft eine Einladung von seinem Onkel erhält, daß Wilhelm Philinen folgt.

2. Akt. Zimmer im Schloß von Friedrichs Onkel. In Mignons Begleitung besucht Wilhelm Philine und muß um des „Knaben" willen ihren Spott erdulden. Als Mignon allein bleibt, legt sie, um sich wieder einmal als Mädchen zu sehen, Philinens Kleider an, wird dabei aber von Wilhelm überrascht, der sich nun zu ihrem Schmerze von ihr trennt.

Verwandlung. Schloßpark. Mignon trifft mit dem irrsinnigen alten Sänger Lotharío zusammen und ruft in eifersüchtiger Wallung des Himmels feurigen Zorn auf das Haus. Während eines Gartenfestes, wobei Philine von der anwesenden Gesellschaft gefeiert wird, steckt Lotharío, in halbem Verständnis von Mignons Worten, das Schloß in Brand und Mignon selbst, die eben, um einen Befehl Philinens zu erfüllen, im Hause weilt, wird nur durch Wilhelms Geistesgegenwart aus den Flammen gerettet.

3. Akt. Saal im italienischen Schlosse Cypriani. Wilhelm hat, in Gesellschaft Lotharios, die leidende Mignon hierher gebracht, denn er hat ihre Liebe erkannt und die seinige ist erwacht. Der irre Lotharío erscheint dem jungen Liebespaar nun als Marchese Cypriani, der als fahrender Sänger seine von Zigeunern geraubte Tochter Sperate gesucht und in Mignon gefunden. So findet Mignon das lang entbehrte Glück in den Armen des Vaters und des Geliebten.

---

## Mozart und Schikaneder.

### (Der Schauspieldirektor.)

Singspiel in 1 Akt mit Musik von Mozart

Personen: Schikaneder (Frank) = Baß; Philipp = Sprechrolle; Mozart (Vogelsang) = Tenor; Lange (Herz) = Sopran; Uhlich (Silberklang) = Sopran; ein Theaterdiener.

Schönbrunn 1786. — Das Werk ist ein Pasticcio (Pastete), d. h. eine Oper, deren Musik aus älteren Werken zusammengesetzt ist. Im Original sind die Namen anders und hat Mozart für dasselbe auch nur die Ouvertüre und ein Terzett geliefert. In der Bearbeitung von Louis Schneider und W. Taubert (1861), die jetzt üblich ist, sind alle Gesänge Mozartsche Musik. Im Original (Der Schauspieldirektor), das auf Wunsch des Kaisers Josef II. geschrieben wurde, sucht der Theaterdirektor Frank Mitglieder für seine Gesellschaft und probiert dieselbe. Die Bearbeitung bringt als Handlung Schikaneder und Mozart, wie der letztere mit Hilfe des ersteren die Zauberflöte komponiert.

Gesänge: Lied Schikaneders: „Wenn nur die Verse prächtig klingen" mit dem Refrain: „Die Welt will ja betrogen sein, drum

werde sie betrogen". Arie der Uhlich: „Bester Jüngling, mit Entzücken nehm' ich Deine Liebe an". Mozart's Lied: „Wenn mein Bild aus Deinen blauen, hellen, offenen Augen sieht". Lied der Uhlich: „Männer suchen stets zu naschen". Terzett: Lange, Mozart, Schikaneder: „Liebes Mandel, wo ist's Bandel?" Arie der Lange: „Bald schlägt die Abschiedsstunde". Terzett: Uhlich, Lange, Mozart: „Ich bin die erste Sängerin". Schlußgesang: „Künstler müssen freilich streben".

---

## Das Nachtlager in Granada.

Romantisch Opr in 2 Aktn von Konradin Kreutzer.
Text von Karl von Braun.

Personen: Gabriele = Sopran; Gomez, ein junger Hirte = Tenor; ein Jäger = Bariton; Ambrosio, ein alter Hirte, Gabrielens Oheim = Baß; Vasco u. Pedro, Hirten = Tenor u. Baß; Graf Otto, ein deutscher Ritter. — Ort: Spanien. Zeit: 16. Jahrhundert.
Wien 1834.

**1. Akt.** Hirtendorf im Gebirge. Gabriele klaat ihr Leid, daß ihr Täubchen von einem Adler geraubt ist („Da mir alles nun entrissen"). Gomez kommt zu ihr, der sie liebt, aber nicht heiraten darf, da Ambrosio sie zur Ehe mit Vasco zwingen will. Er hat die Idee, die Hilfe des Prinzregenten anzurufen, der in der Nähe jagt (Duett: „Trauernd trieb ich meine Heerde"). Er eilt fort. Ein Jäger kommt vom Gebirge herab und bringt Gabrieles Täubchen, das er dem Adler abgejagt. Da er fremd ist, frägt sie ihn, wer er sei (Romanze des Jägers: „Ein Schütz bin ich, in des Regenten Sold"). Da er beim Regenten ist, erzählt sie ihm gleich, was Gomez vor hat und er verspricht ihr beizustehen In dem Augenblick, als er ihr zur Bekräftigung seiner Worte einen Kuß giebt, kommen die Hirten Ambrosio, Vaslo und Pedro (Quintett: „Hinweg! — Verwegener kannst Du Dich erfrechen"). Er bittet sie um Herberge und bietet reichen Lohn, was die Habsucht der Hirten erweckt und Vascos Eifersucht trägt zu dem Gedanken bei, den Jäger in der Nacht zu ermorden. Als auch die andern Hirten in das Thal herabziehen, bieten sie dem Fremden Willkommen und dem Gast die Zeit zu kürzen, singt Gabriele die Romanze vom Maurenschloß („Wer klagt am Gitterfenster"). Gabriele ahnt, daß die drei Hirten Verderben brüten, als sie den Jäger ins Nachtquartier führen (Chor und Ensemble: „Schon die Abendglocken klangen").

**2. Akt.** Felsenlandschaft. Recitativ und Arie des Gomez: „Wem mag das Roß wohl hören?" Eine Schar Jäger kommt und fragt ihn nach dem Kameraden. Er weist sie nach dem Maurenschloß. (Bei den meisten Bühnen bleibt dieser Eingang des 2. Aktes fort)

Verwandlung: Verfallenes Mauerschloß. Der Jäger wird von den Hirten hereingeführt und bleibt allein (Szene: „Die Nacht ist schön“ und Arie: „Fürwahr es ist ein Abenteuer“). Er schläft ein, doch Gabriele kommt und erweckt ihn (Romanze: „Leise wehet, leise wallet rings der Tau“). Sie warnt ihn vor den Hirten und nun findet er auch, daß seine Büchse unbrauchbar gemacht ist; er erfaßt sein Schwert, als Pedro, Vasco und Ambrosio in der Dunkelheit hereinschleichen (Quartett: „Nun Schwert heraus, die Klinge blank“). Als er den Schurken zuruft, daß er der Prinz-Regent ist, ahnt Ambrosio furchtbare Strafe und will ihn um so eher töten, wird aber verwundet. Da stürzt Gabriele herein, der Jäger stößt in sein Horn und sein Gefolge, das ihn sucht, wird hierdurch herbeigerufen. Jetzt erfährt auch Gabriele, daß der Fremde der Prinz-Regent ist und er belohnt ihre Treue, indem er ihr Gomenz, den Geliebten, zum Mann giebt.

## Die Nachtwandlerin.

Oper in 3 Akten von Bellini. Text von Romani. Deutsch von Friederike Ellmenreich.

Personen: Graf Rudolf = Bariton; Therese, Müllerin = Sopran; Amine, eine von Therese angenommene Waise = Sopran; Elwin, ein reicher Gutsbesitzer = Tenor; Lisa, Wirtin = Alt; Alexis, ein Landman = Baß; ein Notar. — Ort: ein Dorf in der Schweiz. Zeit: 19. Jahrhundert. Mailand 1831.

1. Akt. Platz im Dorfe. Chor: „Vivat hoch Amina“. Die Freunde gratulieren Amina, die sich mit Elwin verheiraten wird, worüber Lisa bekümmert ist, die Elwin liebt und darum Alexis zurückweist. Das Volk preist Amine (Chor: „Ja, Helvetiens schönste Blume ist die reizende Amine“). Amine kommt, dankt den Freunden und vor allem ihrer Pflegemutter Therese (Arie: „Laß die teure Hand hier ruhen“). Amine möchte auch Lisa und Alexis glücklich sehen, doch verhält sich die Wirtin abweisend. Elwin tritt auf und begrüßt die Geliebte (Duett: „Hier nimm den Ring der Treue“) Ein Fremder naht, Graf Rudolf, als Unbekannter (Arie: „Ja, die Heimat seh' ich wieder“). Er erblickt Amine und bewundert deren Schönheit. Dann verkündet er den Leuten, daß Rudolf, der Schloßherr, noch lebe und man erzählt ihm, daß auf dem Schlosse ein Gespenst hause, das in trüben Mondnächten dort erscheine. Da Rudolf mit einer Huldigung auf Amines Schönheit geht, wird Elwin eifersüchtig (Duett: „Ich beneide das säuselnde Kosen“).

2 Akt. (Auch als Verwandlung des 1. Aktes eingereiht). Gastzimmer. Rudolf scherzt mit Lisa und sie begrüßt ihn als den Grafen. Auf ein Geräusch eilt Lisa fort und Amine kommt, nachtwandelnd, in Rudolfs Zimmer. Elwins Liebe gedenkend, fängt sie an sich zu entkleiden. Lisa lauscht, hält sie für eine

Verräterin und ruft Elwin mit den Landleuten herbei. Die eingeschlafene Amine, welche Rudolf diskret allein gelassen, erwacht und sieht Elwin, der sie als Ungetreue von sich stößt. Niemand glaubt der Versicherung ihrer Unschuld

**3. Akt.** Platz im Walde. Die Landleute sind auf dem Weg zum Schlosse, den Grafen zu begrüßen (Chor: „In des Wäldchens sanft kühlenden Schatten"). Amine trifft mit Elwin zusammen, der sie abermals zurückweist und jedes Band für gelöst erklärt, indem er ihr den Verlobungsring entreißt.

Verwandlung: Landschaft mit Mühle und Brücke. Alexis wirbt wieder um Lisa, die nichts von ihm wissen will, umsomehr, als die Landsleute ihr verkünden, daß Elwin nunmehr sie zum Altar führen werde. Elwin naht und bestätigt das zur Freude Lisas. Da tritt Graf Rudolf hinzu, hält ihn zurück und erklärt die Anwesenheit Amines in seinem Zimmer; sie sei eine Nachtwandlerin. Elwin will das nicht glauben, als aber Therese ein Tuch Lisas bringt, das diese im Zimmer Rudolfs verloren, wendet er sich auch von Lisa ab. Aufs neue versichert Rudolf Amines Unschuld, als diese selbst zum Erstaunen aller, im Traum wandellos erscheint. (Amine: „Die Glocken verkünden der Trauung Stunde"). Jetzt erkennt Elwin sein Unrecht, auf Rudolfs Geheiß tritt er leise zu ihr, giebt ihr den Ring zurück und als sie erwacht, liegt sie in den Armen des Geliebten (Arie: „Ach, Gedanken nicht ermessen die Wonne, die ich fühle").

---

## Nero.

Oper in 4 Akten von A. Rubinstein. Text, nach der französischen Dichtung, von J. Barbier.

Personen: Nero Claudius, Imperator = Tenor; Julius Vindex, Fürst von Aquitanien = Bariton; Tigellinus, Präfekt der Prätorianer = Bariton; Balbillus, Astrolog = Baß; Saccus, Poet = Tenor; Severus, Oberpriester = Baß; Terpanter u. Kitharist, Freigelassene der Agrippina = Tenor; Poppäa Sabina = Sopran; Epicharis, eine Freigelassene = Alt; Chrysa, ihre Tochter = Sopran; Agrippina, Neros Mutter = Alt; Lupus, ein Knabe = Sopran; Piso, Rufus, Sporus u. Messala, Verschworene = kleine Gesangspartieen. — Ort: Rom. Zeit: 59 - 68 n. Chr.
Hamburg 1879.

**1. Akt.** Atrium bei Epicharis. Der Gallierfürst Vindex schützt Chrysa, die von Nero verfolgt wird. Als der Kaiser nicht von dem Mädchen läßt, reicht deren Mutter Epicharis ihr einen Trank, worauf Chrysa tot zu Boden stürzt. Vindex wird verhaftet.

**2. Akt.** Auf Poppäas, seiner Geliebten Wunsch, tötet Nero seine Gemahlin Octavia. Agrippina, des Kaisers Mutter, wirbt um Poppäas Gunst, indem sie ihr Schmuck sendet, worunter ein Armband mit Chrysas Bild, das Poppäa anlegt. Als Nero erfährt, daß Chrysa nicht tot, aber entführt sei, will er Epicharis

und Vindex hinrichten lassen. Pappäa bittet um Gnade und da er an ihrem Arm das Bild Chrysas erblickt, wird er dadurch milder gestimmt und gewährt die Bitte.

3. Akt. Gemach bei Epicharis. Agrippina war es, die Chrysa entführt hatte, doch Vindex befreit sie. Beide gestehen sich ihre Liebe, wobei Chrysa sich als Christin bekennt. Nero kommt, da er den Aufenthalt Chrysas entdeckt, doch Poppäa ist gefolgt und beschützt das Mädchen. Da erschallt der Ruf: Rom brennt, was Nero lachenden Mundes hört, denn er selbst ist der Urheber des Feuers, dessen Anstiftung er den Christen aufzubürden gedenkt.

Verwandlung: Platz in Rom. Das Volk tobt gegen die Christen und als Chrysa als solche erkannt wird, ermordet man sie.

4 Akt. Straße in Rom. Verschwörung von Tipellinus und Valbillus gegen Nero. Als das Volk hört, daß der Kaiser entflohen, schreit es nach Rache.

Verwandlung: Das Mausoleum des Augustus. Nero stürzt herein und wird wahnsinnig, als ihm in einer Vision seine sämtlichen Opfer erscheinen. Von Saccus wieder zur Besinnung gebracht, entflieht er.

Verwandlung: Campagna. Vindex zieht mit Heeresmacht gegen Rom. In einem Gebüsch entdeckt, läßt sich der zum Selbstmord zu feige Nero von Saccus erdolchen.

---

## Der Nordstern.

Komische Oper in 3 Akten von Meyerbeer. Text von Scribe. Deutsch von Rellstab.

Personen: Peter Michaeloff, Zimmermann = Bariton: Georg Skawronsky, Tischler = Tenor; Katharina, seine Schwester = Sopran; Praskovia, seine Braut = Sopran; Danilowitsch, Zuckerbäcker = Tenor; Gritzenko, Unteroffizier = Baß; Reynolds, Schankwirt = Baß; General Tscheremeteff; Oberst Kermoloff; Natalia u. Eskimona, Marketenderinnen = Sopran u. Mezzosopran; Ismailoff, ein Kosak — Ort: Wiborg, das russische Lager und Zarenpalast in Petersburg. Zeit 18. Jahrhundert.

Paris 1854. — Die Musik zu dieser Oper ist meist dem „Feldlager in Schlesien" (siehe diese) entlehnt.

1. Akt. Dorf bei Wiborg. Unter einer Verkleidung als Zimmermann lernt Zar Peter Katharina kennen, die in Männerkleidern für ihren Bruder Georg Soldatendienste thun will.

2. Akt. Russisches Lager. Militärische Evolutionen und Gesänge, Katharina als Rekrut verkündet eine Verschwörung gegen den Zaren, die Peter rechtzeitig am Ausbruch verhindert.

3. Akt. Zarenpalast. Peter sehnt sich nach Katharina, welche er tot glaubt. Sie lebt indessen, doch hält man sie für irrsinnig. Peter läßt sie kommen, führt sie in seinen Garten, der ganz wie das Dorf bei Wiborg hergerichtet ist und erweckt ihre Erinnerung.

Als nun der Zar in seiner Verkleidung als Zimmermann kommt, stürzt sie liebejauchzend zu ihm. Er giebt sich zu erkennen und läßt sie als Zarewna schmücken.

## Norma.

Oper in 2 Akten von Bellini. Text von Romani.

Personen: Sever, römischer Prokonsul in Gallien = Tenor; Oroviſt, Haupt der Druiden = Baß; Norma, dessen Tochter, eine Seherin = Sopran; Adalgisa, Priesterin im Haine der Irminsäule = Alt; Klotilde, Normas Freundin = Sopran; Flavius, Severs Begleiter = Tenor; Normas und Severs Kinder. — Ort: Gallien, der heilige Hain und Irmins Tempel.

Mailand 1831.

**1. Akt.** Hain. Ein geheimer Liebesbund verknüpft die Seherin Norma mit Sever, dem sie bereits zwei Kinder geboren. Sever hat vor Norma die Priesterin Adalgisa geliebt, welche man von ihm entfernt hat und die er seitdem nicht wieder gesehen. Als er sie nunmehr im Tempel findet, erwacht die Liebe zu ihr in seinem Herzen und beide beschließen zu entfliehen. Die nichtsahnende Adalgisa enthüllt Norma ihr Vorhaben und diese verflucht den Sever.

**2. Akt.** Normas Gemach. Norma will ihre Kinder töten, vertraut sie aber dann der Adalgisa an. Als Sever die Geliebte aus dem Tempel rauben will, wird er ergriffen und getötet, sich sterbend mit Norma vereinigend.

**Gesänge: 1. Akt.** Oroviſt und Chor: „Steig' auf den Hügel, Druidenschar". Szene und Cavatine Severs: „Mit Adalgisa Hand in Hand stand ich an Roms Altare". Chor: „Norma schreitet". Szene und Cavatine Normas: „Keusche Göttin im Silberglanze". Szene und Duett zwischen Sever und Adalgisa: „Geh' und opf're den falschen Göttern". Recitativ, Duett und Terzett: Norma, Adalgisa, Clotilde, dann Sever: „Gehe und verbirg sie Beide", „Hier stahl er mir den Frieden", „Norma, in dieser Stunde nicht".

**2. Akt.** Szene Normas: „Beide im Schlafe, sie sehen nicht das Eisen, das sie durchbohrt". Recitativ und Duett zwischen Norma und Adalgisa: „Ach Adalgisa, höre mein Flehen" — „Sieh, o Norma, o hab' Erbarmen".

Verwandlung: Wald. (Auch 3. Akt). Chor und Oroviſt: „Noch nicht fort?"

Verwandlung: Tempel. Norma, Clotilde, Chor: „Er kehrt zurück!" Schlachtgesang der Gallier: „Kämpfe! kämpfe!" Recitativ und Duett zwischen Sever und Norma: „Nun bist Du in meinen Händen". Finale: „Ein neues Opfer liefere ich Eurem Grimme".

## Die Nürnberger Puppe.

Komische Oper in 1 Akt von Ad Adam. Text von de Leuven und Beauglan.

Personen: Cornelius, Spielwarenhändler = Baß; Benjamin, sein Sohn = Tenor; Heinrich, sein Neffe = Bariton; Bertha = Sopran. — Ort: Der Spielwarenladen des Cornelius. Zeit: 19. Jahrhundert. Paris 1852.

Cornelius hat eine lebensgroße Puppe angefertigt und lebt in dem Wahn, daß dieselbe zu einer von den Elementen beeinflußten Zeit lebendig werden könnte, dann soll sie die Braut seines Sohnes werden. Während er mit Benjamin zu einer Lustbarkeit geht, empfängt Heinrich seine Geliebte. Bertha, und als sie von den frühzeitig Zurückkehrenden überrascht werden, entwischt Bertha in das Kabinet der von Heinrich zerbrochenen Puppe, zieht deren Kleider an und wird so von Cornelius herausgezogen, der den Zeitpunkt für das Menschwerden der Figur für gekommen hält. Zu seiner Freude wird die Puppe lebendig, Bertha beträgt sich aber so wild, daß Cornelius froh ist, wie sie wieder erstarrt. Schnell setzt Bertha die Puppe wieder an ihre Stelle, die nun von Cornelius, der sie für Teufelswerk hält, zertrümmert wird. Heinrich erhält zum Lohn für seine diesbezügliche Warnung die Erlaubnis, Bertha heiraten zu dürfen.

---

## Oberon, König der Elfen.

Oper in 3 Akten von C. M. v. Weber. Text, nach dem Englischen des Planché, von Th Hell.

Personen: Oberon = Tenor; Titania = stumm; Puck = Alt; Droll = Sprechrolle; Hüon von Bordeaux = Tenor; Scherasmin, sein Knappe = Bariton; Harun al Raschid = Sprechrolle; Rezia, seine Tochter = Sopran; Fatime, deren Sklavin = Sopran; Namuna, Prinz Babekan, Emir Almansor, Roschana, seine Gemahlin, Nadine, deren Sklavin und Abdallah, ein Seeräuber = Sprechrollen; Meermädchen = Sopran.

London 1826. — Diese Oper enthält eine mehr als übliche Anzahl Sprechrollen, das veranlaßte Franz Wüllner, den ganzen Dialog in Recitative zu verwandeln; dadurch entstanden folgende neue Gesangspartien: Harun al Raschid = Bariton; Droll = Alt; Babekan = Tenor; Almansor = Bariton; Roschana = Alt; Abdallah = Baß; Kaiser Karl = Baß.

**1. Akt.** Oberons Palast (Chor der Elfen: „Leicht, wie Feentritt nur weht"). Puck erzählt von einem Streit Oberons mit Titania und der Elfenkönig hat geschworen, sich nur dann wieder mit ihr zu vereinigen, wenn sie ein Liebespaar fänden, dessen Treue Not und Tod überstände. Schon gereut aber Oberon der Schwur und er unterstützt darum den Ritter Hüon von Bordeaux, der in Notwehr einen Verwandten Kaiser Karls erschlagen und nicht eher Begnadigung finden soll, bis er nach

Bagdad gezogen, den Mann, der dem Kalifen zur Linken sitzt, getötet, und die Prinzessin Rezia als seine Braut geküßt habe. Oberon zeigt dem Ritter Rezia im Traum und umgekehrt Rezia den Hüon und läßt Liebe in beider Herzen entstehen. Dann reicht er ihm ein Zauberhorn, dessen leiser Klang ihn vor Gefahren schützt und dessen lauter Ruf den Elfenkönig selbst herbeiruft. Ebenso schenkt er Hüons Knappen einen leeren Becher, der sich aber stets füllt, sobald man ihn an die Lippen bringt. Dann führt Oberon durch seinen Zauberstab Hüon und Scherasmin direkt nach Bagdad (Hüons Arie: „Von Jugend auf im Kampfgefild").

Verwandlung: Im Harem zu Bagdad. Rezia soll den Prinzen Babekan heiraten, erwartet aber jetzt mit Sehnsucht ihr Traumbild (Arie: „Ja, o Herr! mein Heil, mein Leben"). Fatime bringt die Nachricht, daß Hüon in Bagdad sei.

**2. Akt.** Saal im Palast des Kalifen. Chor und Recitative. Hüon dringt in den Saal, tötet den zur Linken des Kalifen sitzenden Prinz Babekan und küßt Rezia als seine Braut. Die Wunderkraft des Hornes hilft ihm und der Geliebten unbehelligt fort.

Verwandlung: Palastgarten. Scherasmin findet Fatime und wirbt um sie (Arie Fatimes: „Arabiens einsam Kind"). Hüon kommt mit Rezia zu ihnen und Oberon, der sie vor Treubruch warnt, führt sie wieder durch seinen Zauber in den Hafen von Askalon (Quartett: „Ueber die blauen Wogen").

Verwandlung: Felsenhöhle auf einer wüsten Insel. Um das Paar zu prüfen, befiehlt Puck den Geistern („Geister der Luft und Erd' und See"), das Schiff mit Hüon und Rezia an den Strand zu werfen. Hüon trägt Rezia herein und als sie aus einer Ohnmacht erwacht, geht er, um nach Rettung zu schauen. Als sie allein ist, erblickt sie auf dem Meer ein Schiff und winkt es heran (Arie: „Ocean, du Ungeheuer"). Aber es sind Seeräuber, die sie entführen. Oberon läßt Hüon durch seine Geister nach Tunis bringen, der Heimat der Räuber. Wandeldekoration und Gesang der Meermädchen („O, wie wogt es sich schön auf der Flut"). Oberon und Puck rufen die Geister zum Tanz im Mondschein herbei.

**3 Akt.** Garten des Emirs von Tunis. Fatime weilt hier als Sklavin (Arie: „Arabien, mein Heimatland"). Scherasmin, der ebenfalls aus dem Meere gerettet, tritt zu ihr (Duett: „An dem Strande der Garonne"). Dem nahenden Hüon eilen beide entgegen und sagen ihm zu seiner Freude, daß Rezia, wenn auch als Sklavin des Emirs, hier weile. Auf der Freunde Rat soll er Rezia im Gewande eines Gärtners zu befreien suchen (Terzett: „So muß ich mich verstellen").

Verwandlung: Halle im Palast des Emirs (Cavatine Rezias: „Traure, mein Herz"). Almansor wirbt um ihre Liebe,

doch weist sie ihn zurück. Als darauf Almansor die kommende Roschana wegwerfend behandelt, beschließt diese, sich an dem Emir zu rächen. Sie bestellt Hüon zu sich und dieser glaubt, es sei Rezia, die er sehen würde („Ich juble in Glück und Hoffnung neu"). Als es aber Roschana ist, die er nun erblickt und die mit ihm den Thron besteigen will, wenn er Almansor getötet, weicht er entsetzt zurück und als der Emir sie überrascht, wird er zum Tode geführt.

Verwandlung: Platz vor dem Palast. Rezia soll mit Hüon auf dem Scheiterhaufen sterben. Da findet Scherasmin das verloren gegangene Horn und ruft Oberon herbei. Dieser, dem das Paar durch seine Treue den Schwur gelöst und der sich mit Titania wieder vereinigt, führt nun Hüon, Rezia, Scherasmin und Fatime durch einen Wink nach Aachen, wo sie von Kaiser Karl in Gnaden aufgenommen werden.

---

## Orpheus und Eurydike.

Oper in 4 Akten von Gluck. Text von Calzabigie; deutsch von Sander

Personen: Orpheus = Alt; Eurydike = Sopran; Amor = Sopran. Wien 1762.

**1. Akt.** Am Grabmal der Eurydike. Orpheus und seine Freunde trauern am Grab Eurydikes (Chor, Szene und Arie: „Du, die ich heiß geliebt", Szene: „Eurydike, teurer Schatten", Arie: „Jeglicher Freude leer", Recitativ: „Eurydike, wo ich auch weile" und Arie: Ewig von Dir getrennt"). Er fleht die Götter an, ihm die Gattin wieder zu geben; er ist bereit, sie wieder zu gewinnen, zu des Acherons Gestaden hinabzusteigen (Recitativ: „Götter! grausame Götter, Todesgötter!"). Da erscheint Amor (Recitativ: „Vertraue dem Amor"). Er sagt ihm, daß Zeus sich seiner erbarme und er hernieder steigen solle, Minos und Pluto durch seinen Gesang zu rühren. Aber nicht zurück auf Eurydike darf er den Blick wenden, ehe er des Styges Gestade verlassen, sonst wird sie ihm wieder entrissen, auf ewig dem Tode geweiht (Amors Arie: „Mit Freuden den Willen der Götter erfüllen"). Orpheus ist entschlossen, das Werk zu vollbringen und fleht die Götter um Beistand an („Was sprach er, hört' ich recht?").

**2. Akt.** Der Tartarus. Szene und Chor der Furien. Furienballett. Orpheus erscheint am Eingang (Chor: „Wer ist der Sterbliche"). Orpheus fleht sie um Erbarmen an („Ach erbarmt Euch mein"). Der Chor erwidert („Frevelnder Sterblicher, was brachte Dich hierher?") und Orpheus schildert seinen Schmerz (Arie: „Tausend Qualen, drohende Schatten"). Durch den Gesang werden die Furien sanfter gestimmt („Durch welche Zauberkraft").

Orpheus singt weiter (Arie: „Todesgötter, laßt Euch erweichen") und man macht ihm den Weg frei.

**3. Akt.** Das Gefilde der Seligen. Tanz. Orpheus kommt (Recitativ: „Welch reines Licht"). Er frägt, wo Eurydike weilt? Der Chor der Seligen tröstet ihn („Holder Sänger, sei willkommen"). Nach einem neuen Tanz führen sie ihm die Gattin zu („Wer von den Erschaff'nen bliebe") und er verläßt, ohne Eurydike, der er die Hand gereicht, anzusehen, das Gefilde der Seligen.

**4. Akt.** Wald. Orpheus führt Eurydike aus einer Höhle heraus („Eile, folge meinen Schritten"). Er hat ihre Hand gelassen und drängt die um den Zauber fragende Gattin, dem Orte zu enteilen. Sie fleht um einen Blick der Liebe, da er sie aber nicht anschaut, wünscht sie verzweifelnd neuen Tod (Duett: „Komm! o komm mit Deinem Schatten!"). Eurydike glaubt sich nicht mehr geliebt (Arie: „Welch' furchtbare Qualen"). Dann kann er sich nicht mehr halten, vergißt Amors Warnung und wendet den Blick auf sie. Zugleich fühlt Eurydike neuen Tod und stirbt. Orpheus verzweifelt („Weh' mir! es ist geschehen" und Arie: „Ach, ich habe sie verloren"). Nicht zum zweitenmale soll sie allein den düstern Weg gehen, er will mit ihr sterben. Da naht Amor („Halt ein, was thust Du?"). Orpheus hat genug geduldet, darum erweckt der Gott der Liebe Eurydike abermals zum Leben und führt sie zur Erde.

Verwandlung. Vor Amors Tempel. (Finale: Orpheus, Eurydike und Chor: „Triumph sei Dir, Amor".)

---

## Othello, der Mohr von Venedig.

Oper in 3 Akten von Rossini. Text, nach dem Italienischen, von Grünbaum.

Personen: Der Doge von Venedig = Baß; Rodrigo, sein Sohn = Tenor; Othello = Tenor; Brabantio = Baß; Desdemona, seine Tochter = Sopran; Jago und Lucio, Othellos Freunde = Bariton und Tenor; Emilia, Vertraute der Desdemona — Alt. — Ort: Venedig. Zeit: 15. Jahrhundert. Neapel 1816.

**1. Akt.** Marktsplatz in Venedig. Senat und Volk von Rom begrüßen den siegreich von Cypern heimkehrenden Othello und dessen Bitte, als Sohn der Republik aufgenommen zu werden, wird vom Dogen gewährt. Rodrigo weiß, daß Othello Desdemona liebt und fürchtet nun die Geliebte, deren Hand Brabantio ihm bereits zugesagt, zu verlieren, doch Jago, Othellos falscher Freund, beruhigt ihn, da er ein Mittel habe, Desdemona und den Mohren zu entzweien (Chor des Volkes: „Heil Othello! Heil dem Sieger"; Recitativ und Arie Othellos: „Von Dank und süßer Liebe" und Recitativ und Duett zwischen Jago und Rodrigo: „Auf! Fasse Mut!").

Verwandlung: Zimmer bei Brabantio. Desdemona ist mit Othello heimlich vermählt; sie fürchtet in falschen Verdacht zu kommen, da ein Brief, den sie an Othello gerichtet, von ihrem Vater aufgefangen wurde, der ihn für an Rodrigo geschrieben hält. Dieser Brief ist aber in Jagos Besitz und er soll ihm als Waffe dienen. Nun kommt Brabantio mit Gästen, um Rodrigos Verlobung mit Desdemona zu feiern; Othello tritt aber dazwischen und erklärt, daß er Desdemonas Herz besitze (Recitativ und Duett zwischen Desdemona und Emilia: „O laß es klar mich sehen, der Wahrheit tröstend Licht". Scene mit Jago, Rodrigo, Brabantio und Desdemona; Finale: „Holde Liebe komm und weihe").

**2. Akt.** Zimmer Desdemonas. Szene zwischen Desdemona und Rodrigo, dem sie gesteht, daß Othello ihr Gatte ist (Rodrigos Arie: „Der Liebe bange Klagen"). Desdemona beschließt, sich ganz in Othellos Arme zu werfen.

Verwandlung: Garten Othellos. Jago sucht den Mohren auf, erregt seine wilde Eifersucht, giebt ihm durch den Brief einen Beweis und Othello fordert Rodrigo zum Duell, seine Gattin, die zu ihm geeilt ist, zurückstoßend (Szene und Duett zwischen Othello und Jago: „Meine Schande muß ich hier sehen". Dazu Rodrigo; Terzett: „Komm folg mir! Mit dem Leben sollst Du den Schimpf bezahlen". Finale: Desdemona, Brabantio, Männer- und Frauenchor: „Was bringt Ihr mir für Kunde").

**3. Akt.** Desdemonas Schlafgemach. Mit trüben Ahnungen entläßt Desdemona ihre Freundin Emilia und geht zu Bett; Othello kommt, weckt sie und tötet sie in wilder Wut. Da kommt die Nachricht, daß Rodrigo, den er vermeint erschlagen zu haben, lebt. Jago aber sterbend seinen Schurkenstreich bekannt hätte. Als Brabantio kommt, um ihm Versöhnung anzubieten, zeigt er ihm die ermordete Tochter und durchsticht sich (Szene zwischen Desdemona und Emilia und Arie: „Im Schatten einer Weide". Recitativ Othellos: „Es ist gelungen", Szene und Duett zwischen ihm und Desdemona: „Mich soll kein Droh'n erschüttern". Finale: „Rodrigo — ist gerettet").

---

## Othello.

Oper in 4 Akten von Verdi. Text von Boito.

Personen: Othello = Tenor; Jago = Bariton; Cassio = Tenor; Rodrigo, ein edler Venetianer = Tenor; Lodovico = Baß; Montano = Baß; Desdemona = Sopran; Emilia, Jagos Gattin = Mezzosopran. — Ort: Cypern Zeit: 15. Jahrhundert.
Mailand 1877.

**1. Akt.** Platz vor dem Schlosse. Aus dem Sturm gerettet und jubelnd begrüßt landet Othello in Cypern. Jago, der Cassio haßt, weil er von Othello vorgezogen und Othellos grimmer Feind wegen der Zurücksetzung ist, stachelt erst Rodrigo auf, sich um

Desdemonas Liebe zu bewerben, dann verleitet er Cassio zum Trinken, wodurch dieser in gereizte Stimmung versetzt wird und in einem Streit gegen Montano das Schwert zieht, wofür er von Othello den Abschied erhält. Sich in Liebe mit Desdemona ergehend, bringt Othello die Gattin in das Schloß.

2. **Akt.** Saal im Schlosse. Die Szene entwickelt sich fast genau nach Shakespeare. Jago rät Cassio, sich wegen Wiederanstellung an Desdemona zu wenden, dann bringt er Desdemone bei den Mohren mit Cassio in Verdacht und erregt Othellos grimmige Eifersucht und Wut. Er nimmt seiner Frau ein, von Desdemona verlorenes Taschentuch ab und will dies als Beweis der Untreue benützen. Mit Othello vereint, schwört er, Rache zu üben.

3. **Akt.** Hauptsaal im Schlosse. Jago holt Cassio, während Desdemona für diesen bei Othello bittet. Dann führt Jago Cassio herein und weiß es so einzurichten, daß der lauschende Othello durch Cassios Worte rasend wird. Er spielt Cassio Desdemonas Taschentuch in die Hände und nimmt es ihm dann vor Othellos Augen ab, es diesem nach Cassios Abgang gebend. Nun ist Othello überzeugt. Als eine venetianische Gesandtschaft ihm die Abberufung überbringt, schlägt er Desdemona vor den Augen der entsetzten Edelleute und sinkt zuletzt, unter schadenfrohem Lachen Jagos, vor Zorn und Wut ohnmächtig zu Boden.

4. **Akt** Schlafgemach Desdemonas. Unter Todesahnungen entläßt Desdemona Emilia und geht zur Ruhe. Othello kommt und tritt vor ihr Bett, dann erweckt er sie, gerät in neue Raserei und nicht mit Gift, nein, wie der schurkische Jago ihm geraten, mit den eigenen Händen tötet er sie, indem er sie erwürgt. Da stürzt Emilia herein, sieht die entsetzliche That und enthüllt Jagos Lüge, da er das Tuch von ihr erhalten. Als auf Emilias Geschrei die Edelleute hereinkommen, tötet sich Othello an der Leiche seiner Gemahlin.

---

## Parsifal.

Ein Bühnenfestspiel von Richard Wagner.

**Personen:** Amfortas = Bariton; Titurel = Baß; Gurnemanz = Baß; Parsifal = Tenor; Klingsor = Bariton; Kundry = Mezzosopran. — **Ort:** Gebiet und Burg Montsalvat und Klingsors Zauberschloß.
**Bayreuth 1882.**

Dem Werke zu Grunde liegt Wolfram von Eschenbachs Epos „Parcival" (1204). Die aus dem königlichen Blut der Gralshüter stammende Herzeleide hat ihren Sohn Parsifal im einsamen Wald erzogen, damit er nicht, wie sein Vater Gamuret, auf Heldenfahrten auszieht und wie dieser frühen Tod erleide. Unbekannt mit der Welt, wächst Parsifal so als „reiner Thor" auf.

Als er aber durch Zufall eines Tages durchziehende Ritter erblickt, erwacht in ihm die Lust und er drängt in die Mutter, ihn hinaus zu lassen in die Welt.

**1. Akt.** Waldlichtung in der Nähe der Gralsburg Montsalvat, die auf einem unnahbaren Berg gelegen ist. Amfortas ist von seinem alten Vater Titurel zum Hüter des Grals ernannt. Gegen die heiligen Gebote hat Amfortas, den Verführungen Kundrys erliegend, eines Weibes Liebe genossen und ist dabei von dem Zauberer Klingsor mit seiner eigenen, ihm entfallenden Lanze verwundet worden Die Lanze des Amfortas ist die Waffe, womit Longinus Christus am Kreuze getroffen und welche von Josef zugleich mit dem Gral — das Gefäß, wo hinein des Erlösers Blut geflossen — gerettet wurde. Amfortas ist tödlich verwundet, leidet unsägliche Schmerzen, kann aber nicht sterben und auch nicht eher geheilt werden, bis ein „reiner Thor, durch Mitleid wissend", die Lanze zurückbringt und seine Wunde damit berührt. Kundry steht in der Gewalt des Zauberers Klingsor, ist aber zugleich die Botin des Grals, die einst Christus am Kreuze verhöhnt und nun, sich nach Erlösung sehnend, zwischen Gutem und Bösem wechselnd, ruhelos auf Erden irren muß. Sie bringt Gurnemanz einen heilkräftigen Saft, als Amfortas nach dem nahen See zum Bade getragen wird. Gurnemanz erzählt jetzt die Vorhandlung und wie Klingsor, von Titurel als Gralsritter zurückgewiesen, einen Zaubergarten geschaffen, den er mit holden Frauen bevölkert, die nunmehr die Ritter des Grals verführen sollen. — Parsifal betritt das Gebiet der Gralsburg, verwundet mit einem Pfeile einen Schwan und wird zu Gurnemanz gebracht. Als Parsifal sein Vergehen mit seiner Unwissenheit entschuldigt, erkennt Gurnemanz in ihm den „reinen Thoren", der Amfortas heilen kann. Kundry verkündet Parsifals Herkunft und als der wunde Gralskönig zur Burg zurückgebracht wird, führt Gurnemanz den jungen Helden hinauf. Während er mit Parsifal aufwärts steigt, verwandelt sich die Gegend nach und nach, sodaß im scheinbaren Vorwärtsschreiten die beiden immer sichtbar bleiben, bis die Gralsburg erscheint. Am Schluß dieser Wanderung ist die Bühne in den Saal der Burg verwandelt. Die Gralsritter treten ein, man bringt den wunden Amfortas herein und dieser muß, gegen seinen Wunsch, das Wunder des Grals enthüllen, denn gerade durch dessen Anblick bleibt der Tod ihm fern. Parsifal staunt das Wunder an, doch in Erschütterung über Amfortas' Leiden vergißt er, die erlösende Frage zu thun und als er Gurnemanz gesteht, von allem nichts zu verstehen, wird er mit Scheltworten hinausgewiesen.

**2. Akt.** Das Verließ eines offenen Turmes mit Klingsors Zaubergerät. Da Parsifal naht, beschwört Klingsor Kundry und zwingt sie, diesen zu verführen, da er die Gefährlichkeit des jungen

Thoren erkannt. Er hat seine Kampflust erweckt, ihm Ritter entgegengesandt, die Parsifal bezwingt, worauf dieser in den Zauberturm eindringt. Klingsor versinkt mit dem Turm und sein Wundergarten mit den zauberischen Blumenmädchen erscheint an dessen Stelle. Sie umringen Parsifal, der ihnen widersteht, um bald darauf beinahe der in höchster Schönheit nahenden Kundry zu erliegen, denn sie rührt sein Herz, da sie ihm den Tod der Mutter verkündet. Als er sie aber küßt, erwacht der „tumbe Thor" zum Bewußtsein seiner Lage und er versteht jetzt, warum Amfortas leidet, es wird ihm klar, wie Hilfe zu bringen. Da nun Kundry gar berichtet, was sie einst an dem Erlöser verbrochen, weist er sie ganz zurück. Vergebens eilt Klingsor zu Hilfe und schleudert die von Amfortas geraubte heilige Lanze gegen Parsifal, denn sie bleibt über dem Haupte desselben schweben. Parsifal ergreift die Lanze, schlägt das Kreuz, worauf Klingsor mit seinem ganzen Zauber versinkt. Kundry flucht ihm, daß er umherirren solle nach der Gralsburg, aber Parsifal ruft ihr zu, sie wisse, wo sie ihn wiederfinden würde und dann solle sie erlöst werden.

**3. Akt.** Waldesrand in Frühlingspracht, Blumenaue, Quelle und Einsiedlerhütte Jahrelang ist Parsifal umhergeirrt und findet nun, wissend, den Weg zur Gralsburg. Hier am Waldesrand weilt Gurnemanz, der Kundry, die er aus langem Zauberschlaf erwachend gefunden, als Dienerin zu sich genommen. Gurnemanz ist, wie alle Gralsritter, gealtert, da Amfortas, seit Parsifals Scheiden, den stets verjüngenden Gral nicht mehr enthüllt hat. Als er aber die heilige Lanze in Parsifals Hand erblickt, erkennt er begeistert den „reinen Thoren" wieder. Es ist Charfreitag; Kundry, die nur noch das Wort „dienen" spricht, wäscht Parsifal, damit er geführt und gereinigt zur Burg ziehe, die Füße, während Gurnemanz ihm das Haupt salbt („Charfreitagszauber"). Darauf erlöst Parsifal Kundry, indem er sie zur Christin tauft. Alle drei wandern dann hinauf zur Burg, in derselben Art, wie im ersten Akt (Wandeldekoration). Die Gralsritter wollen den gestorbenen Titurel bestatten und Amfortas, auch zum Sterben bereit, will noch einmal den Gral enthüllen Als er aber bedenkt, daß ja der Anblick des Heiligtums seinen Tod verhindern wird, zeigt er seine Wunde und verlangt von den Rittern, daß sie ihn töten. Schon aber ist Parsifal eingetreten, er ergreift die heilige Lanze und heilt die Wunde, sie mit der Spitze berührend. Selbst geht er zum Gral und enthüllt ihn. Entseelt stürzt die erlöste Kundry zu Boden, noch einmal erwacht für einen Augenblick Titurel, seine Hände zum Segen ausbreitend und Amfortas, Gurnemanz und die Ritter huldigen Parsifal als neuem Gralskönig.

# Der Pfeifer von Hardt.

Romantische Oper in 5 Akten von F. Langer. Text, nach W. Hauffs Lichtensteinsage, von Dr. Herm. Haas.

Personen: Ulrich, Herzog von Württemberg = Baß; Hans, ein Spielmann, genannt „der Pfeifer von Hardt" = Bariton; Margarete, sein Weib = Alt; Bärbele, seine Tochter = Sopran; Herzog Wilhelm von Baiern = Baß; Georg von Sturmfeder, ein fränkischer Ritter = Tenor; Dietrich von Kraft, Ratsschreiber zu Ulm = Tenor; Bertha von Bessemer, seine Base = Sopran; Maria, Gräfin von Lichtenstein = Sopran; Ulrichs Reichsmarschall = Bariton; ein bairischer Ritter = Bariton; 1. und 2. Anführer der Bauern = Tenor und Baß; Hauptmann der Landsknechte = Tenor; 1. und 2. Landsknecht = Tenor; ein junges Mädchen = Sopran.

Stuttgart 1894.

**1. Akt.** Einzige Szene, als Vorspiel. Lager der aufrührerischen Bauern. Der Pfeifer von Hardt als Führer. Herzog Ulrich kommt zu ihnen und fordert sie zur Unterwerfung auf. Sie antworten ihm mit dem Lied des armen Konrad: „Wir sind die Grafen zu Nirgendheim". Als des Herzogs Reisige auf die Bauern eindringen, stürzt der Pfeifer zum Herzog, ihn erst mit der Streitaxt, dann mit dem Dolch bedrohend. Entwaffnet soll er mit zwei anderen Bauernführer sterben, doch Ulrich, dem des Pfeifers Mut imponiert, will ihn begnadigen, würfelt selbst, da der Pfeifer sich weigert, mit den beiden anderen Bauern um sein Leben und bringt den höchsten Wurf. Frei darf der Pfeifer zu Weib und Kind ziehen und von Ulrichs Großmut überwältigt, schwört er ihm ewige Treue.

**2. Akt.** Saal in Ulm, wo der schwäbische Bund gegen Ulrich versammelt. Georg von Sturmfeder kündigt die Ankunft des Baiernherzogs an und findet in dem Ratsschreiber Dietrich von Kraft einen alten Studiengenossen aus Tübingen. Beide geben sich den Erinnerungen hin. Bertha, Dietrichs Braut, kommt mit Maria von Lichtenstein, der Geliebten Georgs (Duett: „Es weilten meine Sinne"), worin Maria Georg auffordert, aus den Reihen der Feinde ihres Herzogs Ulrichs zu treten, was sein Fahnenschwur verhindert. Als aber der Herzog von Baiern ihn auffordert, auf Ulrich zu fahnden und ihn lebendig oder tot zu bringen, erklärt Georg, daß er kein Meuchelmörder sei. Darob vom Herzog beschimpft, sagt er ihm ab und verläßt das Bundesheer.

**3. Akt.** Zimmer im Bauernhause des Pfeifers. Hier weilt Georg, der von den schwäbischen Reitern, für den Herzog gehalten, verwundet, aber vom Pfeifer gerettet wurde. Margarete und Bärbele, die Georg still und entsagungsvoll liebt, pflegen ihn. Maria naht und besucht den noch bewußtlos daliegenden Georg, worauf sie mit dem Pfeifer nach Lichtenstein aufbricht. Bärbele wacht bei Georg weiter (Lied: „Schnurre, kleines Rädchen"). Als Georg zu sich kommt, erfährt er von Bärbele, was mit ihm vorgegangen. Er hört aber auch durch Margarete, daß Maria

von Lichtenstein allnächtlich einen Ritter auf Schloß Lichtenstein empfange. Halb genesen bricht Georg auf, den vermeintlichen Nebenbuhler zu töten.

**4. Akt.** Vor dem Burgthore des Schlosses Lichtenstein. Maria erwartet den Herzog Ulrich, der, aus seinem Lande vertrieben, vom Pfeifer in einer nahen Höhle verborgen wird und nachts zum Grafen von Lichtenstein schleicht. Ulrich kommt und wird von ihr eingelassen. Dann naht Georg, erwartet den rückkehrenden Herzog, fällt ihn an, wird aber von dem herzueilenden Pfeifer entwaffnet und dann erkannt. Georg frägt den Herzog, der ihn Mariens wegen beruhigt, wer er sei (Lied Ulrichs: „Wohl hatt' ich auch einst einen Namen").

Verwandlung: Nebenhöhle. Der Pfeifer führt Georg herein, schwört dem Herzog Treue, Ulrich nimmt seinen Schwur an und verspricht ihm, ihn an dem Tage, wo er wieder in sein Land einziehe, mit Maria zu vermählen.

**5. Akt.** Das Innere des Hauptthores von Stuttgart. Die Stadt ist vom schwäbischen Bund besetzt, doch sehnen jetzt schon die Bürger den Herzog zurück, da sich die Landsknechte zu übermütig benehmen. Der Pfeifer von Hardt wühlt durch seine Lieder („Mein Heimatland, mein Schwabenland") die Bürger noch mehr auf und als Ulrich mit seinem neuen Heere vor der Stadt erscheint, drängt er die Landsknechte zurück und öffnet im Verein mit den Bürgern dem Herzog das Thor. Schon naht Maria und Bärbele mit schwäbischen Bauernmädchen, den angestammten Herrn zu begrüßen und nachdem Ulrich von der Stadt Besitz ergriffen, vereinigt er seinen treuen Georg mit Maria und begnadigt ihnen zu Liebe den schwäbischen Bundesbevollmächtigten Dietrich von Kraft, der seiner Braut Bertha verspricht, künftig nicht mehr solch gefährliches Spiel zu treiben. Seine ganze Gunst aber schenkt der Herzog dem Pfeifer von Hardt, der nichts für sich beansprucht, als wie einst in früheren Tagen straflos sein Füchslein jagen zu dürfen und als Spielmann durch die Gaue zu ziehen.

## Der Postillon von Lonjumeau.

Komische Oper in 3 Akten von Ad. Adam. Text von Leuven und Brunswick.

Personen im ersten Akt: Chapelou, Postillon = Tenor; Bijou, Wagenschmied = Baß; Marquis v. Corcey = Baß; Madelaine, Wirtin = Sopran — Ort: Dorf Lonjumeau. Zeit: 1756 — Personen im zweiten und dritten Akt: Saint-Phar (Chapelou) = Tenor; Alcindor (Bijou) = Baß; Corcy = Baß; Bourdon = Baß; Frau von Latour (Madelaine = Sopran; Rosa, deren Kammermädchen. — Ort: Landhaus der Frau v. Latour bei Fontainebleau. Zeit: 1766.

Paris 1836.

**1. Akt.** Platz in Lonjumeau. Der mit einer schönen Stimme begabte Postillon Chapelou macht eben mit Madelaine

Hochzeit, als der Marquis Corchanlangt. Ein Rad an seinem Wagen ist zerbrochen und der auf Chapelou neidische Schmied Bijou beeilt sich, das Rad weider herzustellen, damit Chapelou als Postillon fahren müsse, wodurch die Hochzeitsfeier gestört. Er könnte zwar selbst als Stellvertreter fahren, aber weigert sich aus demselben Grunde. — Corcy, der Intendant der königlichen Vergnügungen, ist auf einer Entdeckungsreise nach einem neuen Tenor, hört jetzt Chapelou singen, macht diesem so glänzende Aussichten, daß derselbe Madelaine in Stich läßt und auf Nimmerwiederkehr mit dem Marquis fortfährt (Szene: Chor, Chapelou, Madelaine: „Heil und Glück sei der Stunde", mit Madelaines Lied: „Glaube Männchen mir". Duett: „Das ist doch schön, wie wunderbar". Ensemble: „Glückliches Paar" und Rondo Chapelous (Postillonslied): „Freunde, vernehmet die Geschichte". Terzett und Finale: Marquis, Chapelou, Bijou: „Du wirst Dein Glück nicht von Dir weisen", Madelaine, Bijou und Chor: „Komme Du mein süßes Leben").

**2. Akt.** Gartensaal. Unter dem Namen St. Phar ist Chapelou ein berühmter Sänger geworden. Auch Bijou ist ihm gefolgt, ist aber Choriſt geblieben Madelaine ist zu ihrer Tante ausgewandert, als reiche Erbin zurückgekehrt und gewinnt als Frau v. Latour St. Phars Liebe. Dieser ist ein großer Frauenjäger geworden, verspricht die Ehe, da er sich aber wegen der vor 10 Jahren erfolgten Hochzeit mit Madelaine nicht wirklich vermählen darf, so läßt er mit Bijous Hilfe den Opernsänger Bourdon als Priester verkleiden, um durch diesen Streich die Liebe der Frau v. Latour genießen zu können. Der Marquis von Corcy, der seine liebe Not mit den Launen St. Phars hat, bewirbt sich auch um Madelaine und während er glaubt, es geschehe für ihn, läßt sie, die St Phars Streich erfahren, durch ihn einen wirklichen Priester besorgen (Arie der Madelaine: „Ich soll ihn wiedersehen". Chor und Ensemble der königlichen Sänger: „Ach, welche Qual!" Romanze St. Phars: „Von frühster Morgenröte"; Arie Alcindors (Bijous): Von den Choristen unſ'rer Bühne"; Duett: St. Phar und Frau v. Latour: „O allerholdeste der Frauen". Chor und Finale: „Der Wünsche Zier hab' endlich ich erklommen").

**3. Akt.** Zimmer im Landhause. Marquis von Corcy zeigt den Betrug St. Phars an, aber nachdem dieser und seine Helfer Todesangst ausgestanden, giebt sich Madelaine dem glücklichen Chapelou zu erkennen und löst somit auch das vermeintliche Verbrechen auf. (Chor und Szene: „O welch ein Glück"; Arie St. Phars: „Ich werd' dem Adel mich verbinden"; Terzett: St. Phar, Alcindor, Bourdon: „Gehenkt! Gehenkt!" Duett: Frau v. Latour und St. Phar: „Sie sehen hier mich ängstlich stehen" und Finale: „Schnell, im Namen unſ'res Königs").

# Der Prophet.

Oper in 5 Akten von Meyerbeer. Text von Scribe.

Personen: Johann v. Leiden = Tenor; Fides, seine Mutter = Alt; Bertha, seine Braut = Sopran; Jonas, Matthiesen und Zacharias, Wiedertäufer = Tenor und Baß; Graf Oberthal = Bariton. — Ort: Holland, in und um Münster. Zeit: 1536.
Paris 1849.

**1 Akt.** Holländische Gegend. Bertha soll sich mit Johann vermählen, braucht dazu aber die Erlaubnis des Grafen Oberthal. Dieser kommt gerade dazu, um die Wiedertäufer, die das Volk aufwiegeln, wegzuweisen, hört dann Bertha und Fides an, verweigert aber seine Einwilligung, da ihm Bertha gefällt, und schleppt die beiden Frauen gewaltsam in seine Burg Die Wiedertäufer kehren zurück, das empörte Volk noch mehr aufreizend.

**2. Akt.** Schenke des Johannes in Leiden. Die jetzt hier weilenden Wiedertäufer wollen Johann verlocken, mit ihnen nach Münster zu ziehen, denn sie haben zwischen ihm und dem in Münster befindlichen Bilde des Königs David eine große Aehnlichkeit erkannt und wollen das zu ihrem Zweck benutzen. Trotzdem sie ihm einen Traum in darauf bezüglicher Weise erklären, weist er sie zurück, da die Liebe zu Bertha ihn hier hält. – Nun stürzt aber Bertha herein, sie ist entflohen; schon aber kommt Oberthal und stellt Johann vor die Wahl, Bertha herauszugeben oder seine Mutter sterben zu sehen. Johann liefert entsetzt Bertha aus, empfängt den Segen der geretteten Mutter. Als aber die Wiedertäufer ihm Rache versprechen, zieht er mit diesen fort

**3. Akt.** Lager der Wiedertäufer vor Münster. Ballett und Eisfest.

Verwandlung: Zelt. Oberthal ist gefangen worden und die Wiedertäufer wollen ihn zum Tod führen. Johann kommt dazu, schon ist er entschlossen, den Gräueln der Wiedertäufer zu entfliehen, als er von Oberthal hört, daß Bertha ihm entflohen sei und in Münster weile, wohin er gewollt, ihre Verzeihung zu erflehen. Ungehindert will Johann ihn ziehen lassen, als er die Kunde von einem Aufruhr seiner Leute hört.

Verwandlung: Das Lager. Johann zwingt die Empörer zur Unterwerfung.

**4. Akt.** Rathausplatz in Münster. Johann hat Münster erobert und herrscht als Prophet, gefürchtet und verwünscht. Bettelnd weilt Fides in der Stadt, als Bertha, die als Pilger gekleidet naht, sie findet, und in dem Wahne, daß der Prophet Johann getötet, Rache zu üben entschlossen ist.

Verwandlung: Vor dem Dome. Im feierlichen Krönungszuge betritt der Prophet die Kirche und kommt gekrönt zurück

Als er sich proklamiert, erkennt Fides ihren Sohn und stürzt auf ihn zu. Gern möchte Johann sie ans Herz drücken, aber gezwungen verleugnet er die Mutter vor dem Volke, beschwört sie und da man Johann töten will, wenn sie bei ihrer Aussage bleibt, sagt sie, daß sie in einem Irrtum befangen.

5. **Akt.** Ein Gewölbe im Palast Johanns in Münster. Um vom Kaiser Gnade zu erlangen, sind die drei Wiedertäuferführer Jonas, Matthiesen und Zacharias bereit, Johann auszuliefern. — Fides wird hereingeführt und Johann kommt zu ihr und erfleht ihre Verzeihung. — Da naht auch Bertha und erkennt in dem Geliebten den verhaßten Propheten; vergebens sucht er auch ihre Vergebung zu erringen. Von Entsetzen erfaßt, ersticht sie sich mit einem Fluche für ihn auf den Lippen. — Johann erfährt den Verrat seiner Verführer und eilt zur Strafe.

Verwandlung: Saal im Schlosse. Großes Bacchanal mit Ballett. Die Wiedertäufer sind um Johann versammelt, als Oberthal mit kaiserlichen Soldaten kommt, ihn zu ergreifen. Schon aber hat der Prophet seine Maßregeln getroffen. Er winkt — da dringt Rauch durch alle Pforten. Johann hat das mit Pulver gefüllte Schloß anstecken lassen und mit furchtbarer Explosion stürzen die Mauern über allen zusammen. Johann stirbt mit Fides, die zu ihm geeilt, vereint.

---

## Die Rantzau.

Oper in 4 Akten von P. Mascagni. Text nach Erkmann-Chatrians gleichnamigem Schauspiel, von Targioni-Tozzetti.

Personen: Johann Rantzau = Bariton; Jakob, sein Bruder = Baß; Florentius, Schullehrer = Bariton; Georg, Jakobs Sohn = Tenor; Lebel, Oberförster = Tenor; Luise, Johannes' Tochter = Sopran; Julie, Florentius' Tochter = Mezzosopran. — Ort: Ein Vogesendorf. Zeit: 1829.

Florenz 1892.

**1. Akt.** Platz im Dorfe mit den gegenüberliegenden Häusern Johanns und Jakobs Rantzau, mit dem Schulhaus und dem Brunnen. Die Brüder sind seit dem Tode der Mutter verfeindet und doch liebt Johanns Tochter Luise Jakobs Sohn Georg. Da dieser aus Eifersucht auf den von Johann begünstigten Lebel zürnt, glaubt sich Luise nicht geliebt. Die Feindschaft der Brüder kommt gelegentlich der Versteigerung einer Wiese, wobei Johann das Objekt ersteht, aufs neue zum Ausbruch.

**2. Akt.** Kleiner Saal in Johanns Hause. Florentius, Lebel und Julie sind bei Johann zu Gaste, doch stört Jakob den Gesang der Gesellschaft durch den Dreschflegelschlag seiner Knechte. Als Johann seine Gäste in den Garten führt, soll Florentius Luise auf die Verbindung mit Lebel vorbereiten, doch ist der wackere Schullehrer ganz auf Seiten Luisens, die aber

wegen ihrer Weigerung von Johann aufs roheste behandelt und geschlagen wird.

**3. Akt.** Dorfplatz wie zu Anfang. Luise ist durch die Behandlung schwer erkrankt Dennoch läßt Johann das Aufgebot zwischen ihr und Lebel ergehen, was Georg, der Luise liebt, veranlaßt, die Heimat verlassen zu wollen, in der stillen Hoffnung, durch die entsagende Liebe der Kinder die Väter zu versöhnen. Bevor er geht, setzt er aber Lebel zur Rede und eilt mit ihm zum Duell. Luisens Krankheit erschreckt Johann und da Florentius ihm den einzigen Rat erteilt, Jakob zu versöhnen und durch die Vereiniguug mit Georg Luisens Leben zu retten, entschließt sich Johann zu dem schweren Schritt und klopft mit sinkender Nacht an das Haus des Bruders Jakob weist ihn anfangs barsch zurück, als er aber hört, daß es sich um das Leben Luisens handle, läßt er Johann eintreten.

**4. Akt.** Zimmer bei Johann. Georg ist vom Duell zurückgekehrt und eilt zu Luise, die sich aufatmend in seine Arme wirft. Johann kommt mit Jakob, der von Florentius einen Vertrag hat entwerfen lassen, wonach Johann sein Heimwesen verlassen soll. Gebrochen will Johann schon zustimmen, als Georg energisch dazwischen tritt und erklärt, nichts von dem Vertrag wissen zu wollen. Nicht der Haß, sondern die Liebe solle das Band des Friedens knüpfen. Seinen eindringlichen Worten giebt Jakob nach und in fröhlicher Stimmung kann Florentius den Vertrag zerreißen, als Georg und Luise sich liebend vereinen.

---

## Der Rattenfänger von Hameln.

Oper in 5 Akten von V. E. Neßler. Text von F Hofmann.

Personen: Gruwelholt, Bürgermeister = Baß; Tunneborne, Stadtschultheiß = Baß; Rhynperg, Kanonikus = Baß; Ethelerus, Ratsschreiber = Tenor; Heribert, des Stadtschultheißen Sohn, Stadtbaumeister = Tenor; Hunold Singuf = Bariton; Wulf, der Schmied = Bariton; Regina, Tochter des Bürgermeisters = Sopran; Dorothea, Base desselben = Alt; Gertrud, ein Fischermädchen = Sopran. — Ort: In und bei Hameln. Zeit: 1284.
Leipzig 1879.

**1. Akt.** Rathaussaal. In der Rattennot, die in der Stadt überhand nimmt, stellt sich Hunold Singuf den Ratsherren vor und verspricht, die Stadt von der Plage zu befreien. Er giebt keine Auskunft über sich, stellt seine Bedingungen, die auch angenommen werden.

Verwandlung: Garten des Bürgermeisters. Heribert ist von Reisen zurückgekehrt und begrüßt Regina als seine Braut.

**2. Akt.** Wirtshaus. Hunold erfreut die Gäste durch seine Lieder. Als der Schmied Wulf mit seiner Braut Gertrud kommt, schauen sich diese und Hunold entzückt an, denn beide sehen ihr Traumbild verkörpert und Gertrud stürzt an Hunolds Brust.

Verwandlung: Fluß und Fischerhaus. Vergebens sucht Wulf Gertrud wieder zu gewinnen, diese hält fest an ihrer Liebe zu Hunold.

**3. Akt.** Ratskeller. Humoristische Szene zwischen Ethelerus, Rhynperg und Hunold. Letzterer hat großes Glück bei den Weibern und als Rhynperg ihm die Wette bietet, es werde ihm doch nicht gelingen, Regina einen Kuß zu rauben, geht Hunold darauf ein.

Verwandlung: Straße an der Weser. Wulf ist wegen des Verlustes Gertruds in finsterer Stimmung. Als in der Nacht Hunold die Ratten und Mäuse beschwört und diese von allen Seiten herbeilaufen, sich in die Weser werfen, stürzt Wulf heraus, um Hunold zu treffen, doch weicht dieser aus und verwundet den Schmied.

**4. Akt.** Halle im Rathause. Hunold erscheint vor Rat und Volk und fordert, da die Ratten alle vertrieben sind, die bedungenen 100 Mark. Als man ihm dieselben vorenthält, weil sich in des Bürgermeisters Keller noch ein Rattenkönig befinde, verlangt er als Entgelt einen Kuß von Regina, für welches Verlangen er mit Empörung weggewiesen wird.

Verwandlung: Marktplatz mit dem Roland. Trotz des warnenden Rolands Stimme entschließt sich Hunold, den Kuß Reginas durch Zauber zu erlangen.

Verwandlung: Festsaal im Rathause. Als Sänger tritt Hunold zu den beim Festsaal sitzenden Bürgern, bannt Regina durch seine Lieder, sodaß diese endlich aufspringt und ihn küßt. Hunold wird ergriffen, gefangen gesetzt und der nächste Tag wird für das Gericht bestimmt.

**5 Akt.** Die Weserbrücke vor der Stadt. Nach einer Szene Gertruds, die über die verlorene Liebe Hunolds klagt, tritt das Gericht zusammen und Hunold wird wegen Zaubers zum Scheiterhaufen verurteilt. Gertrud rettet ihn, indem sie ihn zum Manne erwählt, was nach einem alten Gesetze die Freiheit eines Verurteilten bedingt Hunold schwört Urfehde und will in Gertruds Liebe allein glücklich sein, doch Gertrud, die an kein Glück mehr glaubt, stürzt sich in die Weser Nun schwört Hunold der Stadt Rache, das Liebste will er mit fortführen und während die Bürger in der Kirche versammelt sind, lockt er mit seiner Pfeife alle Kinder der Stadt herbei und leitet sie in den Zauberberg, der sich hinter dem Zug schließt. Mit Entsetzen sehen die herbeieilenden Bewohner Hamelns das furchtbare Schauspiel.

---

## Das Rheingold.

(Siehe: Der Ring des Nibelungen.)

---

# Rienzi.

Oper in 5 Akten von R. Wagner. Text vom Komponisten.

Personen: Cola Rienzi, päpstlicher Notar = Tenor; Irene, seine Schwester = Sopran; Steffano Colonna = Baß; Adriano, sein Sohn = Mezzosopran; Paola Orsini = Baß; Raimondo, päpstlicher Legat = Baß; Baroncello = Tenor; Cecco = Baß; ein Friedensbote = Sopran. — Ort: Rom. Zeit: 14. Jahrhundert.
Dresden 1842

**1. Akt.** Straße mit Rienzis Haus Rienzi errettet seine Schwester Irene aus den Händen der Orsini, die aus seinem Hause geraubt, übergiebt sie Adriano Colonna, der sie liebt, zum Schutz und beschließt, nachdem er die ihm von den Römern angebotene Krone ausgeschlagen, Rom den Frieden, ein neues Gesetz zu geben.

**2. Akt.** Saal im Kapitol. Rienzi ist im Vollbesitz seiner Macht, läßt Frieden verkünden, empfängt fremde Gesandte und unterhält seine Gäste, wie ein Fürst durch Spiel und Tanz. Zwar gelingt es Adriano, ein Komplott der Nobili zu verhindern, aber nur ein unter dem Gewand getragenes Panzerhemd schützt Rienzi vor dem Dolchstoß Orsinis, den er zum Tode führen lassen will, auf Bitten Adrianos und Irenes begnadigt.

**3. Akt.** Platz Die Nobili sind geflohen, um sich gegen Rienzi zu erheben, doch dieser besiegt sie in blutiger Schlacht, in welcher auch Colonna, Adrianos Vater, erschlagen wird. Dies Blut trennt Adriano von Rienzi, dem er flucht, daß er seine und Irenes Liebe getrennt habe.

**4. Akt.** Straße. Papst und Kaiser haben sich von Rienzi losgesagt; Adriano wiegelt das Volk auf und will selbst den Vater rächen. Noch einmal erscheint Rienzi in aller Machtfülle, als er aber zum Hochamt in die Laterankirche schreiten will, tritt ihm der päpstliche Legat entgegen und schleudert ihm den Bannstrahl zu. Adriano wird von Irene, die er zur Flucht bereden will, zurückgewiesen.

**5. Akt.** Halle im Kapitol. Noch einmal naht sich Adriano der Geliebten, als Rienzi gegangen, die Römer aufzurufen, er will sie retten, doch weigert sie sich, ihm zu folgen.

Verwandlung: Platz vor dem Kapitol. Das aufgereizte Volk stürmt mit Feuerbränden herbei und als Rienzi auf einem Balkon erscheint, zu ihnen zu reden, legen sie das Haus in Brand und Irene flieht an die Seite des Bruders. Als Adriano herbeieilt, sie aus den Flammen zu retten, stürzt das Haus zusammen.

# Rigoletto.

Oper in 4 Akten von Verdi. Text, nach V. Hugos „le roi s'amuse", von Piave.

Personen: Der Fürst von Mantua = Tenor; Rigoletto, sein Hofnarr = Bariton; Gilda, dessen Tochter = Sopran; Graf von Monterone = Baß; Graf von Ceprano = Bariton; die Gräfin, dessen Gemahlin = Sopran; Marullo, Kavalier = Bariton; Borsa, Höfling = Tenor; Sparafucile, ein Bravo = Baß; Maddalena, seine Schwester = Mezzosopran; Giovanna, Maddalenas Gesellschafterin = Alt; ein Offizier = Baß; ein Page = Mezzosopran. — Ort: Mantua und Umgebung. Zeit: 16. Jahrhundert.
Venedig 1851.

**1. Akt.** Schloßsaal. Der Fürst hat in der Kirche eine unbekannte Schöne gesehen und beschließt, sie zu erobern Auch die Gräfin Ceprano verehrt er, wie er überhaupt ein Frauenjäger ist (Ballade: „Freundlich blick ich auf diese und jene") Rigoletto, der verwachsene Narr des Fürsten, verhöhnt die Ehemänner, deren Frauen der Fürst seine Galanterie zeigt und reizt den Fürsten, sich einfach durch Gefängnis oder Tod von den Eifersüchtigen zu befreien. — Da beschließen die Edelleute, Rache an Rigoletto zu nehmen, umsomehr, als er auch den Grafen Monterone, dessen Tochter der Fürst entehrt hat, mit hochmütigem Spott trifft. Monterone aber verflucht den Fürsten und seinen Narren, was Rigoletto mit Grauen erfüllt

**2. Akt** (oder, wenn die Oper in 3 Akten gegeben wird, Verwandlung des 1. Aktes). Straße; die halbe Bühne nimmt der durch eine Mauer abgetrennte Hof von Rigolettos Haus ein. An den Fluch denkend, kommt der Narr und wird von dem Banditen Sparafucile angesprochen, der ihm seine Dienste anbietet (Duett: „Der alte Mann verfluchte mich"). — Rigoletto öffnet dann eine Thür in der Mauer und geht zu seiner Tochter Gilda, die er hier vor den Augen des Fürsten verbirgt (Szene: „Gleich sind wir beide!" und Duett: „Mein Vater! — Wenn ich Dich sehe"). Sie weiß nicht, wer er ist und er hat ihr verboten, sich öffentlich zu zeigen. Nur in der Küche war sie. Als aber Rigoletto gegangen, schleicht der Fürst zu Gilda, die ihn nur als einfachen Studenten kennt, dessen Bekanntschaft sie in der Kirche gemacht (Duett: „Stets ruft mein Herz ihm zu, ich lie— (Fürst fällt ein:) be dich"). Er nennt sich Gualtier Maldé und sie ruft ihm in Liebe diesen Namen nach, als er gegangen. Die feindlichen Edelleute sehen bei dieser Gelegenheit Gilda auf der Mauer, halten sie für Rigolettos Geliebte und als der Narr kommt, benützen sie ihn in der Dunkelheit, indem sie vorgeben, daß es der Gräfin Ceprano gelte, Gilda zu rauben. Zu spät sieht Rigoletto, was geschehen und denkt schaudernd an den Fluch Monterones.

**3. Akt** (eventuell 2. Akt). Der Fürst hört, daß Gilda geraubt ist (Arie: „Ich seh' die heißen Zähren"). Die Edelleute bringen ihm Kunde, daß sie Rigolettos Liebchen geraubt und an der Beschreibung erkennt er die Geliebte. Da sie im Palast ist, eilt er zu ihr. Rigoletto kommt und wird nun von den Edelleuten verhöhnt; er sucht durch Singen Gilda seine Nähe erkennen zu geben und sagt endlich, da er fürchtet, sie möchte dem Fürsten in die Hände fallen, daß es seine Tochter sei („Ja, meine Tochter! An diesem stolzen Siege"). Plötzlich kommt Gilda, bittet ihren Vater, die Leute fortzuschicken und gesteht dann ihre Schande, daß der Fürst ihr Vertrauen mit Schmach belohnt (Finale: „Rede, wir sind allein"). Unter Rachedrohungen Rigolettos endet der Akt.

**4. Akt.** Straße. Die halbe Bühne nimmt das zum Zuschauer offene und zwei übereinanderliegende Zimmer zeigende Haus Sparafuciles ein. Rigoletto kommt mit Gilda, die trotzdem den Fürsten liebt. Da zeigt Rigoletto seiner Tochter den Fürsten im Hause des Banditen, mit dessen Schwester Maddelena schäkernd (Canzone: „O wie so trügerisch sind Weiberherzen") Rigoletto verhandelt mit Sparafucile, der bereit ist, seinen Gast, den er nicht kennt, für Geld zu ermorden (Quartett: „Als Tänzerin erschienst Du mir"). Rigoletto befiehlt seiner Tochter, in Männerkleidung nach Verona zu gehen, er werde folgen. Gilda geht, doch fürchtet sie einen Anschlag gegen den Geliebten. In der That bietet Rigoletto dem Banditen nun 20 Scudi für den Mord des Fürsten. Da ein Gewitter heraufzieht, beschließt der Fürst im Haus zu bleiben und Sparafucile quartiert ihn im ersten Stock ein. Gilda kehrt in Männerkleidung zurück und erlauscht, wie der Bandit seiner um das Leben des Fürsten bittenden Schwester verspricht, daß, wenn bis Mitternacht sich ein Andrer findet, dieser für den Gast sterben solle. Gilda beschließt, sich für den Geliebten zu opfern und tritt in das Haus. Als Rigoletto kommt, liefert Sparafucile einen in Tücher gehüllten Leichnam aus und der Narr triumphiert. Da er aber die Stimme des Fürsten hört, der ein Liedchen trällernd das Haus verläßt, öffnet er verwundert das Tuch und entdeckt zu seinem Entsetzen seine Tochter, die für einen Augenblick noch einmal erwacht und gesteht, daß sie für den Geliebten sterbe. Erschüttert steht Rigoletto und ruft: „Ha, jener Fluch des Alten".

# Der Ring des Nibelungen.

Ein Bühnenfestspiel in 3 Tagen und einem Vorabend von R. Wagner.

## Der Vorabend:

## Das Rheingold.

Personen: Wotan = Bariton; Donar = Baß; Froh = Tenor; Loge = Tenor; Alberich = Bariton; Mime = Tenor; Fricka = Sopran; Freia = Sopran; Erda = Alt; Woglinde = Sopran; Wellgunde = Sopran; Floßhilde = Alt.

München 1869.

Die drei Rheintöchter: Woglinde, Wellgunde und Floßhilde spielen auf dem Grunde des Rheins. Ihnen naht sich der Zwerg Alberich, ein Nibelung (Bewohner der Unterwelt, Niflheim), der eine von ihnen zu erhaschen sucht, doch verhöhnt wird. Als in der einbrechenden Sonne das Rheingold, welches die Rheintöchter zu hüten haben, blendend erstrahlt, da erzählen die Nixen trotz des Vaters Warnung dem Alberich, daß der „der Welt Erbe gewänne zu eigen, wer aus dem Rheingold schüfe den Ring, der maßlose Macht ihm verlieh" und weil sie Alberich nicht für gefährlich halten, gestehen sie, „Nur wer der Minne Macht versagt, nur wer der Liebe Lust verjagt, nur der erzielt sich den Zauber, zum Reif zu zwingen das Gold". Die Rheintöchter aber haben den Nibelung falsch beurteilt. Mächtiger als die Liebe, die er nun verflucht, ist in Alberich die Habsucht und Machtbegier. Er entreißt den Rheintöchtern das Gold, mit dem er lachend in der Tiefe verschwindet. — In offener Verwandlung (wie denn die ganze Oper nur in 1 Aufzug gegeben werden soll) zeigt die Bühne eine freie Gegend mit der von den Riesen erbauten Walhalla im Hintergrund. Wotan und Fricka schlafend. Fricka erwacht, sieht den fertigen Bau und weckt Wotan, zugleich trauernd, daß die Riesen für ihr Werk die Göttin Freia, deren Aepfel ewige Jugend gewähren, erhalten sollen. Als die Riesen Fafner und Fasolt den Lohn begehren, suchen Donner und Froh die Freia zu schützen. Da erscheint Loge und berichtet von dem Ring, den Alberich aus dem Rheingold geschmiedet und sowohl in Wotan, als in den Riesen regt sich das Verlangen, den Ring zu besitzen. Fafner und Fasolt ergreifen Freia, wollen sie aber wiedergeben, wenn Wotan ihnen bis zum Abend das Gold verschafft. Durch die Abwesenheit Freias entschwindet den Göttern die Jugend und Wotan beschließt, den Ring zu gewinnen. —

Alberich hat in Niflheim durch die Macht des Ringes alle Nibelungen unterjocht und treibt sie zu sklavischem Dienst, ihm Schätze zu schaffen. Sein Bruder, der Schmied Mime, hat ihm einen Tarnhelm verfertigt, der die Kraft hat, den Träger unsicht-

bar zu machen und ihn in jede gewünschte Gestalt zu verwandeln. Als Loge nun Wotan herunterführt, erfahren die Götter von Alberich das Geheimnis des Tarnhelms und Loge überlistet den argwöhnischen Nibelung, indem er die Wunderkraft anzweifelt. Da verwandelt sich Alberich vor der Götter Augen zuerst in einen Lindwurm, dann in eine Kröte, auf welche Wotan den Fuß stellt und der Loge den Tarnhelm entreißt. -

Alberich wird auf die Oberwelt getragen und wird nicht eher frei gelassen, bis er die Nibelungenschätze (den Hort) mit Tarnhelm und Ring den Göttern überläßt. Als Alberich den Ring geraubt sieht, schreit er gräßlich auf und verflucht das Kleinod, das dem Tod bringen soll, der es trägt. — Als jetzt die Riesen zurückkommen, wird ihnen soviel Gold aufgetürmt, daß Freias Gestalt damit verdeckt werden kann. Sie erhalten auch den Tarnhelm, aber den Ring will Wotan nicht mehr herausgeben. Da taucht Erda aus der Tiefe auf, die Urwala, warnt Wotan vor dem Ring und verkündet den Untergang der Götter. Wotan, aus tiefen Sinnen aufschreckend, wirft den Riesen den Ring zu und dadurch ist Freia gelöst. Der Fluch Alberichs erreicht den nächsten Träger des Ringes, Fasolt sofort, denn er wird von Fafner im Streit erschlagen. — Von der Prophezeiung Erdas betroffen, beschließt Wotan, zur Wala hinabzusteigen, sie durch Liebeszauber zu bezwingen, um von ihr das Geheimnis der Götterdämmerung zu erfahren. Vorher aber führt er die Götter nach Walhalla, auf dem Regenbogen, den Donar als Brücke geschlagen — Klagend erschallt währenddem der Gesang der Rheintöchter aus der Tiefe

---

Erster Tag:

## Die Walküre.

Personen: Siegmund = Tenor; Hunding = Baß; Wotan = Bariton; Sieglinde = Sopran; Brünhilde = Mezzosopran; Fricka = Mezzosopran; die Walküren.

München 1870.

Wotan hat von Erda erfahren, daß den Göttern der Untergang drohe, wenn Alberich wieder den Ring erlange. — Aus Wotans Liebe zu Erda sind die Walküren entstanden, die Schildjungfrauen des Gottes, welche die Helden nach Walhalla führen sollen für den einstigen Kampf. — Aber, um wieder in den Besitz des Ringes zu kommen, den er selbst nach seinem Vertrag den Riesen nicht nehmen darf, zieht er als Wanderer zu den Menschen und zeugt das Wälsungengeschlecht, aus dem der Held entstehen soll, den er gebraucht.

**1. Akt.** Hundings Hütte, in deren Mitte ein gewaltiger, durch die Decke gewachsener Eschenbaum. Ein waffenloser, er-

schöpfter Mann stürzt herein und sinkt auf dem Platz am Herd nieder, der ein Asyl auch für den Todfeind ist. Sieglinde, Hundings Hausfrau, labt den Fremden, weil der Hausherr fern und als Hunding heimkehrt, bereitet sie auf dessen Verlangen das Gastmahl. Beim Mahl frägt Hunding den Fremden und dieser nennt sich Wehwalt, ein Wälsung sei er und verfolgt, weil er einen Mann erschlagen, gegen den er ein zur Ehe gezwungenes Weib geschützt. Da erkennt Hunding in dem Gast seinen Feind, doch gewährt er ihm für die Nacht noch Schutz. Sieglinde zeigt lebhafte Bewegung für den Gast und nachdem sie ihrem Gatten einen Schlaftrunk gemischt und er zur Ruh gegangen, kehrt sie zum Herd zurück und zeigt dem Fremden, dessen Herkunft sie ahnt, im mächtigen Eichenstamme ein Schwert, das einst ein einäugiger Wanderer (Wotan) bei ihrem Hochzeitsfeste dort bis ans Heft hineingestoßen und dem verheißen, der es herauszuziehen vermöge. In magischem Lichte erglüht der Schwertgriff, der Fremde stürzt darauf zu, zieht das Schwert aus dem Stamm und nun erkennt Sieglinde den starken Helden, der niemand anders sein darf als Siegmund, ihr Bruder. Von Liebe für einander erfaßt, stürzen sie sich in die Arme und fliehen hinaus in den erwachenden Frühlingswald.

**2. Akt.** Wildes Felsengebirge. Wotan ruft die Walküre Brünhilde, die er vor den Schwestern durch Liebe auszeichnet und befiehlt ihr, in dem bevorstehenden Streit zwischen dem verfolgenden Hunding und Siegmund, dem Wälsung den Sieg zu verleihen. Inzwischen aber naht sich Fricka dem Gatten und als Beschützerin der Ehen verlangt sie Strafe, denn Siegmund hat sich mit der Schwester Sieglinde in Liebe vereint. Wotans Worte und Warnungen sind vergeblich, er muß sich Frickas Verlangen fügen. So ruft er Brünhilde zurück, sie solle dem Schwerte Siegmunds die Kraft nehmen und Hunding Sieg verleihen. Als Brünhilde, die den letzten Befehl als gegen den Wunsch Wotans gethan erkennt, im Kampfe dennoch auf Siegmunds Seite tritt, da greift der zürnende Wotan selbst ein, schützt Hunding und an des Gottes vorgehaltenem Speer zerspringt das Wälsungenschwert in zwei Teile. Siegmund wird von Hunding erschlagen, Sieglinde aber, die von dem Bruder und Geliebten einen Knaben empfangen, wird von Brünhilde gerettet, doch Wotan verfolgt zornig die ungehorsame Walküre.

**3. Akt.** Der Walkürenfelsen, wo sich mit jubelndem Zuruf die Walküren versammeln. Brünhilde bringt Sieglinde herbei und verlangt von den Schwestern Schutz. Nichts vermag sie aber vor Wotans Strafe zu bewahren. Nachdem sie Sieglinden einen Sohn verheißen und in den vor Wotan sichern Fafnerwald geschickt, erwartet sie den daherstürmenden Vater, der sie ihrer Gottheit als Walküre beraubt, in Zauberschlaf versenkt und bestimmt, daß sie

dem angehören soll, der sie wach küßt. Doch gerührt von dem Flehen des geliebten Kindes und weil sie doch eigentlich nur seinen geheimen Wunsch erfüllen wollte, läßt er wabernde Lohe um den Berggipfel emporflammen und nur der unerschrockene Held, der durch die Flamme dringt, soll sie erwecken dürfen.

---

## Zweiter Tag:

## Siegfried.

Personen: Siegfried = Tenor; Mime = Tenor; der Wanderer = Bariton; Alberich = Bariton; Fafner = Baß; Erda = Alt; Brünhilde = Mezzosopran; Waldvogel — Sopran.
Bayreuth 1876.

Sieglinde hat im Fafnerwald den Siegfried geboren und bei ihrem Tode den Sohn und die zerschlagenen Stücke des von ihr geretteten Wälsungenschwertes dem Schmied Mime übergeben, der sie im Walde bei der Geburt Siegfrieds gefunden. Mime ist feig und sieht mit Schrecken des heranwachsenden Pflegesohnes gewaltige Stärke.

**1. Akt.** Mimes Schmiede, eine Felsenhöhle im Walde. Vergeblich sucht der kunstreiche Mime das Schwert Wälses, Notung geheißen, zusammenzuschweißen, denn mit dieser Waffe könnte Siegfried Fafner töten, der als furchtbarer Lindwurm die von Wotan erhaltenen Nibelungenschätze bewacht und für Mime den Hort gewinnen. Siegfried kehrt aus dem Walde zurück und schreckt den feigen Nibelung mit einem gefangenen Bären, den er dann wieder laufen läßt. Der junge Held zerschlägt mit leichter Mühe ein neues Schwert, das ihm Mime geschmiedet und verlangt unmutig, nun einmal zu wissen, welcher Abkunft er sei. Mime weigert sich, doch als ihn Siegfried zornig packt und erwürgen will, gesteht dieser ihm von Siegmund und Sieglinde und zeigt ihm die Stücke des Wälsungenschwertes. Als Mime nun vergeblich Siegfrieds Wunsch, das Schwert zu schmieden, zu erfüllen sucht, tritt Wotan als Wanderer zu ihm und erzwingt Gastfreundschaft, indem er sich an den Herd setzt. Er wettet mit Mime um dessen Haupt, daß er drei Fragen befriedigend beantworten wolle und nun verlangt auch Wotan Antwort auf drei Fragen oder das Haupt Mimes. Zwei Fragen beantwortet der Schmied, aber die dritte, wer das Schwert Notung neu zu schmieden vermöge, kann er nicht lösen. Da sagt ihm Wotan, der werde Notung schmieden, der nie das Fürchten gelernt und dieser werde auch das ihm verfallene Haupt Mimes nehmen. — Siegfried, der davongeeilt war, bevor Wotan kam, kehrt zurück, zerfeilt die Schwertteile und macht daraus eine neue, gewaltige Waffe. Der ängstliche Mime hetzt nun Siegfried auf Fafner, damit er das Fürchten lerne und ihm so unschädlich werde. Er selbst braut einen Schlaftrunk, um den

jungen Helden, wenn er schläft, zu erschlagen und sich die Schätze anzueignen

**2. Akt.** Die Neidhöhle. Alberich lauert vor der Höhle auf den, der Fafner erschlagen wird, um sich wieder in den Besitz des Ringes zu setzen. Wotan verkündet ihm das Nahen Siegfrieds. Vergebens fordert Alberich Fafner um den Ring, ihm Rettung des Lebens dafür versprechend. Da kommt Siegfried, von Mime geleitet, scheucht den Lindwurm auf und tötet ihn mit Notung. Als Siegfried einen mit Drachenblut bespritzten Finger zufällig zum Munde führt, wird er der Sprache der Vögel kundig und bemächtigt sich auf Rat der Waldvögel der Tarnkappe und des Ringes, den Alberich mit Schrecken in Siegfrieds Besitz erblickt. Durch die Wunderkraft des Drachenblutes kann Siegfried nun auch die Gesinnung Mimes erkennen und erschlägt den mit dem Schlaftrunk Nahenden. — Von neuem hört Siegfried die Stimme eines Waldvogels, die von der herrlichen Jungfrau auf dem Walkürenfelsen singt, die nur ein unerschrockener Held erwecken könne. Vom Waldvogel geführt, macht sich Siegfried auf den Weg zu Brünhilde.

**3 Akt.** Wilde Felsengegend. Wotan ruft Erda aus der Tiefe, und als diese weitere Auskunft verweigert, sagt er ihr, daß er die Götterdämmerung nicht mehr fürchte, seitdem er selbst *wolle*, was kommen müsse. An Siegfried, den Wälsung, der Alberichs Ring besitze und Brünhilde erwerben werde, will er der Welt Erbe abtreten. — Er tritt jetzt dem nahenden Siegfried entgegen, welcher Wotans Speer, der die Weltherrschaft sichert, mit Notung zersplittert. Die wabernde Lohe, welche Brünhilde umgiebt, schlägt dem jungen Helden entgegen, doch ohne Furcht springt Siegfried hinein.

*Verwandlung:* Der Brünhildenstein. Siegfried kommt durch die Flamme, löst der schlafenden Brünhilde den Panzer und erweckt sie durch seinen Kuß. Mit einem herrlichen Liebesduett schließt dieser Teil der Tetralogie.

---

Dritter Tag:

## Götterdämmerung.

*Personen:* Siegfried = Tenor; Gunther = Bariton; Hagen = Baß; Brünhilde = Mezzosopran; Gutrune = Sopran; Waltraute = Mezzosopran; Alberich = Bariton; Waglinde = Sopran; Wellgunde = Sopran; Flosshilde = Alt; die Nornen; Chor der Mannen und Frauen.

Bayreuth 1876.

**Vorspiel.** Die Nornen verkünden, wie Wotan für den von Siegfried zersplitterten Speer die Weltesche Ygdrasil von den Helden Walhallas habe fällen lassen, mit deren Holz er den Göttersitz umgeben, und Loge soll Feuer daran legen, wenn Gott und die Welt vom Fluche des Ringes erlöst und das Rheingold

wieder im Besitz der Rheintöchter ist. So sitzt Wotan und harrt auf das Ende. — Siegfried kommt mit Brünhilde. Er giebt ihr als Liebespfand den Ring des Nibelungen und sie giebt ihm ihr Walkürenroß Grane, daß er darauf in die Welt zu Heldenthaten ziehe. So nehmen sie in Liebe Abschied.

**1. Akt.** Halle der Gibichungen am Rhein. (Es folgt jetzt mit einigen Veränderungen die Handlung des Nibelungenliedes bis zu Siegfrieds Tod, während die vorhergehende Handlung, altnordischen Sagen entnommen, von Wagner in Ideenverbindung gebracht ist. Gutrune ist Kriemhild und Hagen hier der Sohn Alberichs, der Gunthers Mutter mit Gewalt bezwungen und in Haß den Rächer erzeugte, der Siegfried töten und ihm den Ring wieder gewinnen solle) Hagen, mit geheimem Wissen begabt, erzählt Gunther von der herrlichen Brünhilde und Gutrune von Siegfried. Der junge Held kommt mit Grane in einem Boote, landet, von Hagen angerufen, und wird freundlich empfangen. Hagen braut einen Vergessenheitstrank, den Gutrune Siegfried reicht. Während dieser beim Trank noch Brünhildens gedenkt, hat er nach dessen Genuß kein Erinnern mehr an sie und wirbt um Gutrune. Er trinkt mit Gunther Blutbrüderschaft und fährt mit ihm zum Abenteuer der Gewinnung Brünhildens.

Verwandlung: der Brünhildenstein; Waltraute, eine Walküre, ist zu Brunhilde heimlich gekommen, ihr den unausgesprochenen Wunsch Wotans zu künden, den Ring den Rheintöchtern zurückzugeben. Brünhilde aber bewahrt den Ring als Siegfrieds Liebespfand — Nun kommt durch den Zauber der Tarnkappe als Gunther erscheinend Siegfried, entreißt ihr den Ring und führt sie mit fort.

**2. Akt.** Am Ufer des Rheins, vor der Gibichungenhalle. Nacht. Alberich fordert Hagen auf, zu verhüten, daß der Ring zu den Rheintöchtern gelange. Mit anbrechendem Tage kündet Siegfried die Ankunft Gunthers und Brünhildens Jetzt tritt zum erstenmale während des ganzen Werkes der Chor auf, Mannen und Frauen, das Brautpaar zu empfangen. Als Brünhilde naht, sieht sie zu ihrem Entsetzen den geliebten Siegfried vor sich und da sie ihn mit Gutrune vereint sieht, auch den Ring an seiner Hand erblickt, so klagt sie ihn an, Gunther verraten zu haben, da er ihre Liebe genossen hat. — Von wilder Eifersucht erfüllt, verbindet sich nun Brünhilde mit Hagen zum Morde Siegfrieds und gewinnt auch den zaudernden Gunther.

**3 Akt.** Wald- und Felsenthal am Rhein. Siegfried kommt jagend zum Fluß und trifft die klagenden Rheintöchter. Als sie ihn vergebens um Wiedergabe des Ringes anflehen, weissagen sie ihm nahen Tod. Hagen kommt mit Gunther und Mannen und reicht beim Trinkgelage an Siegfried einen Becher, aus dessen Trank dem jungen Helden die Erinnerung wieder

kommt. Nun erzählt er seine Thaten, wie er durch der Vögel Stimme zu Brünhilden gekommen und ihre Liebe genossen. Als er sich auf Hagens Zuruf: „Errätst du auch dieser Raben Geraun?“ umwendet, stößt dieser ihm den Speer in den Rücken. Siegfried stirbt mit dem Gedanken an Brünhilde. Man legt ihn auf ein Schild und unter den Klängen eines Trauermarsches bringt man ihn zu Gutrune.

Verwandlung: Gibichungenhalle. Mit Wehklagen stürzt Gutrune auf den toten Siegfried und hört von Gunther, daß Hagen den Gemahl erschlagen und nun den Ring verlange. Gunther verweigert den Ring und wie Hagen ihn mit Gewalt entreißen will, erhebt sich des Toten Hand drohend. Siegfrieds Leiche wird auf den Scheiterhaufen gelegt, den Brünhilde anzündet, nachdem sie den Ring zu sich genommen. Als die Flammen emporschlagen, besteigt sie ihr Roß Grane und sprengt mitten hinein. Hoch empor schwillt der Rhein bis über die Flammen, die Rheintöchter ergreifen den Ring und als Hagen denselben ihnen rauben will, ziehen sie den Sohn Alberichs mit sich in die Tiefe des Rheins.

In diesem Augenblick erstrahlt in der Ferne ein mächtiger Feuerschein, es ist die brennende Walhalla und verkündet die Götterdämmerung — den Untergang der Götter.

---

## Robert der Teufel.

Oper in 5 Akten von Meyerbeer. Text von Scribe und Delavigne.

Personen: Der König von Sizilien; Isabella, Prinzessin von Sizilien = Sopran; Robert, verbannter Herzog von der Normandie = Tenor; Bertram, sein Freund = Baß; Alberti; Raimbaud, Landmann aus der Normandie = Tenor; Alice, Bauernmädchen aus der Normandie = Sopran; ein Waffenschmied; ein Hauehofmeister; Helene, Oberin der Frauengeister = Tänzerin. — Ort: Palermo. Zeit: 13. Jahrhundert.

Paris 1831.

Ein Sohn der Hölle hat sich mit der Herzogin der Normandie verbunden und Robert ist der Sohn dieses Bundes. Die auf ihn vererbten bösen Eigenschaften des Vaters haben seine Verbannung erwirkt. Er irrt umher und weilt jetzt in Sizilien, wo er sich um die Prinzessin Isabella bewirbt. Seine väterliche Herkunft ist ihm unbekannt und unter der Gestalt Bertrams hat sich sein höllischer Erzeuger als Freund zu ihm gesellt, um ihn durch Verführung zum Bösen für die Hölle zu gewinnen. Er verleitet Robert, der im Spiel alle Habe verlor, zum Kirchenraub, läßt ihn einen Zweig vom Grabmal der heiligen Rosalie rauben, um mit diesem Zauber Isabella zwingen zu können, doch erregt der Prinzessin Liebe und ihr Flehen seine Reue, sodaß er die Zauberrute von sich wirft. Bertram befreit ihn aus der Gewalt der sizilianischen Ritter und giebt sich ihm als Vater zu erkennen. Aber die Liebe

zu Isabella und zu seiner reuigen Mutter, die ihm in dem Bauernmädchen Alice eine warnende Botin gesandt, siegt über die Verführung, Bertram muß allein zur Hölle zurückkehren und Robert kann sich mit der Geliebten vereinigen.

1. **Akt.** Zeltlager in einer Landschaft bei Palermo. Robert, Bertram, Alberti und andere Ritter beim Trinkgelage. Dazu kommt Raimbaud aus der Normandie als pilgernder Sänger (Ballade: „Einst herrschte in der Normandie") und erzählt von der Herzogin Bertha Verbindung mit der Hölle. Robert läßt Raimbaud verhaften, aber wieder frei, als er hört, daß des Normannen Braut Alice mit Botschaft an ihn gleichfalls gekommen. Alice wird gebracht und Robert erkennt seine Milchschwester; sie bringt ihm das Testament der Mutter (Romanze: „Geh', sagte sie, zaudre nicht"). Robert soll indessen nicht eher lesen, bis er dessen wert geworden. Alice will Botin an Roberts Geliebte Isabella sein und bittet, daß man sie selbst mit Raimbaud vermähle. — Bertram kommt und verführt Robert zum Spiel (Sizilienne: „Nun, o Glück, auf deine Launen", mit dem Refrain „Das Gold ist nur Chimäre"). Robert verspielt alles, auch Waffen und Rosse.

2. **Akt.** Saal im Palast. Isabella (Szene und Cavatine: „Wie verhaßt ist doch der Prunk, dessen Glanz mich umgiebt"). Alice bringt der Prinzessin Roberts Brief und diese rüstet den Geliebten neu aus, damit er im Turnier für sie siege. Bertram aber hintertreibt dies abermals, indem er Robert fortlockt.

3. **Akt.** Wilde Felsengegend. Raimbaud erwartet Alice, trifft aber auf Bertram, der ihn durch Gold bethört (Duett: „Ach, welche Großmut"). Triumphierend steigt Bertram, nach Raimbauds Abgang, in die sich öffnenden Pforten der Hölle. Alice sucht Raimbaud (Szene und Romanze: „Eh' ich die Normandie verlassen") und hört Stimmen der Hölle, die nach Robert rufen und schaut in die Höllenschlucht. Bertram kehrt zurück und erblickt Alice, die er bedroht, nichts von dem Gehörten zu entdecken. Robert tritt dazu (Terzett: „Unsel'ger Augenblick voll Bangen"). Alice eilt entsetzt fort und Bertram verleitet Robert, den Zauberzweig vom Grabmal der heiligen Rosalie zu brechen.

Verwandlung: Kreuzgang eines Klosters mit Grabmälern. Bertram beschwört die toten Nonnen, die aus ihren Gräbern emporsteigen und Robert verführen sollen, den Zweig zu brechen. Robert kommt zaudernd, die Nonnen werfen ihre Leichenhüllen ab, erscheinen als reizende Mädchen und verleiten in einem großen Ballett Robert zu der verhängnisvollen That.

4. **Akt.** Saal im Palast. Robert versenkt mit dem Zauberzweig Ritter und Frauen in Schlaf (Cavatine: „Wie reizend schön") und erweckt Isabella, die ihn für sich selbst um Gnade fleht (Cavatine: „Robert, mein Geliebter" [Gnadenarie]). Er entäußert

sich des Zaubers und als die erwachten Ritter auf ihn eindringen, befreit ihn Bertram.

**5 Akt.** Vorhalle der Kathedrale zu Palermo. Der Ort ist heilig, darum eilt Robert hierher, und zieht den vor der Kirche zurückbebenden Bertram mit sich. Bertram unternimmt jetzt das Letzte, damit Robert sich der Hölle verschreibe, doch ergreift frommer Gesang den Herzog; er will Bertram als Feind von sich weisen, da gesteht dieser, daß er sein Vater sei. Erschüttert will nun Robert ihm folgen, als Alice herbeieilt und ihm verkündet, daß Isabella als Braut seiner harre (Terzett: „Was nun beginnen?") Wie Robert schließlich Bertrams Schrift unterzeichnen will, giebt Alice ihm das Testament der Mutter, noch schwankt Robert, da schlägt die Mitternachtsstunde, womit Bertrams Frist, die ihm die Hölle gewährt, den Sohn zu gewinnen, um ist; er versinkt auf ewig, die Thüren der Kirche öffnen sich und Robert wird mit Isabella, Alice mit Raimband vor Gottes Altar vereinigt.

---

## Romeo und Julia. (Von Bellini.)

(Siehe: Capuleti und Montecchi.)

---

## Romeo und Julia.

Oper in 5 Akten von Gounod. Text von Barbier und Carré.

Personen: Der Fürst von Verona = Baß; Graf von Paris, sein Verwandter = Bariton; Graf Capulet = Baß; Julia, dessen Tochter = Sopran; Gertrude, deren Amme = Alt; Tybalt, Capulets Neffe = Tenor; Romeo, ein Montague = Tenor; Mercutio = Bariton; Benvolio = Tenor; Stefano, Romeos Page = Sopran; Gregorio, Capulets Diener = Bariton; Bruder Lorenzo = Baß. — Ort: Verona. Zeit: 14. Jahrhundert.

**1. Akt** Saal bei Capulet. Maskenfest. Unter der Maske ist auch Romeo mit seinen Freunden in dem feindlichen Hause erschienen; er sieht Julia und beide, ohne zu wissen, wer der Andere ist, verlieben sich ineinander. Durch den nahenden Tybalt erfolgt die Erkennung; den mit Romeo ausbrechenden Streit der Capulets verhindert der Hausherr, der den Feind als Gast schützt.

**2. Akt.** Ein Pavillon in Capulets Garten Liebesszene zwischen Romeo und Julia, unterbrochen durch die Diener, die nach Romeos Pagen suchen und dann fortgesetzt bis zum Schluß des Aktes.

**3. Akt.** Lorenzos Zelle. Heimliche Vermählung des Liebespaares durch Lorenzo, der durch diesen Bund den Frieden der feindlichen Häuser herzustellen glaubt.

Verwandlung. Straße mit Capulets Haus Mercutios Streit mit Tybalt. Er wird erschlagen, Romeo rächt den Freund, tötet Tybalt und wird darum von dem Fürsten verbannt.

4. Akt. Julias Zimmer. Romeo hat sich zu Julia geschlichen, die Brautnacht zu feiern. Nachdem Romeo gegangen, kündigt Capulet seiner Tochter an, daß sie sich mit Paris vermählen solle. — Julia erhält von Lorenzo einen Trank, der sie in Scheintod versetzt, um der Verbindung zu entgehen und zu Romeo gelangen zu können.

5. Akt. Die Familiengruft der Capulets. Romeo glaubt Julia tot und trinkt an ihrem Sarge Gift; da erwacht Julia und als Romeo in ihren Armen stirbt, tötet sie sich mit seinem Dolche.

## Die Rose von Pontevedra.

Oper in 1 Akt von Josef Forster. Text vom Komponisten.

Personen: Ines, Witwe, Besitzerin der Posada „Zur Rose von Pontevedra" = Mezzosopran; Rosita, deren Tochter = Sopran; Dolores, eine Fremde = Alt; Pedro, ein Portugiese = Bariton; José, ein junger Matrose = Tenor — Ort: Pontevedra in Spanien. Zeit: Gegenwart. Gotha 1893. (Preisgekrönt)

Gebirgslandschaft und Meeresufer. Die Posada mit Balkon. Mondnacht.

**Vorspiel:** Pedro wirbt in einem Ständchen um die Liebe der koketten Rosita und, den Balkon erkletternd, tritt er in ihr Gemach. Der Zwischenvorhang fällt und hebt sich nach beendeter Orchesterintroduktion wieder.

Nachmittag. Die Dorfmädchen beglückwünschen Rosita, die jedoch ihre Unruhe nicht verbergen kann; sie nimmt die um Herberge flehende fremde Dolores auf und wird dann von José begrüßt, der sie liebt. Sie muß ihn jedoch zurückweisen, da sie sich mit Pedro zu innig eingelassen. Pedro hat bei Ines, Rositas Mutter, um das Mädchen geworben, kann jedoch die Zustimmung nicht erlangen, denn Ines traut ihm nicht. Da Pedro von José als der erkannt wird, der in Oporto einen Nebenbuhler erstochen, sucht er Rosita zur Flucht zu bewegen und sie sagt zu, umsomehr, da die Mutter, der sie ein Geständnis macht, dennoch ihre Einwilligung verweigert. Als jedoch Pedro kommt, sie zu holen und er vor einem Madonnenbild Treue schwört, tritt Dolores hervor, die das Paar belauscht hatte und Pedro erkennt sein verlassenes Weib. Eindringlich, zum Wahnsinn gebracht, frägt Rosita noch einmal Dolores, ob Pedro wirklich ihr Gatte sei, und als diese bejaht, stürzt sich das rasende Mädchen auf den Verführer und durchbohrt ihn mit einem Dolche.

## Der Sängerkrieg auf der Wartburg.

(Siehe: Tannhäuser.)

## Der Rubin.

Musikalisches Märchen in 2 Akten, mit Benutzung des gleichnamigen Märchens von Fr. Hebbel, von Eugen d'Albert.

Personen: Der Kalif; der Vezier; der Kadi; Asaf, ein Jüngling; Hakam, sein Kamerad; Irad, ein Greis; Rustan, Henker; Soliman, ein Juwelier; Bedura. — Ort: Bagdad.

Karlsruhe 1893.

**1. Akt.** Reiche Straße in Bagdad. Der arme Fischersohn Asaf kommt mit seinem Freunde Hakam, trennt sich aber feindlich von diesem, weil er gestohlen. Ein Traum verkündete ihm einst Macht und Glanz; nun kommt der Vezier und berichtet, daß der Kalif dem die Krone verspricht, der die auf rätselhafte Weise verschwundene Prinzessin Bedura wieder bringt — Nachdem sich das Volk verlaufen, zeigt der Juwelier Soliman dem jungen Asaf seine Schätze und dieser, bezaubert von einem Rubin, ergreift den kostbaren Stein, will ihn auch nicht wieder herausgeben, selbst als der Kadi mit dem Henker kommt und ihn zum Tode führt. Im Augenblick, als er zur Richtstatt gebracht werden soll, erscheint der Greis Irad, ergreift Asafs Hand und versinkt mit ihm, zum Erstaunen aller, in die Erde.

**2. Akt** Ein unterirdischer, grottenartiger Gang. Fantastische Dekoration Irad und Asaf sind auf der Bühne. Der Greis teilt dem Jüngling mit, daß ihm die Prinzessin Bedura erscheinen würde, wenn er den Rubin dreimal küsse und verschwindet. Asaf thut, wie ihm geheißen und Bedura zeigt sich seinen Blicken. Sie erzählt ihm, daß ein Zauberer, dessen Zumutungen sie zurückgewiesen, sie in den Rubin gebannt hätte. Ihr Herz öffnet sich der Liebe zu Asaf, der sie retten kann, dem sie aber nicht sagen darf, auf welche Weise die Rettung möglich ist, denn er muß von selbst darauf kommen. Sie wird wieder Stein und Asaf findet sich mit dem Rubin auf der Oberwelt bei Bagdad. Dort sieht ihn Hakam. Als dieser habsüchtig nach dem Ring greift und Asaf denselben verteidigt, kommt auf den Lärm der Kadi mit dem Henker und führt Asaf zum Kalifen, der heute selbst Gericht hält.

Verwandlung: Garten des Kalifen am Tigris. Asaf soll sterben, zuvor jedoch den Ring herausliefern. Er weigert sich und wirft den Rubin, den er niemandem gönnt, in den Tigrisstrom. Da erscheint Bedura, umarmt ihren glücklichen Vater und preist Asaf als ihren Retter, denn dadurch, daß er den kostbaren Stein weggeworfen, ist sie vom Zauberbann erlöst. Der Kalif hält sein Wort und da Bedura ihre Liebe gesteht, vereinigt er sie mit Asaf und dieser besteigt an der Hand des greisen Irad den Thron als neuer Kalif.

## Der Schauspieldirektor.

(Siehe: Mozart und Schikaneder.)

---

## Der Schnee.

Oper in 4 Akten von Auber. Text von Scribe.

Personen: Der Herzog von Lothringen = Baß; Prinzessin Elise, seine Tochter = Sopran; der Prinz von Nassau = Bariton; Edwin, Graf von Lahnstein = Tenor; Gräfin Krusenheim, Oberhofmeisterin = Mezzosopran; Adele von Lauterburg, Hoffräulein = Sopran; Baron von Botweiler = Baß; Wilhem Gärtner = Tenor. — Ort: Lustschloß des Herzogs. Zeit: 19. Jahrhundert.
Paris 1823.

**1. Akt.** Ein Saal Graf Lahnstein ist mit Prinzessin Elise heimlich vermählt. Als der Prinz v. Nassau kommt, der sich um die Prinzessin bewirbt, vergißt sich der Graf gegen ihn und wird auf sechs Monate verbannt. Ohne Elise noch einmal gesprochen zu haben, muß er fort.

**2. Akt** Ein festlich geschmückter Saal. Auf des Prinzen Bitte ist Lahnstein begnadigt und schreibt für den Prinzen an Elise einen Brief, welche die darin enthaltene Bitte um ein Rendezvous als von Lahnstein ausgehend, da sie dessen Handschrift kennt, betrachtet, und auf dem Fest das bestimmte Zeichen der Gewährung giebt

**3. Akt.** Zimmer der Prinzessin. Elise vertraut sich Adele an, daß Lahnstein ihr Gatte sei, giebt ihr den Schlüssel, um den Grafen zu ihr zu führen. Lahnstein kommt aber durchs Fenster, der Schlüssel ist irrtümlich an den Prinzen gelangt. Rechtzeitig entfernt Adele die Gatten und empfängt den Prinzen, wobei sich herausstellt, daß beide Liebe für einander fühlen. Nachdem der Prinz gegangen, soll sich Lahnstein entfernen Es ist aber Schnee gefallen, und um ihn durch die Spur nicht zu verraten, fährt Adele den Grafen in einem Schlitten fort, der vor dem Fenster steht.

**4. Akt.** Saal des 1. Aktes. Der Herzog erfährt durch den Gärtner das Geheimnis der Prinzessin und da Lahnstein seinem Herzen teuer ist, auch als Sohn seines Bruders aus heimlicher Ehe, so sanktioniert er den Bund, den Lahnstein mit seiner Tochter schon geschlossen.

---

## Der schwarze Domino.

Oper in 3 Akten von Auber. Text, nach dem Französischen des Scribe, von Freiherr v. Lichtenstein.

Personen: Lord Elfort = Bariton; Graf Juliano = Tenor; Horatio v. Massarena = Tenor; Gil Perez, Oekonom des königlichen Damenstiftes = Baß; Angela = Mezzosopran; Brigitta = Sopran; Claudia, Julianos Wirtschafterin = Alt; Ursula, eine Stiftsdame = Sopran; Gertrude, Thürsteherin. — Ort: Madrid

Paris 1837.

Vor Jahresfrist hat Angela, die Aebtistin des königlichen Damenstiftes, auf einem Maskenball Horatio kennen und lieben gelernt. Sie besucht jetzt mit Brigitta wieder ein solches Fest, in der Hoffnung, mit Horatio nochmals zusammenzutreffen, was sich auch erfüllt. Im Liebesgeplauder versäumt sie aber die verabredete Stunde der Heimkehr und gelangt auf dem allein angetretenen Rückweg in das Haus des Grafen Juliano, Horatios Freund, wo sie von der Haushälterin Claudia für eine Nichte ausgegeben wird. Als Gil Perez, der Oekonom des Stiftes, zum Rendezvous zu Claudia kommt, erschreckt Angela denselben durch ihre Maske, nimmt ihm die Schlüssel ab und gelangt so glücklich wieder unbemerkt ins Stift. — Horatio kommt ins Stift, von der ihm unbekannten, aber mächtigen Oberin Dispens wegen einer erzwungenen Heirat zu erlangen, erkennt Angela, die sich nun von der Königin ihres Gelübdes entbinden läßt und Horatio ihre Hand reicht, indem sie der Stiftsdame Ursula, jedoch zur Trauer der anderen Damen, ihr Amt überträgt.

1. **Akt.** Vorzimmer eines Ballsaales. Terzett: Angela, Brigitta, Horatio: „Hast Du alles besorgt?“ Romanze Angelas: „Eine Fee, in Gefahren stets Dir nah'“. Duett: Horatio, Angela: „O brechen Sie endlich dies Schweigen“.

2. **Akt** In der Wohnung des Grafen Juliano. Claudias Ariette: „Gar viel Verdienst und Gewinnst“. Ensemble: „Aufgewacht, was da liebt und lebet“. Angelas arragonisches Lied: „Ines so schön täglich seh'n“. Szene: Juliano, Horatio, Angela, Claudia, Chor: „Unmöglich! sie kann's nicht sein“. Finale: Gil Perez: „Heut' bekommen wir Gottseidank!“. Dazu Angela: „Ha Verworfener! Du wagst, mir zu nah'n!“ Dann Claudia, Horatio, Juliano, Elfort und Cavaliere: „Nur stille und leise!“

3. **Akt.** Sprechzimmer im Damenstift. Ariette Brigittens: „Statt weise, salbungsreiche Lehren“. Recitativ und Arie Angelas: „Ach diese Nacht, die ich durchwacht“ und Cavatine: „Unheilvolle Nacht! Flamme, die angefacht“. Ensemble der Stiftsdamen. Arie und Gebet Horatios: „Es giebt die sanfte Harmonie“, dazu Angela und Damen. Finale: „Geliebte Schwestern, hört, was die Königin beschlossen“.

## Siegfried.

(Siehe: Der Ring des Nibelungen.)

---

## Silvana.

Oper in 4 Akten von C. M. von Weber. Der ursprüngliche Text: „Das Waldmädchen" von F. K. Hiemer, unter dem neuen Titel bearbeitet von E. Pasqué und musikalisch ergänzt von F. Langer.

Personen: Die Sage = Sprechrolle; der Rheingraf = Bariton; Graf Gerold, sein Sohn = Tenor; Silvana = Sopran; Ratto, der Köhler = Baß; Dryada, Waldnymphe = Alt; Guntram, Vasall des Grafen = Bariton; der Abt von St. Goar; ein Schließer. — Ort: die Schlösser Sternberg und Liebenstein und deren Umgebung.

Erste Aufführung des „Waldmädchen": Frankfurt a. M. 1810; der „Silvana": Hamburg 188.

**1. Akt.** Rheingegend. Die Sage erzählt einer Gruppe aller Stände die Vorhandlung. Der Rheingraf erschlug aus Eifersucht den Bruder und glaubt auch dessen Kind tot, das aber als Silvana unter dem Schutze der Nymphe Dryada beim Köhler Ratto aufgewachsen. Der Rheingraf bereute seine That und sein Sohn Gerold durchstreift den Wald, in dem Silvana wohnt. — Die Gruppe mit der Sage versinkt und die Handlung beginnt im Walde. — Unter Dryadas Schutz erblickt Gerold Silvana. Beide verlieben sich und während die Nymphe den Köhler Ratto, der Silvana nicht lassen will, in Schlaf versetzt, führt Gerold die Geliebte in glänzendem Zuge als seine vermählte Gattin auf die Rheingrafenburg.

**2. Akt.** Auf Sternberg. Der alte Graf erhält die Nachricht von der bevorstehenden Vermählung seines Sohnes. Silvana findet ihren Schutzgeist, die Nymphe, vor, die als fahrender Sänger in ihrer Nähe bleibt.

Verwandlung: Platz im Dorf am Rhein. Kirmesfeier. Als Silvana den fahrenden Sänger schützt, da dieser durch den Gesang seiner Thaten den Rheingrafen gereizt, erwacht in Gerold wilde Eifersucht und als nun gar noch der anwesende Ratto als Vater Silvanas erkannt wird, läßt der empörte Rheingraf Vater, Tochter und Sänger ins Burgverließ werfen.

**3. Akt.** Turmgewölbe. Der Rheingraf will Silvana zwingen, Gerold aus ihrem Zauber zu lösen, sie findet aber in Gerold selbst den Halt ihrer Liebe. Als sie allein ist und entschlummert, verwandelt die Nymphe den Kerker in einen Elfenwald und zeigt ihr das beseligende Traumbild ihrer Zukunft.

**4. Akt.** Halle auf Sternberg. Gerold kämpft vergebens gegen seinen Vater. Als aber Silvana zum Tode geführt werden

soll, enthüllt Dryada deren wahre Herkunft und nun schließt der Rheingraf Silvana als Tochter und Gattin Gerolds an sein Herz.

## Die Stumme von Portici.

Oper in 5 Akten von Auber. Text von Scribe.

Personen: Alfonso, Sohn des Vicekönigs von Neapel, Graf v. Arcos = Tenor; Elvira, seine Verlobte = Sopran; Lorenzo, Alfonsos Vertrauter = Tenor; Masaniello, neapol. Fischer = Tenor; Fenella, seine Schwester stumm = Schauspielrolle; Selva, Führer der spanischen Leibwache = Baß; Borella, Pietro u. Morena, Masaniellos Freunde = Tenor u Baß; eine Hofdame = Alt. — Ort: Neapel und Portici. Zeit: 1647.
Paris 1828.

Masaniellos Schwester Fenella ist von Alfonso entehrt, dann gefangen gesetzt worden. Sie entflieht und Masaniello, der die Fremdherrschaft haßt, stellt sich an die Spitze des empörten Volkes. Als Selva seine Schwester Fenella wieder verhaften will, sticht Masaniello ihn nieder und giebt das Signal zum Ausbruch der Revolution. Auf der Flucht kommen Alfonso und Elvira in Masaniellos Hütte. Dieser verspricht ihnen Schutz und hält auch sein Wort, als er erfährt, wer sie sind. Er nimmt darauf die ihm angebotene Königskrone an, wird aber von dem ehemaligen Freund Pietro aus Neid vergiftet und verfällt in Wahnsinn. So führt er das Volk noch einmal gegen den verstärkt zurückkehrenden Alfonso und fällt in der Schlacht. Fenella stürzt sich bei der Nachricht vom Tode Masaniellos ins Meer.

1. **Akt.** Vor einer Kapelle bei Neapel. Introduktion des Chores und Arie Alfonsos: „O Du dem Gram erkoren". Lorenzo kommt, den er nach der entflohenen geliebten Fenella entsandte, der aber das Mädchen nicht gefunden. Alfonso liebt sie mit Glut, obwohl sie stumm ist. — Elviras Arie: „Wie sind des Glanzes Freuden". Fenella flüchtet zu ihr, giebt zu verstehen, daß die Liebe sie unglücklich gemacht, daß Selva sie ins Gefängnis geworfen, woraus sie entflohen sei, aber verfolgt, sich hierher geflüchtet habe. Elvira verspricht ihr Schutz. — Alfonso feiert mit Elvira Hochzeit, Fenella erkennt in ihm den Geliebten und bezeichnet ihn Elvira als ihren Verführer, worauf sie vor dem eindringenden Selva durch die Volksmenge entflieht.

2. **Akt.** Meeresstrand. Chor der Fischer: „Auf Freunde auf, schon strahlt der junge Morgen". Dazu Masaniello; Barcarole: „O seht, es strahlet hell der Morgen". Pietro, der nach Fenella geforscht, kommt. Duett: „Weit eher den Tod, als ein schimpfliches Leben". Nun eilt Fenella herbei stürzt, in Masaniellos Arme und gesteht ihm ihre Schmach. Aufs äußerste gebracht, ruft der Fischer die Genossen zu den Waffen.

3. **Akt.** Marktplatz in Neapel. Chor: „Kommt, Alt und Jung und Groß und Klein". Ballett: Tarantella. Selva kommt,

Fenella zu ergreifen und wird von Massaniello niedergestochen. Chor, Gebet: „Himmlischer Vater, schenk Dein Erbarmen". Dann brechen alle zur Rache auf.

**4. Akt.** Masaniellos Wohnung. Recitativ, Arie und Szene Masaniellos: „O Schreckenstag". Dann bewacht er den Schlummer der erschöpften Schwester. Schlummerarie: „O senke, süßer Schlaf, Dich nieder". Pietro kommt und meldet, daß Alfonso noch versteckt in der Nähe weile, das Volk verlangt sein Blut, doch Masaniello weigert sich, diese Handlung gutzuheißen. Nachdem ihn das Volk verlassen, kommen Alfonso und Elvira und flehen Fenella um Schutz an. Den Geliebten will sie retten, aber die Rivalin soll sterben. Cavatine Elviras: „Ach friste noch mein Leben". Fenella ist gerührt und fordert Masaniello auf, beide zu schützen. Er nimmt sie gastlich auf. Finale: Vom Volke umringt kommt der Magistrat, Masaniello den goldenen Schlüssel zu bringen. Pietro erkennt Alfonso, Masaniellos Blut wallt auf, aber an sein Wort gebunden, bewahrt er ihn vor des Volkes Wut. Terzett mit Chor: „Du gabst Dein Wort". Masaniello empfängt die Krone und verläßt seine Hütte.

**5. Akt.** Halle im Palast mit Blick auf den Vesuv. Pietro und Chor. Barcarole: „Seht, seht, auf wilden Meereswogen". Borella bringt die Kunde vom Nahen Alfonsos mit einem Heere; das Volk zählt auf Masaniello, doch dieser ist wahnsinnig geworden. Als man ihm aber den Namen Alfonso nennt, ruft er nach den Waffen und stürzt in den Kampf. Alfonso siegt, Masaniello ist gefallen, da eilt Fenella auf die Terasse und stürzt sich ins Meer.

---

## Tannhäuser und der Sängerkrieg auf der Wartburg.

Oper in 5 Akten von R. Wagner. Text vom Komponisten.

Personen: Hermann, Landgraf von Thüringen = Baß; Tannhäuser = Tenor; Wolfram von Eschinbach = Bariton; Walter von der Vogelweide = Tenor; Biterolf = Baß; Heinrich der Schreiber = Tenor; Reimer v. Zweter = Baß; Elisabeth, Nichte des Landgrafen = Sopran; Venus = Sopran; ein junger Hirt = Sopran. — Ort: Thüringen und Wartburg. Zeit: 13. Jahrhundert.

Der Dichterkomponist bezeichnet das Werk eigentlich nicht als Oper, sondern als „Handlung". — Dresden 1845.

**1. Akt.** Der Venusberg der (Hörselberg der „Frau Holda" in Thüringen, unweit Eisenach). Dort weilt Tannhäuser und genießt die Liebe der Venus. Die Göttin sucht den der Erde in ihrem Schoß träumenden Tannhäuser durch ihren sinnlichen Zauber zu fesseln. Ballettszene. Doch Tannhäuser ist ersättigt und sehnt sich nach Frühling und Glockengeläute. Noch einmal greift er in die Saiten und huldigt der Göttin durch ein feuriges

Liebeslied, das er aber doch mit der dringenden Bitte erledigt, sie möge ihn ziehen lassen. Als Venus ihn aufs Neue zu locken sucht, ruft er ihr entgegen: „Mein Heil ruht in Maria“ und damit hat er den Zauber beschworen, der Venusspuk verschwindet und er befindet sich plötzlich in einer Frühlingslandschaft, zu Füßen des Wartburgberges. Auf einem Felsen singt ein junger Hirt, bläst die Schalmei und besingt den erwachten Lenz; an den staunend verharrenden Tannhäuser ziehen Pilger vorüber und in Reue zerfließend sinkt er schluchzend in die Knie. So findet ihn der Landgraf und dessen Waidgesellen Wolfram, Walter, Biterolf, Reimar und Heinrich. Mit Freuden wird der langvermißte Sänger, der ihren Kreis geflohen, weil er im Wettgesang unterlegen, willkommen geheißen. Zwar will er nicht mit ihnen ziehen, als aber Wolfram ihm verkündet, daß sein Sang ihm die Liebe Elisabeths errungen, folgt er dem Landgrafen und den Sängern zur Wartburg.

**2. Akt.** Sängerhalle auf der Wartburg. Elisabeth lebte seit Tannhäusers Verschwinden zurückgezogen Nun, da sie seine Rückkehr vernimmt, willigt sie freudig ein, einem Sängerwettkampf beizuwohnen und betritt mit Herzensfreude die Sängerhalle. Wolfram führt Tannhäuser zu ihr, der Elisabeth mit reiner Wonne naht, seine jüngste Vergangenheit in dichtes Vergessen hüllend. Von edler Liebe ergriffen, wirft er sich zu Elisabeths Füßen. Mit dem Landgrafen empfängt Elisabeth nun die Gäste, die Edlen der Umgebung, die in glänzendem Zuge (Einzugsmarsch und Chor) zahlreich erscheinen. Nach der Begrüßung erläßt der Landgraf die Preisaufgabe an die Sänger, „der Liebe Wesen zu ergründen“, dem Würdigsten soll Elisabeth den Preis reichen und verlange er ihn noch so hoch. Wolfram beginnt; er findet, daß die Liebe einem Bronnen gleiche, den man nicht frevelnd trüben solle, worauf ihm Tannhäuser erwidert, daß er die höchste Liebe nur „im Genuß“ fände. Alle andern Sänger stimmen nun Wolfram bei, gegen jeden wendet sich Tannhäuser in immer mehr steigender Leidenschaftlichkeit, bis er dem noch einmal entgegnenden Wolfram mit dem Liebeslied an die Venus antwortet und den Sängern zuruft, wenn sie die Liebe kennen lernen wollten, so sollten sie nach dem Venusberg ziehen. Entsetzt fliehen alle Frauen, bis auf Elisabeth, aus dem Saal und die Ritter ziehen empört gegen Tannhäuser das Schwert. Elisabeth wirft sich schützend vor den Geliebten und da dieser bereut, weist ihn der Landgraf an, mit den jüngeren Pilgern nach Rom zu ziehen, um vom Papste Vergebung zu erlangen.

**3. Akt.** Das Thal der Wartburg. Herbstlandschaft. Das Orchester illustriert im Zwischenspiel die Pilgerfahrt Tannhäusers. Elisabeth, von Wolfram begleitet, liegt im Gebet und forscht dann bei den heimkehrenden Pilgern nach Tannhäuser. Vergebens.

Noch einmal betet sie inbrünstig und geht gebrochen zur Wartburg zurück. Wolfram ahnt den Tod der Holden (Lied an den Abendstern); da erblickt er einen hereinwankenden Pilger in zerrissener Kleidung — es ist Tannhäuser, der in Verzweiflung den Weg zum Venusberg sucht. Der Papst hat ihm nicht vergeben, aber verflucht; so ruft er die Liebesgöttin an, die ihm, zum Entsetzen Wolframs, auch erscheint und willkommen heißt. Da zeigt Wolfram auf den eintretenden Zug, der die Leiche Elisabeths bringt. Erschüttert stürzt Tannhäuser über die Edle zusammen und stirbt mit den Worten: „Heilige Elisabeth bitte für mich". Jetzt nahen die jüngeren Pilger und verkünden, daß dem dürren Stab, den der Papst als ein Zeichen der ewigen Verdammung Tannhäusers aufgestellt, junges Grün entsprossen sei.

(Wagner nahm 1875 einige Veränderungen vor und in dieser Gestalt gelangte Tannhäuser zum erstenmale zur Aufführung in Wien 1875 im November).

## Tell.

Oper in 3 Akten von Rossini. Text von Bis und Jouy.

Personen: Geßler = Baß; Rudolf der Harras = Tenor; Wilhelm Tell = Bariton; Walter Fürst = Baß; Melchthal = Baß; Arnold, dessen Sohn = Tenor; Leuthold = Tenor; Mathilde, kaiserl. Prinzessin = Sopran; Hedwig, Tells Gattin = Sopran; Gemmy, Tells Sohn = Sopran; Ruodi, ein Fischer = Tenor. — Ort: Schweiz. Zeit: 14. Jahrhundert.

Paris 1829.

**1. Akt.** Platz am Vierwaldstätter See mit Tells Haus. Chor: „Mild erglüht die Maiensonne" und Quartett: Ruodi, Tell, Hedwig, Gemmy und Chor: „O komm, mein süßes Leben". Der alte, verehrte Melchthal kommt, das Hirtenfest mitbegehen zu helfen, während sein Sohn Arnold in Liebesschmerz um Mathilde leidet. Szene und Abgang der Hirten. Arnold bleibt allein, er haßt Geßler und die Unterdrücker des Vaterlandes, aber die Liebe zu Mathilde, der er einst das Leben gerettet, hat ihn auf die Seite der Landesfeinde gezogen. Tell tritt zu ihm (Duett: „Ha, wohin? Sprich, was soll Dein Eilen?"), Arnold gesteht ihm seine Liebe („O Mathilde, Du Engel meiner Triebe") und Tell sucht ihn für die Sache des Vaterlandes zu gewinnen, was Arnold stark bewegt. Er geht und die Hirten treten wieder auf, das Fest zu feiern (Chor mit Tanz: „Tag der Wonne, Maiensonne"). Da stürzt Leuthold herein; ein Tyrannenknecht wollte ihm die einzige Tochter entreißen und mit der Axt hat er ihm den Kopf gespalten, nun wird er verfolgt und fleht um Rettung. Bei dem ausbrechenden Sturm wagt aber der Fischer Ruodi nicht, den Verfolgten über den See zu führen, da erbietet sich Tell, besteigt mit Leuthold das Boot und stößt ab, als die Verfolger erscheinen. Finale (Chor: „Du ewiger Gott, Du Gott der Huld").

Rudolf der Harras, der die Soldaten führt, nimmt den alten Melchthal als Geisel mit, läßt die Hütten plündern und anzünden, um sich für den Entflohenen zu rächen (Ensemble: „Laßt Flammen wüten“).

2. **Akt.** Wald (Jägerchor: „Lasset die Hörner erschallen“, dem ein entfernter Hirtenchor antwortet: „Schon sinkt die Sonne in die Fluten“ und Romanze Mathildens: „Du stiller Wald, Luft umhaucht Deinen Schatten“) Arnold tritt zu ihr (Duett: „Mathilde, vergieb meine Liebe“) und Mathilde gesteht ihm, daß ihr Herz sein gehöre. Dieses Wort trennt ihn vom Vaterlande, als aber Tell und Walther Fürst zu ihm kommen und erzählen, wie sein Vater von den Tyrannen ermordet sei, da führt ihn die Rache zu den Schweizern zurück (Terzett: „Es liegt Dein Vaterland in Sklavenketten“).

Verwandlung: Rütli. Tell, Arnold, Walter und schweizer Männer aus Unterwalden („Ruft das Vaterland“), Schwyz („Unser Joch lastet schwer“) und Uri („Heil! Heil dem Vaterlande“) versammeln sich zum Eidschwur („Gelobt seis bei unserer Schmach“) und rufen sich zum Streite.

3. **Akt.** Freie Gegend Arnolds Arie: „Du meiner Väter niedere Hütte“. Er stellt sich dann an die Spitze einer Schar bewaffneter Schweizer. (Diese Szene bleibt in der Aufführung bei manchen Bühnen fort).

Verwandlung: Marktplatz zu Altdorf, wo Geßler eine Stange mit einem Hut aufgestellt, mit dem Befehl, daß jedermann dem Hut durch Gruß Achtung bezeugen sollte. (Marsch und Chor: „Heil Dir und Ruhm, Gebieter“). Geßler kommt und erläßt das Gebot wegen des Hutes. Dann folgt Ballett. Tell wird von Rudolf verhaftet, weil er sich vor dem Hut nicht beugte und zu Geßler gebracht (Quartett: „Schaurig sollst Du büßen“). Der Landvogt befiehlt dem Gefangenen, einen Apfel vom Kopf des Sohnes zu schießen (Finale: „Ich segne Dich, mein theures Kind“). Nach schwerem Kampf schießt und trifft Tell, als er aber die Frage Geßlers, was er mit einem zweiten Pfeil, den er zu sich gesteckt, zu machen beabsichtigte, dahin beantwortet, daß er mit diesem zweiten Pfeil den Vogt durchschossen hätte, wenn er sein liebes Kind getroffen, da läßt ihn Geßler gebunden fortführen trotz des Einspruchs Mathildens

4. **Akt.** Szene des 1. Aktes. Hedwig trauert um den Gatten, da kommt Gemmy gesprungen, den Mathilde der Mutter zurückbringt (Terzett: „Ich gebe, Mutter, Dir den Sohn zurück“). Nun eilt auch Tell herbei, der den Feinden entsprungen ist, er lauert auf den verfolgten Geßler und durchbohrt ihn mit seinem Pfeil. Arnold kommt mit den Schweizern und verkündet den Fall der Zwingburgen („Heil uns, die Zwingburg ist nicht mehr“). Mit einem Gebet und Zuruf an die Freiheit endet die Oper.

# Der Templer und die Jüdin.

Oper in 3 Akten von H. Marschner. Text, nach Walter Scotts Roman „Ivanhoe", von Wohlbrück.

Personen: Cedric, Ritter vom sächsischen Adel = Baß; Wilfred von Ivanhoe, sein Sohn = Tenor; Rowena, sein Mündel = Sopran; Beaumanois, Großmeister des Templerordens = Baß; Brian de Bois Guilbert, Templer = Bariton; Maurice de Bracy = Tenor; Albert Malvoisin = Bariton; der schwarze Ritter = Baß; Locksly, Hauptmann der Geächteten = Tenor; Wamba, Cedrics Narr = Tenor; Oswald, Cedrics Haushofmeister; Robert, Knappe des Bois Guilbert; Elghita, Rowenas Zofe; Bruder Tuck, Einsiedler = Baß; Isaak von York, ein Jude; Rebecca, seine Tochter = Sopran. — Ort: Grafschaft York in England. Zeit: 1194.

Leipzig 1829.

**1. Akt.** Wilde Gegend Bracy lagert sich mit seinen Gefährten, um den Zug Rowenas aufzulauern und trifft mit Guilbert zusammen, der es auf Rebecca abgesehen. Beide vereinigen sich. Cedric kommt mit seinen Leuten vom Turnier, wo Wilfried, sein verstoßener Sohn, zu seinem Aerger den ersten Preis als Sieger davongetragen. Cedric ist ein Anhänger Lord Athelstanes, dem nach seiner Ansicht, da König Richard verschollen ist, der Thron gebühre und Rowena, aus dem Geblüt der alten sächsischen Könige, sollte mit Athelstane den Thron besteigen. Nun hat Wilfried sein Auge zu Rowena erhoben, darum ist er verstoßen, obwohl Rowena Athelstane haßt und Wilfried lebt (Wambas Arie: „'s wird besser geh'n, die Welt ist rund und muß sich dreh'n"). Der Jude Isaak und Rebecca bringen den im Turnier verwundeten und ohnmächtigen Wilfried und dürfen sich dem Gefolge Cedrics anschließen, nachdem Rebecca leise Rowena mitgetheilt, wer der Verwundete sei

Verwandlung: Die Einsiedlerhütte des Bruder Tuck Ein Ritter verlangt Einlaß und wird mit Wein und Gesang erfrischt (Tuck's Lied: „Der Barfüßer Mönch seine Zelle verließ, Ora pro nobis!") Da kommt Locksly mit der Nachricht, daß eine Bande Bösewichter Cedric, Athelstane und Rowena gewaltsam auf das Schloß Bracys geschleppt haben. Tuck und der Ritter begleiten Locksly mit seiner Schar zur Befreiung.

Verwandlung: Zimmer in Bracys Schloß. Mit Cedric ist auch Rebecca gefangen und in der Gewalt Guilberts, der ihr seine glühende Liebe gesteht, obwohl Rebecca ihn mit Abscheu zurückweist. Als das Kampfgeschrei der anstürmenden Sachsen ertönt, läßt Guilbert von Rebecca ab und eilt hinaus; auch der verwundete Wilfried Ivanhoe hat sich erhoben, wird aber von seiner Pflegerin Rebecca zurückgehalten (Duett: „Teures Mädchen? sagt er — Wem?") Ivanhoe erfährt, daß sie Jüdin ist, weiht ihr aber doch seine Dankbarkeit.

Verwandlung: Der Hof des brennenden Schlosses. Die Sachsen haben gesiegt. Ivanhoe konnte sich aus dem zusammen-

stürzenden Schloß retten, aber Rebecca weilt in den Flammen. Guilbert eilt zu ihr und obwohl sie ihren Vater, der noch im Schlosse weilt, nicht verlassen will, trägt er sie mit Gewalt hinaus.

**2. Akt.** Waldplatz, Cedric und seine Leute sind gerettet und kehren heim. Auch Rebeccas Vater wird vom Bruder Tuck herbeigebracht. Der unbekannte schwarze Ritter sendet den Juden nach der Burg der Templer, wo er die Tochter finden soll. Nach einem Lied mit Chor erscheint der wiederhergestellte Ivanhoe, begrüßt den Ritter als König Richard Löwenherz und meldet das Nahen seines Heeres. Locksly und die Geächteten huldigen dem König, der ihnen seine Gnade zuweist (Arie Ivanhoes: „Es ist dem König Ehr' und Ruhm").

Verwandlung: Gemach im Präceptorium der Templer. Isaak hat sich an den Großmeister gewendet, doch Guilberts Freund Malvoisin weiß Rebecca zu halten, da er sie der Zauberei anklagt, wofür sie vom Orden gestraft werden soll. Guilberts Liebe zu der Jüdin ist in wilde Leidenschaft übergegangen (Szene: „Mich verschmähen!" Recitativ: „Doch noch einmal steigt von Fern" und Arie: „Das thatest Du mit heil'gem Feuer").

Verwandlung: Der Turnierplatz der Templer. Guilbert will Rebecca retten, indem er ihr den Wunsch zu erkennen giebt, ihr Ritter im Gotteskampfe für sie sein zu dürfen. Da aber zu seinem Entsetzen der Orden ihn zum Gegner bestimmt, muß Rebecca sich bis zum nächsten Tag bescheiden, ob ein Kämpfer für sie sich meldet.

**3. Akt.** In Cedrics Schloß. König Richard versöhnt Ivanhoe mit Cedric und vereinigt ihn mit Rowena (Chor: „Schlinget frohe Tänze", Ivanhoes Lied: „Wer ist der Ritter hochgeehrt" und Rowena: „Ach, lange war das Vaterland im blut'gem Haß geteilt"). Rebeccas Vater Isaak bringt Ivanhoe Kunde von den Vorgängen bei den Templern und der junge Ritter eilt fort, für seine Lebensretterin einzustehen. Dazwischen Wambas Lied: „Es ist doch gar köstlich, ein König zu sein".

Verwandlung: Rebeccas Kerker (Preghiera: „Herr, aus tiefen Jammernöten" Noch einmal kommt Guilbert zu ihr, sie zu retten, aber sie weist ihn von sich (Duett: „Weh mir! Du bist's").

Verwandlung: Turnierplatz der Templer. Ivanhoe kommt im letzten Augenblick und besiegt Guilbert. Schon naht auch der König, der um den nur halb geheilten Freund Sorge trägt, befreit Rebecca und hält Gericht mit den Templern, denn er allein ist der König und ein strenger Feind aller Willkür (Schlußchor: „Laßt lauten Jubelruf erschallen").

# Des Teufels Anteil.

## (Carl Broschi.)

Komische Oper in 3 Akten von Auber. Text von Scribe.

Personen: Ferdinand VI. von Spanien = Bariton; Maria Theresia, seine Gemahlin = Sopran; Rafael d'Estuniga = Tenor; Gil Vargas, sein Hofmeister = Baß; Carlo Broschi = Sopran; Casilda, seine Schwester = Sopran; der Großinquisitor; = Baß; der Graf von Medrano. — Ort: Bei Madrid und Aranjuez. Zeit: 1763.
Paris 1843.

Der König ist trübsinnig und wird in dieser Stimmung von dem Großinquisitor gehalten, dem daran liegt, den König von seiner liberalen Gattin zu trennen. Ferdinand ist dazu umsomehr bereit, da er Casilda liebt, die ihm aber entflieht, so daß er sie nun tot wähnt. Da erhält die Königin unerwartete Hilfe in Casildas Bruder, dem Sänger Carlo Broschi, der den König durch seine Lieder in heitere Laune versetzt und dem es gelingt, die Pläne des Großinquisitors zu durchkreuzen. — Er belauscht auch den jungen Rafael, der seine Schwester Casilda liebt und der die Absicht äußert, sich mit dem Teufel zu verbinden, um eine Stelle bei Hofe zu erlangen. Carlo stellt sich ihm als Teufel vor, schließt Halbpart mit ihm und erlangt für ihn durch seinen Einfluß bei dem Herrscherpaar eine Stelle als Oberst. Der König fesselt Rafael an seine Person, da ihm Carlo seine Schwester Casilda, die Ferdinand für tot gehalten, als dessen Gemahlin vorstellt. Zwar verrät der ängstliche Rafael das ganze Spiel an den König und dadurch scheint der Großinquisitor zum Siege zu kommen, aber Carlo erklärt dem König, daß er nur so gehandelt, um den Plan seiner Feinde zu enthüllen und Ferdinand schenkt ihm Glauben. Rafael, der inzwischen eine große Erbschaft gemacht, wird nun vom König selbst mit Casilda vereinigt.

**1. Akt.** Waldgegend mit Kloster und Wirtshaus. Arie Rafaels: „Ich seh' sie vor mir stehen". Recitativ und Arie Carlos: „Ohne Freund auf dieser weiten Erde". Romanze Casildas: „Schweigend und mild". Duett: Casilda, Carlo: „O mein Freund, einz'ge Stütze mir!" Romanze Carlos: „Schließ Aeuglein wieder, Du liebliches Kind" und Szene zwischen König, Königin und Carlo. Jägerchor: „Wie reizend zu jagen". Recitativ und Beschwörungsarie Rafaels: „Asmodeus, höllischer Geist, erscheine mir." Szene zwischen Carlo und Rafael.

**2. Akt.** Saal im Palast zu Madrid. Chor, Szene und Lied Carlos: „Signora amalata. Me voilà. ich bin schon da". Szene, Chor und Lied Rafaels: „Was nützen Weisheit und Genie". Quartett: Casilda, König, Königin und Carlo: „Bleiche Furcht macht mich erbeben". Duett: Casilda, Rafael: „Was wir der

mir wohl endlich sagen". Finale: Ensemble: „Allmächtige Liebe, ach stehe mir bei".

**3 Akt.** Gartensaal. Carlos Arie: „Schon längst ist fort mein treuer Bote", „O komme, laß mich nicht verzagen". Duett: Casilda, Rafael: „Ihn glauben machen . . . . . es ist schrecklich . . . . . als wäre der Teufel jetzt bei uns". Finale: Ensemble: „Das ist zu kühn und zu vermessen". Schlußchor: „Holdes Glück, senke Dich nieder.

## Titus der Gütige.

Oper in 2 Akten von Mozart. Text, nach Metastasio, von E. Mazzola.

Personen: Titus, römischer Kaiser = Tenor; Sextus = Alt; Annius, dessen Freund = Alt; Servilia = Sopran; Vitellia, Tochter des Kaisers Vitellius = Sopran; Publius, Anführer der Leibwache = Baß — Ort: Rom. Zeit: 79 nach Christi.
Prag 1791.

**1. Akt.** Vitellia, die Tochter des entthronten Vitellius, verschwört sich mit ihrem Geliebten Sextus gegen den Kaiser Titus, Sextus hat soeben seine Schwester Servilia mit Annius verlobt als Titus von ihm deren Hand begehrt. Titus tritt zurück, als Servilia ihm die Liebe zu Annius gesteht und will sich nun um Vitellia bewerben, als die Verschwörung ausbricht.

**2. Akt.** Sextus, welcher glaubt, er habe Titus getötet, wird verhaftet und der Kaiser will ihm vergeben, wenn er seine Schuld gesteht. Sextus verharrt in Schweigen, um Vitellia nicht zu verraten, als aber die Todesstrafe an ihm vollzogen werden soll, gesteht Vitellio, auf Dringen Servilias, dem Kaiser alles ein. Titus verzeiht.

## Marie, die Tochter des Regiments.

(Siehe: Marie.)

## La Traviata.

### (Violetta)

Oper in 4 Akten von Verdi. Text, nach dem Roman „Die Kameliendame" des Dumas fils, von Piave.

Personen: Violetta Valery = Sopran; Flora Bervoix = Sopran; Annina, Dienerin = Mezzosopran; Alfred Germont = Tenor; Germont, sein Vater = Bariton; Gaston v. Létorières = Tenor; Baron Douphal = Bariton; Marquis v. Orbigny = Bariton; Dr. Grenvil = Baß; Josef, Diener. — Ort: Paris und Umgebung. Zeit: Gegenwart.
Venedig 1853.

Die das Leben einer leichten Dame führende Violetta Valery lernt Alfred Germont kennen, erfaßt eine wahre Liebe für ihn und

entsagt seinetwegen ihrem bisherigen Leben. Zurückgezogen führen beide ein idyllisches Liebesdasein, bis Alfreds Vater zu Violetta kommt und ihr sagt, daß die Zukunft Alfreds und das Glück von dessen Schwester durch ihre Verbindung mit seinem Sohne zertrümmert würde. Blutenden Herzens willfahrt Violetta dem rührenden Flehen des alten Germont, verläßt den geliebten Alfred und macht ihn glauben, es geschehe das aus Sehnsucht nach ihrem früheren Leben. Sich zu betäuben, stürzt sich Violetta wilder als je in den Strudel des Leichtsinns, wird so von Alfred in einer großen Gesellschaft getroffen und beleidigt. Violettas derzeitiger Verehrer, Baron Douphal, fordert deswegen Alfred zum Duell, Violetta aber wird durch die Aufregung auf das Krankenlager geworfen. -- Der alte Germont ist bewegt und will nun Alfred die Verbindung mit der Geliebten gestatten, nachdem er ihm Violettas Verhalten erklärt. Glücklich eilt Alfred zu dieser, findet aber eine Sterbende, die in seinen Armen verscheidet.

**1. Akt.** Saal bei Violetta. Ensemble der Festgesellschaft. Trinklied: Alfred: „Auf, schlürfet in durstigen Zügen" und Violetta: „Wer fröhlich das Leben genießet". Alfreds Liebesgeständnis: „Seit einem Jahr — So hold, so reizend, so engelsmild". Chor: „Schon erstrahlt die Morgenröte". Szene und Arie Violettas: „Seltsam, sehr seltsam" und „Er ist es, dessen wonnig Bild".

**2. Akt.** Zimmer eines Landhauses. Alfreds Szene: „Entfernt von ihr" und Arie: „Ach, ihres Auges Zauberblick" Szene und Duett: Violetta, Germonts Vater: „Fräulein Valery?" und „Gott schenkte eine Tochter mir". Szene: Violetta, Alfred: „Was machst Du?" Szene Alfreds und Arie Germonts: „Hat Dein heimatliches Land?"

**3. Akt.** Festsaal bei Flora. Szene und Zigeunermaskenchor: „Wir sind Zigeunermädchen", sowie Maskenchor der Stierfechter: „Aus dem Cirkus von Madrid". Dazu Alfred. Szene mit Violetta und Duellforderung Douphals Szene zwischen Violetta, Germont und Alfred. Violetta: „Alfred, Du kennst nicht meine Liebe".

**4. Akt.** Schlafzimmer Violettas. Szene zwischen Violetta, Annina und Arzt. Violetta liest den Brief Germonts, der ihr die Zustimmung zur Verbindung mit Alfred bringt („Lebt wohl! Ihr Gebilde, die einst mich umfangen"). Szene und Duett: Violetta Alfred: „O Du mein Leben, Du mein höchstes Glück". Finale Germont, Violetta, Alfred, mit Violettas Tod.

# Tristan und Isolde.

Musikalisches Drama in 3 Akten von R. Wagner.

Personen: König Marke = Baß; Isolde = Sopran; Tristan = Tenor; Kurwenal = Bariton; Melot = Bariton; Brangäne = Mezzosopran; ein Steuermann = Tenor; ein Hirt = Tenor. — Ort: Schiff und die Burgen Markes und Tristans.

München 1865. Wagner folgt in den Hauptzügen der gleichnamigen Dichtung Gottfried von Straßburgs und hat in dem musikalischen Teil die äußersten Grenzen der von ihm verfolgten Richtung erreicht.

**1. Akt.** Ein Schiff. Tristan ist ausgezogen, um Isolde, die Braut des Königs Marke von Irland nach Cornwallis zur Vermählung zu führen. In einem, durch einen Vorhang abgetrennten Teil des Schiffes weilt Isolde mit ihrer Begleiterin Brangäne. Sie hat in Tristan den erkannt, den sie einst, als er verwundet zu ihr gebracht, gepflegt hat, von dem sie aber nun weiß, daß er im Kampf ihren Verlobten Morold erschlagen. Ihr Gemüt schwankt zwischen Rache und Liebe, aber endlich beschließt sie, Tristan zu töten und fordert Brangäne auf, eines Todestrank zu brauen, den sie mit ihm als „Sühnetrank" trinken will. Isoldens Mutter hat Brangäne mehrere Zaubertränke mitgegeben und so kommt eine Verwechselung zu stande und Tristan und Isolde genießen zusammen einen „Liebestrank". — Lange schauen sie sich an, immer inniger, da der Zauber wirkt und sinken sich schließlich im Liebestaumel in die Arme.

**2. Akt.** Markes Burg. Als Marke auf der Jagd ist, warnt Brangäne Isolde vor Melot, der aus Eifersucht Verrat geübt, doch giebt Isolde dem geliebten Tristan das Zeichen zum Nahen. Es folgt das große Liebesduett, an Zeitdauer wohl das längste, das je geschrieben Der treue Kurwenal stürzt herein, Tristan zur Rettung aufzufordern, schon aber folgt Melot mit Marke und seinem Gefolge. Der edle Marke dankt Melot nicht für den Verrat und Tristan zieht gegen den Verräter das Schwert, fällt aber im Zweikampf.

**3. Akt.** Tristans Burg Karnol. Hierher hat Kurwenal den schwerverwundeten Tristan geflüchtet und Isolde benachrichtigt. Als die Geliebte naht, reißt Tristan den Verband von seinen Wunden und stirbt in Isoldes Armen. Marke ist Isolde gefolgt, um sie mit Tristan zu vereinigen. Kurwenal jedoch glaubt an feindliche Absicht, tritt dem Nahenden mit der Waffe entgegen und tötet Melot, im Kampfe selbst zum Tod getroffen. Isolde stirbt vor Schmerz an Tristans Leiche und trauernd steht der alte Marke, seinen Segen über die Toten sprechend.

# Die Trojaner.

Von Hector Berlioz. Text vom Komponisten.

## Erster Teil.

### Die Eroberung von Troja.

Oper in 3 Akten.

Personen: Priamus = Baß; Hekuba = Alt; Kassandra = Mezzosopran; Polyxena = Chorpartie; Hektors Geist = Baß; Andromache = stumm; Asthanax = stumm; Aeneas = Tenor; Ascanius = Sopran; Pantheus = Baß; Choroebus = Bariton. — Ort: Vor und in Troja.

In Frankreich nicht aufgeführt. Erste Aufführung in Deutschland: Karlsruhe 1890.

**1. Akt.** Das verlassene griechische Lager vor Troja. Die Trojaner plündern das Lager und eilen dann fort, das entdeckte hölzerne Pferd zu sehen. Die prophetische Kassandra sieht das Unheil nahen, aber vergebens beschwört sie ihren Verlobten Choroebus, sich zu retten.

**2. Akt.** Vor Troja. Die Trojaner erfreuen sich an Spielen und als die Kunde vom Tode Laokoons kommt, beschließen sie, das hölzerne Riesenpferd in die Stadt zu bringen, um die von Laokoon beleidigte Pallas zu versöhnen. Kassandra warnt, ungehört.

**3. Akt.** Zelt des Aeneas. Der Geist Hektors verkündet dem Aeneas Trojas Untergang und weist ihn nach Italien, ein neues Reich zu gründen. Pantheus und Choroebus bringen die Nachricht von den rückkehrenden Griechen, die durch ihre, im Pferd verborgenen Genossen in die Stadt gelassen sind, wo sie blutig walten. Aeneas stellt sich an die Spitze der Trojaner.

Verwandlung: Das Heiligtum der Vesta im Palast des Priamus. Kassandra verkündet den Frauen des Choroebus Tod und den Rückzug des Aeneas. Als die Griechen eindringen, rettet sich Kassandra mit den Frauen durch freiwilligen Tod vor Sklaverei.

---

## Zweiter Teil.

### Die Trojaner in Karthago.

Oper in 5 Akten.

Personen: Dido = Sopran; Anna = Alt; Aeneas = Tenor; Ascanius = Sopran; Pantheus = Baß; Narbal = Baß; Iopas = Tenor; Hylas = Tenor. — Ort: Karthago.

Paris 1863.

**1. Akt.** Gartensaal in Didos Palast Der Numidierkönig Jarbas will Dido v. Karthago zur Ehe zwingen, als Aeneas mit den geretteten Trojanern um Aufnahme bittend erscheint. Gastlich empfangen, ruft er die Seinen zur Befreiung Didos auf, da Jarbas mit Heeresmacht heranzieht.

2. **Akt.** Der siegreiche Aeneas kehrt zurück, von Dido festlich empfangen. Er erzählt von Troja und gewinnt Didos Liebe. Allein mahnend erscheint Merkur, ihn nach Italia rufend.

3 **Akt** Säulenhalle im Palast Narbal, der Aeneas Bestimmung, in Italia ein Reich zu gründen, kennt, glaubt nicht, daß Aeneas als Didos Gemahl in Karthago bleiben werde, spricht dies gegen Aeneas aus, und will Dido warnen.

Verwandlung: Urwald bei Karthago. Dido und Aeneas flüchten vor dem Gewitter in eine Grotte, wo sie nach einer pantomimischen Szene der Waldgötter sichtbar werden.

4. **Akt.** Meeresstrand mit dem Zeltlager der Trojaner und deren Schiffen im Hafen. Von den Geistern der erschlagenen Führer der Trojaner gemahnt, beschließt Aeneas, seine heiße Liebe zu bekämpfen und nach Italia in See zu stechen. Vergebens sucht ihn Dido zurückzuhalten, so daß sie ihn mit einem Fluche verläßt, als er sein Schiff besteigt.

5. **Akt.** Zimmer in Didos Palast. Dido will nochmals Boten an Aeneas senden, um wenigstens Aufschub seiner Abfahrt zu erlangen. Als sie aber die Nachricht erhält, daß die Schiffe der Trojaner den Hafen schon verlassen, giebt sie auch den Gedanken an eine Verfolgung auf und befiehlt ihren Getreuen, einen Scheiterhaufen zu errichten. Sie ist entschlossen, zu sterben.

Verwandlung: Terrasse am Meer mit Scheiterhaufen. Dido verwünscht Aeneas, legt seine Andenken auf den Scheiterhaufen und besteigt denselben. Prophetisch verkündet sie, daß aus ihrem Blute der Rächer (Hannibal) erstehen würde, dann durchbohrt sie ihre Brust mit dem Schwerte des Aeneas. Apotheose: Das römische Kapitol mit der Inschrift „Roma"!

---

## Der Trompeter von Säckingen.

Oper in 3 Akten von E. Kaiser. Text nach Scheffel.

Personen: Der Freiherr = Baß; Margarete, seine Tochter = Sopran; der Amtmann von Säckingen = Baß; Gertrude, dessen Haushälterin = Alt; Junker von Wildenstein = Tenor; Werner Kirchhof = Bariton; Carlo, ein italienischer Knabe = Sopran. — Ort: Säckingen und Rom. Zeit: Nach dem 30jährigen Kriege.
Olmütz 1882.

1. **Akt.** Marktplatz in Säckingen. Volksfest und Auftritt Werners als Trompeter. Er erzählt dem Amtmann die Verhandlung, daß er aus Heidelberg habe fliehen müssen wegen seiner Studentenschwärmerei für die Pfalzgräfin und Trompeter bei einem Reiterregiment geworden sei. — Der Freiherr erscheint mit seinen Angehörigen beim Fest, trifft auf Werner, der ihm gefällt, und ladet ihn zu Gaste ein.

2 **Akt** Hof im Schlosse des Freiherrn. Margarete ist vom Freiherrn zur Gattin des Junker Kuno von Wildenstein bestimmt,

welcher beim Aufstand der Bürger und Bauern (Hauenstemer Rummel) das Schloß verteidigt und gegen die Aufständischen zieht. Margarete liebt aber Werner, und der Freiherr überrascht beide bei einer Liebesszene. Zornig wird Werner fortgewiesen und als er aus der Ferne auf seiner Trompete das Abschiedslied („Behüt Dich Gott, es wär so schön gewesen") wiederholt, sinkt Margarete zusammen

3. Akt. Platz in Rom. Volkstreiben. Der Freiherr weilt mit seiner Tochter und mit seiner Haushälterin Gertrud in Rom, Margarete trifft auf Werner, der jetzt berühmter päpstlicher Kapellmeister ist und beide gestehen sich ihre unverbrüchliche Liebe. Der Papst ernennt Werner, der seinen Abschied erbeten, zum Dank für seine Dienste, zum Marquis von Bamposanto und der Freiherr gründet das Glück seines Kindes, indem er in die Verbindung des Paares willigt, nicht, wie er sagt, weil Werner jetzt dem Adel angehöre, sondern weil er deutsche Kunst zu Ehren gebracht und deutsche Treue im Herzen hege.

## Der Trompeter von Säckingen.

Oper in 3 Akten und einem Vorspiel von V. E. Neßler. Text, nach Scheffel, von R. Bunge.

Personen des Vorspiels: Werner Kirchhofer = Bariton; Konradin, Landsknecht = Baß; Haushofmeister = Bariton; der Rektor = Baß. — Ort: Schloßhof in Heidelberg. — Personen der Oper: Freiherr v. Schönau — Baß; Maria, seine Tochter = Sopran; Graf v. Wildenstein = Baß; die Gräfin, dessen geschiedene Gemahlin und Schwägerin des Freiherrn = Alt; Damian, des Grafen Sohn aus zweiter Ehe = Tenor; Werner = Bariton; Konradin = Baß. — Ort: In und bei Säckingen. Zeit: Nach dem 30jähr. Kriege. Leipzig 1884.

1. Akt. Hof des Heidelberger Schlosses. Auf der einen Seite Studenten, auf der andern Landsknechte trinkend und singend. Als der Haushofmeister der Kurfürstin Ruhe verlangt, wächst der Tumult, Werner steigt auf einen Tisch und bläst auf des Landsknechts Konradin Reitertrompete ein Liebeslied. Der von dem Haushofmeister herbeigerufene Rektor der Universität spricht über die Studenten die Relegation aus, worauf sich Werner und seine Kommilitonen kurz resolvieren und sich von Konradin als Reiter anwerben lassen, worauf sie, ein lustiges Lied singend abmarschieren.

1. Akt. Platz vor der Fridolinskirche in Säckingen. Konradin ist in den Dienst der Stadt getreten, deren Bürger heute das Fridolinsfest feiern. Werner kommt als Reiter mit der Trompete, wird von Konradin freudig begrüßt und hat gleich Gelegenheit, die in einem Boot zur Kirche fahrenden Gräfin Wildenstein und deren Nichte Maria vor den aufsässigen Bauern zu schützen

Verwandlung: Zimmer im Schlosse des Freiherrn. Derselbe sitzt allein beim Wein und verwünscht das Podagra, das

ihn plagt. Er erhält die Nachricht vom bevorstehenden Besuche seines Schwagers, des Grafen von Wildenstein und ist erfreut von dessen Vorschlag, seinen Sohn Damian mit Maria zu vermählen. Maria und die Gräfin kehren zurück und er gerät in Zorn, als er von dem Angriff der Bauern vernimmt. Da ertönt eine Trompete vor dem Schloß, der Freiher läßt Werner heraufholen, findet Gefallen an ihm und stellt ihn zur Freude Marias als Schloßtrompeter an.

**2. Akt.** Schloßgarten mit anstoßender Terrasse. Konradin kommt zu Werner. Er will vom Grafen den Maiwein verlangen, wie es alljährlich beim Maifest üblich und erfährt von Werner dessen Liebe zu Maria. Konradin entfernt schlau die argwöhnische Gräfin und so gewinnen Maria und Werner Zeit, sich in Liebe kund zu thun. Die Gräfin überrascht sie bei einer Umarmung, hält es für ihre Pflicht, ihrem Schwager davon Mitteilung zu machen und zornig erklärt dieser, daß Maria den Junker Damian heiraten würde. Graf Wildenstein kommt mit seinem Sohn an und nun folgt als Intermezzo die große Ballettszene: das Maifest. — Nachdem der Freiherr seinen Schwager willkommen geheißen, giebt er dem Trompeter den Abschied (Werners Lied mit dem Refrain: „Behüt Dich Gott, es wär' so schön gewesen"). Werner geht und noch einmal sendet er durch Wiederholung des Liedes auf der Trompete aus der Ferne seinen Abschiedsgruß an Maria, die weinend zusammenbricht.

**3. Akt.** Der Schloßhof, dessen Mauern mit Geschütz besetzt. Die Bauern sind aufständig und belagern das Schloß. Damian zeigt sich feig und unfähig die Verteidigung zu führen, die Bauern stürmen an, aber der tapfere Werner ist zurückgekehrt, stellt sich an die Spitze der Schloßbesatzung und schlägt die Bauern entscheidend zurück. Er ist verwundet und als man ihn verbindet, wird ein Zeichen an seinem Arm entdeckt, woran er als der Sohn des Grafen und der Gräfin von Wildenstein erkannt wird, der einst von Zigeunern als Kind geraubt ist. Dadurch kommt eine Versöhnung des Grafen mit seiner geschiedenen Gattin zustande und Werner darf Maria als seine Braut in die Arme schließen. (Dieser Schluß ist vom Librettisten frei erfunden, da im Scheffelschen Gedicht das Ende sich so gestaltet, wie es E. Kaiser in seiner gleichnamigen Oper [s. d.] bearbeitet.)

# Der Troubadour.

Oper in 4 Akten von Verdi Text von Cammerano, deutsch von H Proch.

Personen: Graf von Luna = Bariton; Gräfin Leonore = Sopran; Azucena, eine Zigeunerin = Alt; Manrico = Tenor; Fernando, Lunas Vasall = Baß; Inez, Leonorens Vertraute = Sopran; Ruiz, ein Freund Manricos = Tenor; ein alter Zigeuner = Baß; ein Bote = Tenor. — Ort: Biscaja und Arragonien. Zeit: 15. Jahrhundert.
Rom 1853.

**1. Akt.** Wachtzimmer im Schlosse Lunas. Fernando fordert die Diener und Krieger auf, während der Graf schlummerlos vor den Fenstern der geliebten Leonore umherirrt. Eifersucht wühle in Lunas Herzen gegen den bevorzugten Nebenbuhler, den Troubadour Manrico. Um den Schlummer zu bannen, erzählt Ferrando die Vorgeschichte des Grafen („Glücklich lebte einst ein Vater von zwei Söhnen"). Eine Zigeunerin, furchtbar zu schauen, hat einst den Bruder des Grafen als Kind verhext und ist dafür lebend verbrannt worden. Sterbend hätte sie ihrer Tochter die Rache übergeben, welche diese auch ausgeführt, da man eines Tages das verhexte Kind verbrannt aufgefunden. Dennoch glaubte der Vater nicht an den Tod seines Sohnes und forderte den jetzigen Grafen Luna noch im Sterben auf, die Spur der Zigeuner stets zu verfolgen.

Verwandlung: Garten beim Palast der Fürstin. Leonore erzählt ihrer Vertrauten Inez, wie ihre Liebe zu Manrico entstanden („Es glänzte schon das Sternenheer"). Als beide abgegangen, naht Graf Luna und hört mit Beben die Stimme seines Nebenbuhlers (Manrio, hinter der Szene: „Einsam steh' ich und verlassen"). Leonore eilt herbei und hält in der Dunkelheit den Grafen für den Geliebten, als Manrio selbst in den Garten tritt. Wütend muß Luna sehen, wie Leonore in den Armen des Troubadours liegt. Er erkennt in diesem seinen Feind Manrico, der zum Tode verurteilt ist und will ihn zwingen, ihm zu folgen. Als Beide die Schwerter ziehen, wirft sich Leonore dazwischen.

**2. Akt.** Zigeunerlager. Manrico am Lager seiner Mutter Azucena (Chor: „Seht, wie die Wolken am Himmel ziehen"). Azucena ist die Tochter jener vom alten Grafen Luna einst verbrannten Zigeunerin. Jetzt selbst alt geworden, wird sie doch nur von dem Gedanken an Rache beherrscht (Arie: „Lodernde Flammen schlagen zum Himmel auf"). Die Zigeuner ziehen weiter. Azucena bleibt mit Manrico allein und sie erklärt ihm auf sein Verlangen die traurige Kunde, wie sie statt des Grafen Kind ihr eigenes den Flammen übergeben. Da es ihr einziges Kind war, so erkennt Manrico, daß er nicht der rechte Sohn

Azucenas sei, die er aber dennoch wie eine Mutter lieben muß, da sie sich liebend und treu als solche bewährt, erst vor kurzem, wo er im Kampf mit Luna fast tödlich verwundet von ihr gepflegt und geheilt wurde. — Als ein Bote die Nachricht bringt, daß Leonore, die ihn tot geglaubt, noch heute den Schleier nehmen will, läßt Manrico sich von Azucena nicht halten und stürzt fort.

Verwandlung: Halle vor einem Kloster. Luna lauert mit seinen Leuten um Leonore zu entführen (Arie: „Ihres Auges himmlich Strahlen"). Als er indessen die mit den Nonnen auftretende Leonore ergreifen will, eilt Manrico mit seinen Freunden herbei und vereitelt den Plan Lunas, der in Schrecken und Wut das Liebespaar verflucht.

3. Akt. Lunas Heerlager (Chor: „In dem bunten Kampfgewühle"). Ballett. Fernando bringt die gefangene Azucena und erkennt in dieser die Zigeunerin, die einst Lunas Bruder verbrannt. Nun wird sie selbst zum Feuertod verurteilt.

Verwandlung: Zimmer in dem von Manrico besetzten Schloß Castellor. Leonore und Manrico leben ihrer Liebe (Manricos Arie: „Für Dich, o Teure, geb ich willig mein Leben"). Da bringt Ruiz die Kunde, daß Azucena, mit Ketten schwer beladen, zum Holzstoß geführt werden solle. Manrico fliegt ihr zu Hilfe (Stretta: „Lodern zum Himmel seh' ich die Flammen").

4. Akt. Platz vor dem Kerkerturm. Leonore will versuchen, den von Luna gefangenen Manrico zu retten (Miserere der Gefangenen und Arie Manricos im Turm: „Schon naht die Todesstunde"). Leonore fleht Luna um Erbarmen an, und da dieser nicht einwilligt bietet sie sich selbst dem Grafen als Preis für die Rettung Manricos. Als Luna jetzt seine Zustimmung giebt, schwört sie, die Seine zu werden, fest entschlossen sich vor der Hochzeit zu vergiften.

Verwandlung: Kerker. Manrico und Azucena. Die Zigeunerin spricht verwirrt nur von den Flammen und Manrico sucht sie zu beruhigen (Duett: „In unsre Heimat kehren wir wieder"). Die Zigeunerin entschlummert; Leonore kommt zu Manrico und verkündet ihm Rettung. Da sie aber nicht mit ihm gehen kann, so will er bleiben, da er ohne die Geliebte das Leben verachtet. Er glaubt sich von Leonore verraten, bis er hört, daß sie, um treu zu bleiben, Gift genommen. Der Graf tritt herein, sieht, daß er betrogen ist und läßt Manrico zum Tode führen. Da richtet sich Azucena auf und als Luna ihr durch ein Fenster den sterbenden Manrico zeigt, ruft sie ihm triumphierend zu: „Es war Dein Bruder — Du bist nun gerächt, Mutter!"

# Undine.

Zauberoper in 4 Akten von A. Lortzing. Text, nach Fouqués Erzählung, vom Komponisten.

Personen: Bertalda, Herzog Heinrichs Tochter = Sopran; Hugo v. Ringstetten = Tenor; Kühleborn, ein mächtiger Wasserfürst = Bariton; Tobias, ein alter Fischer = Baß; Marthe, sein Weib = Alt; Undine, ihre Pflegetochter = Sopran; Pater Heilmann = Baß; Veit, Hugos Knappe = Tenor; Hans, Kellermeister = Baß. — Ort: Fischerdorf, Reichsstadt, Burg Ringstetten.

Hamburg 1845.

**1. Akt.** Fischerhütte. Bertalda ist die vermeintliche Tochter des Herzogs Heinrich und hat den ihr huldigenden Ritter Hugo von Ringstetten auf Abenteuer nach dem Zauberwalde geschickt. In einem Fischerdorf lernt Hugo Undine, die Pflegetochter des Fischers Tobias, kennen und lieben und vermählt sich mit ihr (Chor und Quintett; Undine, Tobias, Pater Heilmann, Hugo und Marthe: „Welche Freude, welche Wonne". Romanze Hugos: „Ich ritt zum großen Waffenspiele". Chor und Duett: Kühleborn, Veit: „Uns beiden ist die Hauptstadt wohl bekannt". Szene, Chor und Lied Veits: „Viel schöne Gaben väterlich" mit dem Refrain: „Was mag das für ein Ding wohl sein? — — Es ist der Wein!" Finale, in welchem Kühleborn als Pater Heilmann komme, doch von Undine, die ihn erkennt, zurückgewiesen wird. Undine ist nämlich ein Kind der Wellen und Tochter Kühleborns Dieser, ein mächtiger Wasserfürst, hat die, wie alle Wassergeister seelenlose Undine zu Tobias und Marthe gebracht, während er das Fischerkind Bertalda durch den Herzog finden ließ, der es als seine Tochter auferzog. Dieses Spiel treibt Kühleborn, um zu erfahren, wieviel die mit einer Seele begabten Menschen besser sind, als die seelenlosen Wassergeister.

**2. Akt.** Gartenhalle mit Blumenbassin. Hugo zieht mit Undine zum Herzogshof und die eifersüchtige Bertalda will nun die Gemahlin des Königs von Neapel werden. Als man aber das Kästchen bringt, das Herzog Heinrich einst mit ihr gefunden und welches sie vor ihrer Vermählung öffnen soll, erfährt man, daß sie ein Findelkind ist. Kühleborn weilt unter der Gestalt des Gesandten vom Neapel am Hofe, hat die Fischer eingeführt und bezeichnet diese als Eltern Bertaldas. Bertalda weist die Fischer von sich und man dringt auf Kühleborn ein, der sich nun als mächtiger Wasserfürst enthüllt (Duett: Hans und Veit: „Was seh' ich, seid Ihr glücklich wieder da?" Recitativ und Arie Undines: „So wisse, daß in allen Elementen es Wesen giebt, die aussehn fast wie Ihr". (Einlage Kühleborns komponiert von Gumbert: „Neapels Abgesandter naht sich dieser Stadt".) Recitativ und Quartett: Hugo, Undine, Bertalda, Kühleborn: „Was ergreift mit bangem Schrecken". Ballett. Szene und Romanze

Kühleborns: „Es wohnt am Seegestade". Finale: „Ha, Verwegener, Du kannst wagen").

3. Akt. See und Burg Ringstetten. Bertalda hat den Hof verlassen müssen, wurde von Undine aufgenommen und weiß nun Hugo an sich zu fesseln. Dieser hat von seiner Gemahlin erfahren, woher sie stammt, verstößt sie jetzt und feiert seine Vermählung mit Bertalda. Trauernd kehrt Undine zu den Wassergeistern zurück (Chor: „Auf Ihr Zecher" und Lied Veits: „Vater, Mutter, Schwestern, Brüder hab' ich auf der Welt nicht mehr". Finale: Hugo und Bertalda: „Ich lasse Dich nicht", dazu Undine: „Was seh' ich". Die verstoßene Undine bleibt allein, da steigen aus dem See die Wassergeister auf und Kühleborn tritt zu ihr: „Nun ist's vollbracht, Du kehrst zur Heimat wieder". Während in der Burg die Kerzen angezündet werden, versinkt Undine in den Wellen des Sees).

4. Akt. Burghof. Veit und Hans heben den Stein vom Brunnen, den Hugo darauf legen ließ, damit Undine nicht emporsteigen könne. Undine erscheint. (Liedduett zwischen Hans und Veit: „Ich war in meinen jungen Jahren", mit dem Refrain: „Im Wein ist Wahrheit nur allein").

Verwandlung: Prunksaal in der Burg. Hochzeitsfest. Als Undine in den Saal tritt, reißt sich Hugo los, seine unterdrückte Liebe lodert empor und er stürzt Undinen zu Füßen. Wasserfluten strömen mächtig herein und aus den Wogen erhebt sich der Palast des Wasserfürsten. Versöhnt heißt Kühleborn Hugo willkommen, der nun hier mit Undinen vereint bleiben soll. (Finale: Hugo, Bertalda und Chor: „Füllt die Pokale". Als man sich zum Tanz stellt, schlägt es zwölf, die Lichter verlöschen und im bläulichen Lichtschein steht Undine vor Hugo; er eilt in ihre Arme, um zu sterben, die Wellen des Sees dringen herein, der Chor entflieht, Kühleborn erscheint: „Du frevelte st an dieser reinen Unschuld". Dann zieht er den Schluß seiner Probe: „Vernehmt's, Ihr Seelenvollen, die Ihr unser spottet — So rächen sich die Seelenlosen").

## Der Vampyr.

Romantische Oper in 4 Akten von H. Marschner. Text von Wohlbrück.

Personen: Sir Humphry = Baß; Malvina, seine Tochter = Sopran; Edgar Aubry, ein Verwandter = Tenor; Lord Ruthwen = Bariton; Sir Berkley = Baß; Jamthe, seine Tochter = Sopran; George Dibdin, in Humphrys Diensten = Tenor; John Perth, Verwalter bei dem Earl v. Marsden; Emmi, seine Tochter = Sopran; Gadshill, Blunt, Scrop u. Green, Landleute = kleine Gesangspartien; Suse, Blunts Frau — Alt. — Ort: Schottland.

Leipzig 1828. Die Oper hat 4 Szenen, wird auch in 2 Akten gegeben, dann ist der 2. und 4. Akt als Verwandlung zu verstehen.

1. Akt. Fels und Höhle. Lord Ruthwen ist den Geistern verfallen und wird hereingeführt. Er begehrt Frist, welche ihm

auf 3 Jahre bewilligt wird, wenn er für jedes Jahr eine zarte und reine Braut zum Opfer bringt. Ruthwen schwört und entfernt die Geister, da sich das erste Opfer naht (Recitativ und Arie Ruthwens: „Ha! welche Lust! aus schönen Augen". Er ist ein Vampyr, der sich von dem Herzblut seiner Opfer nährt. Janthe kommt (Liebesduett: „Teurer Eltern einzige Freude"). Ruthwen schleppt sie in die Höhle, wo sie Berkley und seine Leute tot finden, mit den Zähnespuren eines Vampyrs. Wütend durchbohrt Berkley den Lord Ruthwen, der sterben müßte, wenn nicht Aubry ihn zur Anhöhe brächte, wo der Vampyr in den Mondesstrahlen Genesung findet. Aubry muß einen schrecklichen Eid leisten, nichts zu verraten.

**2. Akt** (eventuell Verwandlung). Saal in Sir Humphrys Schloß. (Arie Malvinas, die den geliebten Aubry erwartet: „Heiter lacht die goldne Frühlingsmorgensonne".) Aubry kommt (Duett: „Du bist's, es ist kein Traum"). Sir Humphry, der dazu tritt, hat aber den Earl von Marsden zu Malvinas Gemahl bestimmt (Terzett: „Wie, mein Vater! — Weh! verloren!") Als der Earl kommt, erkennt Aubry zu seinem Entsetzen in diesem den Vampyr, doch verhindert ihn sein Eid, denselben zu entlarven.

**3. Akt.** Ein Platz, Trinker und Tanzende (Chor: „Munter, edle Zecher, munter" und „Hört Ihr die Geige"). Des Verwalters Tochter Emmi soll mit Georg Dibdin Hochzeit machen, da aber der Bräutigam auf sich warten läßt, vertreibt Emmi den Gästen die Zeit (Arie: „Dort an jenem Felsenherz" und Ballade vom Vampyr: „Sieh, Mutter, dort den bleichen Mann"). Ruthwen tritt zu Emmi und sucht sie zu erobern. Georg erscheint und lauscht (Terzett: „Ihr wollt mich nur beschämen"). Aubry sucht unruhig Ruthwen auf, um diesem zu erklären, daß er, um Malvina zu retten, das Vampyrdasein verraten wolle, doch entsetzt hört er, daß er dann selbst ein Vampyr werden würde, dessen Wesen ihm der Lord furchtbar schildert (Arie Aubrys: „Ha! wie das grausenvolle Bild"). Ruthwen gelingt es, Emmi zu bethören (Duett: „Leise dort zur fernen Laube"), und sie folgt ihm. Vergnügt kommen die Landleute zusammen (Quartett: „Im Herbst, da muß man trinken"), wozu sich auch die zungenfertige Suse einfindet (Quintett: ‚Endlich, Alter, find' ich Dich"), doch wird die Fröhlichkeit unterbrochen, da man Emmi tot auffindet.

**4. Akt** (eventuell Verwandlung). Saal bei Sir Humphry. Die Hochzeit mit Ruthwen soll gefeiert werden. Aubry verzweifelt und will zum Grausen Ruthwens die Feier verhindern, als auch Malvina ihre Weigerung, dem Lord zum Altar zu folgen, ausspricht. Humphry droht mit seinem Fluch und Malvina will schon nachgeben, da ruft Aubry auf Ruthwen deutend: „Dies Scheusal hier ist — ein Vampyr". In diesem Augenblick wird

Ruthwen von einem Blitzschlag getötet. Humphry ist erschüttert und legt die Hände Aubrys und Malvinas zusammen.

## Der Vasall von Szigeth.

Oper in 3 Akten von A. Smareglia. Text, aus dem Italienischen des Jelica und Pozza, von M. Kalbeck.

Personen: Andor und Milos, Söhne des ehemaligen Besitzers von Szigeth = Tenor u. Bariton; Naja = Sopran; Rolf, früher Vasall von Szigeth = Baß; Konrad, Schloßvogt = Baß; eine Aebtissin = Alt. — Ort: Ungarn. Zeit 1900

Wien 1889.

**1. Akt.** Klosterkirche. Milos stört die Trauung seines Bruders Andor mit Naja und die letztere sinkt zusammen, für tot geltend.

Verwandlung: Wald. Der ehemalige Besitzer von Szigeth hat einst Rolfs Weib verführt und Rolf hat dem Hause Verderben geschworen. Er gab dem Milos einen Zaubertrank, der diesem das Herz Najas gewinnt und triumphiert, da er weiß, daß das Erwachen aus dem Zauber schrecklich sein wird.

**2. Akt.** Im Thal. Volksfest. Rolf macht sich jetzt an Andor, der die Herrschaft an Milos abgetreten, zeigt ihm Naja als das Eigentum des Bruders und Naja teilt ihm das Vorgefallene mit. Milos erklärt Naja für eine Hexe und auf Rolfs Rat verleugnet Andor die Geliebte, um sie desto sicherer retten zu können.

**3. Akt.** Zimmer im Schloß. Nacht. Rolf reicht Naja einen Todestrank und als Andor kommt, sie zu befreien, stirbt sie in seinen Armen. Wütend fällt Andor den eintretenden Milos an und tötet ihn. Mit teuflischem Triumph gesteht jetzt Rolf, daß er dies Ende herbeigeführt.

## Die verkaufte Braut.

Komische Oper in 3 Akten von F. Smetana. Der czechische Text von Sabina, deutsch von M. Kalbeck.

Personen: Kruschina, Bauer = Bariton; Kathinka, seine Frau = Sopran; Maria, deren Tochter = Sopran; Micha, Grundbesitzer = Baß; Agnes, seine Frau = Mezzosopran; Wenzel, deren Sohn = Tenor. Hans, Michas Sohn aus erster Ehe = Tenor; Kezal, Heiratsvermittler = Baß; Springer, Direktor einer Künstlertruppe = Tenor; Esmeralda, Tänzerin = Sopran; Muff, Komödiant = Tenor. — Ort: Ein großes Dorf in Böhmen. Zeit: Gegenwart.

Prag 1866.

**1. Akt.** Dorfplatz mit Wirtshaus. Man feiert das Kirchweihfest. Maria liebt Hans, soll aber einen anderen heiraten, den Kezal ihrem Vater empfiehlt. Es ist Wenzel, Michas Sohn. Die Mutter steht zwar auf Marias Seite, doch Kruschina folgt dem Heiratsvermittler, um Micha im Wirtshaus aufzusuchen.

**2. Akt.** Wirtsstube. Tanz. Der stotternde Wenzel kommt und trifft auf die, ihm nicht bekannte Maria, die ihn vor seiner Braut warnt. Schelmisch thut sie mit ihm schön und bringt ihn soweit, daß er schwört, sich Maria nicht zu nahen. Hans empfängt von Kezal 300 Gulden, damit er von Maria lasse, hat aber das Geld nur unter der Bedingung genommen, daß Maria Michas Sohn heirate. Kezal ruft Kruschina und die Bauern, in deren Gegenwart Hans schriftlich giebt, daß er seine Braut verkauft habe.

**3. Akt.** Dorfplatz wie zu Anfang. Szene der Komödianten, wobei Wenzel von Esmeralda ganz hingerissen wird. Der Theaterdirektor benutzt das, um den jungen Bauern zu gewinnen, für einen betrunkenen Darsteller den Bären in einer Komödie zu spielen. Als er in einer drolligen Tanzübung von seinen Eltern gefunden wird, spricht er seine Weigerung aus, Maria zu heiraten und läuft fort. Maria tritt weinend mit ihren Eltern auf, da sie von dem Vertrag gehört und ist nun bereit, Wenzel zu nehmen. — Jetzt wird aber Hans von Micha als sein älterer Sohn erkannt und Hans, der von dieser Verwandtschaft gewußt, hat mit dem Vertrag nur ein lustiges Spiel getrieben, da er ja selbst Michas Sohn ist, der Maria heiraten soll, Wenzel, der als Bär erscheint, muß zurücktreten und Hans und Maria werden mit Zustimmung beider Eltern ein Paar.

## Die Vestalin.

Oper in 3 Akten von Spontini. Text, nach dem Französischen des Jouy, metrisch bearbeitet von J. R. Seyfried

Personen: Licinius, römischer Feldherr = Tenor; Cinna, Kriegstribun = Bariton; der Pontifex Maximus, Vorsteher der heiligen Jungfrauen = Baß; erste Priesterin der Vesta = Mezzosopran; Julia, eine junge Vestalin = Sopran; der Ober-Haruspex. — Ort: Rom.
Paris 1807.

Licinius liebt Julia und hofft sie zu gewinnen, da er als triumphierender Feldherr nach langer Abwesenheit zurückkehrt. Er findet aber die Geliebte als Vestalin vor, da Julia ihrem sterbenden Vater gelobt hat, sich der Göttin Vesta, deren Priesterinnen Jungfrauen bleiben müssen, zu weihen. — Licinius schleicht sich zu ihr in den Tempel, wo Julia die heilige Flamme hütet, die sie aber im Liebesgeflüster verlöschen läßt. Umsonst fleht Licinius den Oberpriester um Gnade, Julia trifft die schreckliche Strafe, lebendig eingemauert zu werden. Licinius will nun die Geliebte mit Gewalt befreien. Da geschieht ein Wunder — als das Gericht an Julia vollzogen werden soll, bricht ein Gewitter aus und der Blitz entzündet die heilige Flamme wieder. — Die Göttin scheint versöhnt, Julia darf ihren Dienst verlassen und die Gattin des Licinius werden.

## Violetta.

(Siehe: La Traviata.)

---

## Der Waffenschmied.

Komische Oper in 3 Akten von Lortzing. Text vom Komponisten.

Personen: Hans Stadinger, Waffenschmied und Thierarzt = Baß; Marie, seine Tochter = Sopran; Graf von Liebenau = Bariton; Georg, sein Knappe = Tenor; Adelhof, Ritter aus Schwaben = Baß; Irmentraut, Mariens Erzieherin = Alt; Brenner, Gastwirt = Tenor. — Ort: Worms Zeit: 16. Jahrhundert.
Leipzig 1846.

Der Ritter Liebenau liebt Marie, die Tochter des Waffenschmieds Stadinger und da er des Vaters Abneigung kennt, kommt er als einfacher Geselle mit seinem Knappen Georg, gewinnt als solcher auch Mariens Liebe und erhält Gewißheit ihrer Zuneigung, als er nächtlicherweise auch als Ritter um sie wirbt. Stadinger aber hat Gefallen an Georg gefunden und will denselben mit Gewalt zu seinem Schwiegersohn haben. Liebenau sucht sich nun bei dem Alten beliebt zu machen, indem er durch seine Leute Marie entführen läßt, um sie dann als Geselle Konrad zu befreien, aber als auch das nicht anschlägt, zieht er mit Heeresmacht gegen Worms, so daß der Magistrat selbst in Stadinger dringt, dem Ritter seine Tochter zu geben, was nun geschieht und wobei das Versteckspiel Liebenaus enthüllt wird, da er und Konrad ja ein und dieselbe Person ist. Eine ergötzliche Figur ist der schwäbische Ritter Adelhof, der immer in kritischen Momenten hereinschneit, um den Grafen Liebenau zu suchen und durch allerlei drollige Mittel verhindert wird, das Spiel vor der Zeit zu enthüllen. Eine andere komische Figur ist die alte Jungfer Irmentraut, die mit ihrer Liebe bei den Männern kein Glück hat. Brenner spielt nur eine untergeordnete Rolle.

1. Akt. Werkstatt bei Stadinger. Chor der Gesellen worunter Liebenau und Georg: „Sprühe Flamme, glühe Eisen!“. Georg bringt dem Grafen die Nachricht, daß seine bestimmte Braut, das Fräulein von Katzenstein, angekommen sei. Liebenau liebt Marie und will von der andern nichts wissen. Auftrittsarie Stadingers: „Bringt eilig Hut und Mantel mir“. Er giebt den Gesellen den Auftrag, die Nachbarn und Freunde zum morgigen Meisterjubiläum einzuladen. — Georgs Arie: „Man wird ja einmal nur geboren“ mit dem Refrain: „Man lebt nur einmal in der Welt“. Arie Irmentrauts, die auf alle Männer zürnt, weil keiner mehr anbeißen will: „Welt, Du kannst mir nicht gefallen.“ — Als alle zu Bett sind, kommt Konrad in seiner wahren Gestalt, um Marie zu werben. Finale: Graf, Marie, Irmentraut: „Bei nächt'gem Dunkel schleich' ich herein“; der

Graf versichert: „Gern geb' ich Glanz und Reichtum hin für Dich und Deine Liebe", doch ehe er zum Ziele kommt, erscheint Stadinger, der von dem Grafen Kundschaft hat, aber beim Durchsuchen des Hauses nichts findet, da Liebenau in sein Zimmer eilt und sich in Konrad verwandelt. Marie bleibt allein zurück und giebt ihrer Liebe zu Konrad Ausdruck (Arie: „Er ist so gut, so brav, so bieder").

**2. Akt.** Zimmer bei Stadinger. Liebenau spielt als Konrad den Eifersüchtigen auf den Grafen (Duett mit Marie: „Ihr wißt, daß er Euch liebt") läßt sich aber gern von Marie versöhnen, die nun ihm die eigenen Worte wiederholt: „Gern gäb' ich Glanz und Reichtum hin". Jetzt kommt Adelhof, der von Fräulein von Katzenstein gesendet ist, den Grafen hier zu suchen (Sextett: Marie, Adelhof, Stadinger, Graf, Georg, Irmentraut: „Der Mann scheint nicht bei Sinnen") Adelhof wird glücklich entfernt, nun nimmt sich aber Stadinger den Georg vor und will ihn zu seinem Schwiegersohn machen (Duett: „Du bist ein arbeitsamer Mensch"), Georg macht aber Ausflüchte. (Hier folgt auch mitunter eine Einlage des noch einmal zurückkehrenden Adelhof: „Ich will den Leuten zeigen, was Klugheit alles kann").

Verwandlung: Das Jubiläumsfest Stadingers in dessen Weinberg. (Chor: „Wie herrlich ist's im Grünen" und Lied Georgs: „War einst ein junger Springinsfeld", mit dem Chorrefrain: „Das kommt davon, wenn man auf Reisen geht"). Jetzt setzt der Graf seine Entführungsgeschichte ins Werk und rettet als Konrad seine Marie. Stadinger in furchtbarem Zorn gegen den Ritter, will Marie ins Kloster stecken (Schlußensemble: „Zornesglut färbt seine Wangen").

**3. Akt.** Stadingers Zimmer (Mariens Arie: „Wir armen, armen Mädchen sind gar so übel dran") Stadinger kommt mit seinen Leuten und verlangt Auskunft über die Entführungsgeschichte, wird aber nicht klug und noch mehr verwirrt, als wieder Adelhof erscheint (Ensemble: „Gut, daß ich Euch noch treffe"). Da er nichts erreicht hat, greift Liebenau zum letzten Mittel und geht, um seine Leute gegen die Stadt zu führen, zum Gaudium Georgs, der sich auf den Schlußeffekt freut. Stadinger bleibt allein und gedenkt seiner Jugendzeit (Lied: „Auch ich war ein Jüngling mit lockigem Haar").

Verwandlung: Platz in Worms. Liebenau zieht ein und führt Maria als seine Braut. Erkennungsszene und Schlußgesang: „Gern gäb' ich Glanz und Reichtum hin."

## Das Waldmädchen.

(Siehe Silvana)

## Die Walküre.

(Siehe: Der Ring des Nibelungen.)

## Der Wasserträger.

Oper in 3 Akten von Cherubin. Text von J. N. Bouilly.

Personen: Graf Armand, Präsident des Parlaments = Tenor; Konstanze, seine Gemahlin = Sopran; Micheli, Savoyard, Wasserträger = Baß; Daniel, dessen Vater = Baß; Anton, sein Enkel = Tenor: Marzelline, dessen Schwester = Sopran; Semos, ein reicher Pächter; Angelina, seine Tochter; ein Hauptmann italienischer Truppen; ein Leutnant = Tenor: ein Sergeant; ein Korporal; ein Mädchen = Sopran. — Ort: In und bei Paris. Zeit: 17. Jahrhundert.
Paris 1800.

Der textliche Stoff dieser Oper beruht auf der wahren Begebenheit, daß ein Savoyard den von Mazarin verfolgten Präsidenten Armand in einer Wassertonne glücklich aus Paris herausbrachte und ihm dadurch das Leben rettete.

**1. Akt.** Die Wohnung des Wasserträgers Micheli. Anton erzählt den Freunden, wie er einst von einem Unbekannten vom Tode vor Frost und Hunger bewahrt sei („Ein armer kleiner Savoyard"). — Micheli hat erfahren, daß Mazarin seinen Wohlthäter, den Grafen Armand und dessen Gattin Konstanze, verfolgt und wünscht sie zu retten (Arie: „Himmel! laß meinen Plan mir glücken"). Als er die Beiden glücklich in seine Wohnung gebracht (Terzett: Armand, Konstanze, Micheli: „Komm hier an meine Brust" und Duett: Konstanze, Armand: „Zu trennen mich von dem Gemahl") erkennt Anton in Armand seinen einstigen Lebensretter (Finale: „O Gott, wen erblick' ich hier?"). Micheli dringt jetzt darauf, daß der Graf mit seiner Gemahlin fort aus Paris und in Sicherheit gebracht werde. Er nimmt einen Paß, der auf seine Tochter Marzelline ausgestellt ist und damit soll Anton die Gräfin durch das Thor bringen.

**2. Akt** Thor und Wachtstube. Die Wache hält Konstanze und Anton an (Terzett: Konstanze, Anton, Leutnant: „O, mein Bruder, kannst Du zugeben"). Die Gräfin spielt so natürlich die Schwester, daß man sie auf Grund ihres Scheines passieren läßt, während Anton zurückbleiben muß. Nun kommt Micheli mit einem großen Wasserfaß. Er verrät den Soldaten scheinbar die Spur des Grafen, um dieselben, die nach dem von Mazarin auf Armands Kopf ausgesetzten Preis lüstern sind, zu entfernen (Finale: „Marsch! fort! laßt uns nicht mehr weilen"). Während nun die Wache sich zur Verfolgung fertig macht, öffnet Micheli vorsichtig das Faß, Graf Armand kommt heraus und entwischt durch das Thor.

**3. Akt.** Platz in einem Dorfe bei Paris. Anton wird vergebens von den Bauern zur Hochzeit mit Angelina erwartet. Statt seiner kommen Soldaten, welche den Grafen bis hierher verfolgt haben. Als Bäuerin gekleidet naht die Gräfin, um ihrem versteckten Gatten Nahrung zu bringen (Arie: „Könnt ich in den Tod nur gehen"). Als die Soldaten die Gräfin bedrängen, stürzt der Graf zu ihrer Rettung hervor und Konstanzen entschlüpft sein Name. Wie er aber verhaftet werden soll, eilt der wackere Micheli herbei und bringt die Begnadigung vom König (Schlußgesang Michelis: „Ja, Freunde, laßt uns lustig sein").

## Der Widerspenstigen Zähmung.

Komische Oper in 4 Akten von H. Goetz. Text, nach Shakespeare, von J. V. Widmann.

**Personen:** Baptista, ein reicher Edelmann in Padua = Baß; Katharina und Bianka, seine Töchter = Sopran; Hortensio u. Lucentio, Biankas Freier = Bariton u. Tenor; Petruchio, ein Edelman aus Verona = Bariton. — Ort: Padua und Verona.

Mannheim 1874.

**1. Akt.** Straße in Padua mit dem Hause Baptistas. Katharina, die Tochter des Edelmanns Baptista, ist wegen ihres zänkischen, widerspänstigen Wesens bekannt. Eben giebt sie wieder einen Beweis davon, da sie die Diener so behandelt, daß diese aus dem Hause flüchten, auf die Straße stürzen, wo sie ein Ständchen unterbrechen („Klinget, liebe Töne"), welches Lucentio der von ihm geliebten Bianka bringt. Nachdem Baptista die Ruhe wieder hergestellt, setzt Lucentio seine Huldigung fort und der geckenhafte, schon ältliche Hortensio kommt ebenfalls, um Bianka ein Ständchen zu bringen. Als die beiden Bewerber aneinander geraten, werden sie von Baptista getrennt, der überhaupt erklärt, an eine Vermählung Biankas sei nicht zu denken, ehe Katharina einen Mann gefunden. Trotzdem beschließen die Nebenbuhler, unter Verkleidungen in das Haus zu gelangen, um sich Biankas Liebe zu versichern. Wie sie sich zu den Vorbereitungen entfernen wollen, stoßen sie auf Petruchio, der aus Verona kommt, erzählen ihm von Katharina und derem Wesen, was Petruchio so interessiert, daß er beschließt, es mit der Widerspenstigen aufzunehmen und sie zum Weibe zu begehren, da sie für ihn wie geschaffen sei.

**2. Akt.** Zimmer in Baptistas Haus. Petruchio wird von Baptista eingeführt und ist gleich Zeuge von Katharinas Zank- und Streitsucht, da sie mit dem Mädchen schimpft, die Schwester verspottet und dem alten Hortensio, der sich ihr als Musiklehrer nahen will, die Laute auf dem Kopf entzwei schlägt. Aber selbst des Vaters Warnungen verfangen nicht, Petruchio ist hartköpfig und bleibt dabei, Katharina zu heiraten. Zwar wird er von ihr

auf die bedenklichste Weise empfangen, mit Spott und Hohn überschüttet, da er aber Katharinen die äußerste Ruhe entgegengesetzt, alle Widerreden als Zustimmungen auffaßt, ihre Bissigkeit für entzückende Liebenswürdigkeit erklärt, so wird sie nur um so mehr gegen ihn aufgebracht, kann sich aber doch nicht verhehlen, daß er ihr imponiert. Zwar ist sie weit davon entfernt, ihr Jawort zu geben, aber trotzdem teilt Petruchio dem Vater, sowie Hortensio und Lucentio, welch letzterer sich als Sprachlehrer eingeschlichen, mit, daß Katharina vollständig mit ihm einig sei und daß die Hochzeit gefeiert werden könne.

**3. Akt.** Saal in Baptistas Haus. Die vorbereitete Hochzeitsfeier muß unterbrochen werden, da der Bräutigam nicht erscheint. Die Zwischenzeit benützen Lucentio und Hortensio, um ihr Glück bei Bianka zu versuchen. Der Alte muß weichen, denn Bianka ergiebt sich dem Lucentio, der eine Uebersetzungsstunde benützt, um die Worte aus dem Vergil als Liebeserklärung zu verwenden. Nunmehr trifft Petruchio ein. Seine ordinäre Kleidung erregt Anstoß, doch macht er sich nichts daraus, sondern drängt zur Feier. Gleich nach der Trauung bricht er zur Abreise auf und bleibt fest, auch als Katharina erst bittet, dann trotzig befiehlt. Da sie nicht gutwillig folgen will, führt er sie gezwungen fort.

**4. Akt.** Zimmer bei Petruchio. Petruchio kommt mit der halb verhungerten Katharina an, läßt ihr zwar ein gutes Essen vorsetzen, aber ehe sie davon genießen kann, wirft er es unter dem Vorwand, es sei schlecht, hinaus. Nun beginnt die Umwandlung in Katharinas Charakter, der Trotz wird zur Demut, der Widerspruch zur Liebe. Nach einer Zwischenszene mit dem Schneider, dessen Kleider Katharina gefallen, der aber von Petruchio auch hinausgeworfen wird, erklärt sie sich ganz nach seinem Willen und gesteht ihm ihre Liebe. Jetzt kann Petruchio freudig den nahenden Gästen entgegentreten und Baptista, Hortensio, sowie die vereinten Lucentio und Bianka finden in Katharina, zu ihrem großen Erstaunen, das sanfteste, hingebendste Weib, welches sogar der Schwester Ratschläge zur Sanftmut erteilen kann.

---

## Wilhelm Tell.

(Siehe: Tell)

---

# Die weiße Dame.

Komische Oper in 3 Akten von Boieldieu. Text von Scribe

Personen: Gaveston, Schloßverwalter des ehemaligen Grafen v. Avenell = Baß; Anna, sein Mündel = Sopran; Georg, ein junger englischer Offizier = Tenor; Dickson, Pächter = Tenor; Jenny, seine Frau = Sopran; Margarete, Haushälterin in dem Schlosse Avenell = Alt; Mac Irto, Friedensrichter = Baß. — Ort: Schottland. Zeit: 1759.

Paris 1825.

Der junge Offizier George Brown kommt just recht, um dem wackeren Pächter Dickson aus der Verlegenheit zu helfen, da diesem der Pate für sein Rind ausgeblieben ist. Dickson ist sehr ängstlicher Natur; er hat einst von der gespenstischen weißen Frau eine Unterstützung in Geldnöten erhalten und dafür seine Dienste versprochen. Auf geheimnisvolle Weise erhällt er jetzt einen Brief, der ihn zum Abend in das Schloß bestellt. Als George seines Wirtes Furcht sieht, erklärt er sich bereit, an dessen Stelle hinzugehen. Trotz des mißtrauischen Wesens des Verwalters Gaveston läßt ihn die alte Margarete in das Schloß und er erhält ein Zimmer angewiesen. Furchtlos, fast lächelnd beschwört er die weiße Dame. Es kommt in der That eine weißgekleidete Frau, die ihn in der Dunkelheit mit Dickson anredet, den sie bereden will, bei der morgigen Versteigerung des Schlosses das höchste Gebot zu thun, damit es nicht in die Hände Gavestons, der danach lüstern ist, gerate, sondern dem verschollenen Erbe des Grafen von Avenell für eine etwaige Rückkehr erhalten bleibe. Die Gestalt ist niemand anders als Anna, Gavestons Mündel, die den verborgenen Schatz des eigentlichen Schloßherrn bewahrt. Sie ist erst erschreckt, als sie statt des Pächters einen Fremden im Schlosse weiß, erkennt in ihm aber bald den jungen braven Offizier, den sie nach einer Verwundung einst gepflegt und verspricht ihm, sich am andern Tage zu zeigen, wenn er den für Dickson bestimmten Auftrag übernehmen will. Georg geht darauf ein. Am nächsten Tage ist die Versteigerung. Die Pächter der Umgegend haben sich zusammengethan, um, gerade wie Anna, das Schloß nicht in Gavestons Hände gelangen zu lassen und bieten so lange wacker darauf los, bis sie Gavestons Gebot nicht mehr übertreffen können. Schon glaubt sich dieser im Besitz des Schlosses, als Georg, der bis dahin stummer Zeuge war, vortritt und Schlag auf Schlag den Verwalter überbietet, bis die Summe so hoch wird, daß der ohnmächtig wütende Gaveston geschlagen ist. Das Schloß wird dem Leutnant zugesprochen, der spöttisch erklärt, er werde sich die Million, die er geboten, nach und nach von seiner Gage abziehen lassen. In der That aber war es Anna, die ihm das Gebot zugeflüstert und er überläßt es der weißen Dame, das Geld zu schaffen, das bis zum nächsten Tage

gezahlt werden muß. — Der nächste Tag bringt die Aufklärung. Anna bringt das Geld und zugleich wird Georg als Julius von Avenell, der rechtmäßige Erbe erkannt, während nun allen bekannt wird, daß Anna, die Julius zur Gemahlin nimmt und die weiße Dame dieselbe Person ist.

**1. Akt.** Platz vor Dicksons Haus mit Aussicht auf das hochgelegene Schloß. Chor der Bergbewohner, die zum Tauffest kommen: „Erklinget, ihr Hörner und Schalmeien". Dickson sagt das Fest ab, da der Richter, der Pate sein sollte, nicht kommen kann. Auftritt Georgs und Arie: „Ach, welche Lust Soldat zu sein". Sein liebenswürdiges Wesen bestimmt Jenny, Dicksons Frau, ihn zu bitten, ihrem Kinde Pate zu sein, was Georg gern bewilligt. Da aber die Taufe erst spät abends sein kann, so entschließt sich der fremde Offizier zu bleiben (Terzett mit Chor: „Doch mein Weibchen seh' ich eilig kommen") Man trinkt und Jenny erzählt die Sage der weißen Dame (Ballade mit Chor: „Seht jenes Schloß mit seinen Zinnen"). Dickson geht mit den Pächtern, die sich wegen der morgigen Schloßversteigerung besprechen und Georg bleibt mit Jenny allein (Duett: „Wie, er geht, läßt uns hier allein?"). Als Dickson zurückkommt, erzählt er ängstlich von der Einladung der weißen Frau und Georg erklärt, für ihn gehen zu wollen (Terzett und Finale: „Ich kann es nicht verstehen").

**2. Akt.** Gothisches Zimmer im Schloß. Arie Margaretens: „Spinne, arme Margarete". Als Gaveston mit Anna eingetreten, hört man läuten (Terzett: „Horch, man läutet noch an der Pforte"). Anna entfernt sich und Margarete läßt Georg ein, dem dies Zimmer angewiesen wird. Allein gelassen, macht er es sich in einem Sessel bequem und ruft nach der weißen Dame (Kavatine: „Komm, o holde Dame"). Anna erscheint als weiße Frau (Duett: „Dieses Gut gehört dem Grafen Avenell mit Recht"). Nachdem Anna gegangen, wird es nach und nach Tag, die Pächter versammeln sich, Gaveston kommt mit dem Richter und es beginnt die Versteigerung, die mit dem Jubel der Pächter und des versammelten Volkes endet, daß nicht Gaveston Schloßherr geworden.

**3. Akt.** Der Ahnensaal. Anna drückt ihre Freude aus über das geglückte Spiel, das sie getrieben („Wohl mir, mit Freudigkeit betritt mein Fuß"). Das Volk beglückwünscht Georg, der das Schloß mit seltsamen Erinnerungen betrachtet. Anna erkennt jetzt, daß Georg, den sie liebt, Julius von Avenell, der rechtmäßige Herr ist, zu dem sie sich nicht erheben darf. Auch die alte Margarete glaubt an die Rückkehr des von ihr geliebten Julius (Duett: Anna, Margarete: „Mein liebes Fräulein, viel Neues hab' ich Euch zu sagen"). Die Zahlungsstunde erscheint, mit ihr die weiße Dame vor aller Blicken, überreicht Georg das

von ihr bewahrte Vermögen und erklärt ihn für Julius v. Avenell. Wütend entschleiert Gaveston die weiße Dame und Anna steht vor ihm. Sein Spiel ist verloren, er verläßt das Schloß und Julius reicht der geliebten Anna seine Hand.

## Der Wildschütz oder: Die Stimme der Natur.

Komische Oper in 3 Akten von Lortzing. Text, nach Kotzebue's Lustspiel „Der Rehbock", vom Komponisten.

Personen: Graf v. Eberbach = Bariton; die Gräfin, seine Gemahlin = Sopran; Baron Kronthal, deren Bruder = Tenor; Baronin Freimann, eine junge Witwe, Schwester des Grafen = Sopran; Nanette, ihr Kammermädchen = Mezzosopran; Baculus, Schulmeister Baß; = Gretchen, seine Braut = Sopran; Pancratius, Haushofmeister = Bariton. — Ort: Schloß und dazu gehöriges Dorf. Zeit: 1803.

Leipzig 1842.

Voraussetzung zum Verständnis der Handlung ist, daß durch lange Trennung die Baronin Freimann ihrem Bruder, dem Grafen Eberbach, und Baron Kronthal seiner Schwester der Gräfin, von Angesicht unbekannt geworden sind.

**1. Akt.** Dorfplatz mit Wirtshaus, Schulhaus und dem Hause Gretchens (Chor: „So munter und fröhlich wie heute"). Baculus will mit Gretchen Hochzeit feiern (Lied: „A, B, C, D, der Junggesellenstand thut weh"). Mitten in die Feier hinein kommt ein Brief vom Grafen, mit der Verabschiedung des Schullehrers Dieser hat sich zum Hochzeitsfest einen Wildbraten verschaffen wollen, in der Dunkelheit ein Tier geschossen, das er zwar nicht hereinbringen konnte, aber, da der Graf davon erfahren, die Ursache seiner Entlassung ist. Da Gretchen die Veranlassung zu dem Schuß war, möchte er sie gern aufs Schloß schicken, den Grafen um Vergebung zu bitten; aber da der Graf als Mädchenjäger bekannt, kann er sich doch nicht dazu verstehen (Duett: „Bei diesem schlimmen Fall hilft weiter nichts als bitten"). Da wird ihm unerwartete Hilfe. In der Kleidung eines flotten Studenten kommt die etwas emanzipierte Baronin Freimann mit ihrem Kammermädchen Nanette, die als Stubenbursche erscheint (Arie der Baronin: „Auf des Lebens raschen Wogen"). Als sie hört, um was es sich handelt, bietet sie sich an, in Gretchens Kleidern mit Baculus zum Schloß zu gehen (Quartett: „Was meint Ihr, lieber Freund") Die Baronin geht also, sich umzukleiden, und der Graf kommt auf der Jagd ins Dorf, mit ihm sein Schwager Baron Kronthal, der vorläufig, unerkannt von seiner Schwester, die Rolle eines Stallmeisters spielt (Jagdlied: „Seht dort den muntern Jäger"). Als die Baronin nun als schmuckes Bauernmädchen heraustritt, erregt sie sofort die Aufmerksamkeit der Herren (Finale: „Lasset uns nach Hause gehen", mit dem Liede der Baronin: „Bin ein schlichtes Kind vom Lande"). Der Graf ladet sie mit den Uebrigen auf morgen zu einem Feste ins Schloß.

**2. Akt.** Ein Saal im Schlosse mit einem Billard. Im Nebenzimmer liest die überspannt schöngeistige Gräfin eine Tragödie des Sophokles laut vor und die Dienerschaft sitzt lauschend auf der Bühne (Chor: „Nicht geplaudert! Acht gegeben!“). Pancratius schickt die Leute fort, als Baculus eintritt. Dieser erhält von dem Haushofmeister ein Buch des Sophokles, um mit dessen Hilfe die Gräfin zu gewinnen. — Die Gräfin kommt mit dem Baron, in dem sie jedoch noch nicht den Bruder erkannt hat, und der ihr aus Scherz seine Liebe gesteht, was sie sehr gern hört (Duett: „Bleiben soll ich und stets Sie sehen“). Baculus kommt jetzt, die Gräfin zu bitten, soll aber vom Grafen hinausgewiesen werden, als die Baronin in Gretchens Kleidern dazu kommt, und der Graf erfährt, daß sie des Schulmeisters Braut ist („Was seh ich, mir aus den Augen“). Sowohl der Graf, als auch der Baron suchen jetzt mit dem vermeintlichen Bauernmädchen allein zu bleiben, welches dem Baron zuerst gelingt, da der noch anwesende Baculus ermüdet einschläft. Er fordert sie auf, das Band mit dem Schulmeister zu lösen und die Seine zu werden (Duett: „Ihr Weib? — Mein teures Weib“). Jetzt naht sich auch der Graf mit Eroberungsplänen und beginnt, um den Baron zu beschäftigen, mit diesem eine Partie Billard. Der erwachende Baculus holt sein Gesangbuch heraus und singt sich eins. Der Graf verlöscht im Spiel die Lampe; als jetzt beide Herren das Mädchen zu erhaschen suchen, tritt die durch den Lärm herbeigelockte Gräfin mit Licht ein. Die Gräfin entführt das Bauernmädchen den Herren und führt es in ihr Zimmer, zum Schrecken des Schulmeisters, der ja doch die Baronin für einen Studenten hält (Quintett: „Ich hab Num'ro Eins“). Der Baron hat sich aber ernstlich verliebt und bietet dem Schulmeister 5000 Thaler, wenn er ihm die Braut abtrete, worauf dieser eingeht (Arie des Baculus: „5000 Thaler! Träum' oder wach' ich?“).

**3. Akt.** Schloßpark. Auftritt des Grafen: „Wie freundlich strahlt die holde Maiensonne“ und Arie: „Heiterkeit und Fröhlichkeit“. Die jungen Landmädchen bringen dem Grafen Glückwünsche zum Wiegenfeste, wofür der Graf dankt, indem er mit ihnen tanzt, doch werden die Mädchen durch das Erscheinen der Gräfin verscheucht. — Nun kommt Baculus und bringt dem Baron seine verkaufte Braut; da es aber das wirkliche Gretchen ist, so verlangt er die Andere, die doch aber der Schulmeister für einen Mann hält (Terzett: „Nun, liebes Gretchen, bekenne frei und ohne Scheu“). Als der Baron das erfährt, setzt er die Baronin zur Rede, erfährt nun wer sie ist, wird mit ihr von der Gräfin überrascht und fortgeführt, was der Graf benützt, die Baronin zu küssen, was sich diese — von dem Bruder — ruhig gefallen läßt, bis sie allen gesteht, wer sie sei, worauf der Graf und die Gräfin, die nun auch erfährt, daß der angebliche Stall-

meister ihr Bruder ist, ihre Neigung als „Stimme der Natur" erklären. Zum Schluß kommt Baculus mit seinen sämtlichen Schulkindern, um den Grafen mit einem Lobgesang zu versöhnen. Da sich herausstellt, daß der vermeintlich geschossene Rehbock der in der Dunkelheit verirrte Esel des Schulmeisters selbst war, darf Baculus seine Stelle behalten und kann sein Gretchen nunmehr heiraten, wie auch aus dem Baron und der Baronin ein Paar wird.

## Zamora.

Musikdrama in 1 Akt von Adolf Stierlin.

Personen: Gonsalvo de Oliva, ein portugiesischer Seefahrer = Tenor; Francesco de Bellamare, Schiffskapitän = Baß; Valeria, seine Schwester = Mezzosopran; Zamora, eine junge Indianerin = Sopran; Theopa, ihr Vater = Bariton. — Ort: Eine unbewohnte Insel im Antillenmeer. Zeit: 17. Jahrhundert.

Berlin 1894.

Tropische Landschaft mit Blick auf das Caraibische Meer.

Gonsalvo ist einst mit seinem Schiff hier gescheitert und von Zamora gerettet worden; aus Liebe für ihn hat sie ihren Vater Theopa verlassen und weilt mit dem Geliebten, dessen Christenglauben sie angenommen, allein auf dieser Insel. Gonsalvo weiht ihr aus Dankbarkeit sein Herz und sie ist glücklich, da sie sich geliebt wähnt.

Gonsalvo sehnt sich nach seiner Heimat zurück (Heimatlied: „O Land an Tajos Uferstrande") Da sieht er zu seiner unermeßlichen Freude ein Schiff, giebt ein Zeichen und ein Kanonenschuß antwortet ihm, daß man ihn gesehen. Aengstlich will ihn Zamora zurückhalten, zur Bucht zu eilen („Ach weile, Freund, es drohen Dir Gefahren durch jenes Schiff"). Er aber reißt sich los und betend sinkt sie in die Knie („O Christengott, Allmächtiger Du"). Aus den Händen auf sie eindringender Matrosen wird sie von Francesco gerettet. Mit diesem kommt Valeria, die ihren verschollenen Gatten Gonsalvo sucht. Zamora kann nicht denken, daß ihr Geliebter, der ja nur ihr gehört, ein Weib habe, als Valeria ihr erzählt, daß Gonsalvo mit einem Schiff verloren gegangen sei („Ein Gatte war mein höchstes Gut"). Als aber Gonsalvo kommt und Valeria entzückt in die Arme schließt, fällt Zamora ohnmächtig nieder. Gonsalvo berichtet seiner Gattin, was geschehen („Als einst an dieser Felsenbank"). Dann richtet er Zamora auf, die anfänglich alles für einen Traum hält, aber dann die Wahrheit erfährt. Als sie sich an Gonsalvo klammert und ruft, daß seine Liebe zu ihr ihn banne, schleudert er sie von sich; nur Dankbarkeit nicht Liebe hat ihn gefesselt. Er geht mit Valeria, während Zamora mit einem wahnsinnigen Schrei zusammenbricht — Da naht Theopa, ihr Vater; Feinde haben alle seine Lieben erschlagen, nun will er sich mit der einzigen Tochter versöhnen („Komm, laß uns ziehn zum Heimatstrand").

Zamoras Sinne aber haben sich verwirrt; sie sieht Valeria als eine gräßliche Schlange vor sich, die erst Gonsalvo erwürgen will, dann an ihr selbst sich emporringelt — wild ergreift sie des Vaters Messer, ruft: „Die Schlange — hier — tot muß sie sein“ und stößt den Stahl in ihre Brust. Entsetzt steht Theopa, von ferne erschallt fröhlicher Gesang der Matrosen mit Gonsalvo, Valeria und Francesco und man sieht das Schiff unter frohem Jauchzen der Matrosen mit vollen Segeln im Hintergrund vorüberfahren, Gonsalvo und Valeria auf dem Verdeck sich umschlungen haltend.

---

## Zampa oder: Die Marmorbraut.

Komische Oper in 3 Akten von Hérold. Text von Melesvilles.

Personen: Zampa, ein Seeräuber = Bariton; Alfonso de Monza, sizilianischer Offizier = Tenor; Graf Lugano; Camilla, seine Tochter = Sopran; Daniel Capuzzi, Steuermann in Zampas Diensten = Baß; Ritta = Mezzosopran; Dandalo = Tenor. — Ort: Sizilien. Zeit: 17. Jahrhundert. Paris 1831.

Camilla, die Tochter des Grafen Lugano soll an diesem Tage mit Alfonso de Monza vermählt werden, als die Kunde eintrifft, daß der Graf von dem gefürchteten Seeräuber Zampa gefangen worden ist. Zampa kommt selbst, erklärt das Leben des Grafen in Gefahr, wenn Camilla nicht von Alfonso lasse und ihn selbst eheliche Die Seeräuber feiern ein fröhliches Zechgelage und als Zampa in einem Marmorbild der, als Heilige verehrten Bianka Manfredi die Züge einer verlassenen Geliebten erkennt, steckt er dem Bild übermütig einen Verlobungsring an den Finger. Die Seeräuberschar stiebt aber mit Grausen auseinander, als das Marmorbild die Hand fest schließt, da Zampa seinen Ring wieder nehmen will. Er läßt sich aber nicht schrecken und will dennoch mit Camilla die Hochzeit feiern, doch tritt ihm am Eingang der Kapelle die Marmorfigur entgegen und zeigt ihm drohend den Verlobungsring. — Er gesteht Camilla, daß Zampa nur sein Piratenname sei, in Wirklichkeit wäre er der Graf von Monza. Das hört Alfonso, der nun in Zampa seinen Bruder sieht, doch dieser läßt Alfonso durch seine Gefährten fortführen Vom Vicekönig kommt die Nachricht, daß die Seeräuber begnadigt werden sollen, wenn sie mitzögen in den Kampf gegen die Türken. Vorher will aber Zampa Camilla zum Altar führen und verfolgt die vor ihm Geflüchtete. Wieder tritt ihm die Marmorfigur entgegen und zieht ihn mit hinab in das Feuer, das aus der Erde emporsteigt. — In einem Schlußbild sieht man die Figur Biankas in heller Beleuchtung und zu ihren Füßen die vereinigten Camilla und Alfonso, sowie den aus der Gefangenschaft befreiten Grafen Lugano mit seinen Freunden. Das komische Element der Oper ist in dem Dienerpaar Ritta und Dandolo vertreten.

## Zar und Zimmermann.

Komische Oper in 3 Akten von Lortzing. Text vom Komponisten.

Personen: Peter I., Zar von Rußland, unter dem Namen Peter Michaelow, als Zimmergeselle = Bariton; Peter Iwanow, ein junger Russe, Zimmergeselle = Tenor; van Bett, Bürgermeister von Sardam = Baß; Marie, seine Nichte = Sopran; General Lefort, russischer Gesandter = Baß; Lord Syndham, englischer Gesandter = Baß; Marquis von Chateauneuf, französischer Gesandter = Tenor; Witwe Brown = Alt; ein Offizier. — Ort: Sardam. Zeit: 1698.

Leipzig 1837.

Zwei Russen halten sich zur Zeit als Zimmergesellen in Sardam auf. Zar Peter unter dem Namen Peter Michaelow und der Deserteur Peter Iwanow, der Marie liebt und mit Michaelow Freundschaft schließt. Es verbreitet sich die Kunde, daß der Zar in Sardam sei und nun beginnen die Gesandten fremder Mächte den Richtigen zu suchen, um mit ihm günstige Verträge abzuschließen. Der Franzose Marquis von Chateauneuf findet die richtige Spur und verständigt sich mit Peter und Lefort, während der überschlaue Bürgermeister van Bett, sowie der englische Gesandte Peter Iwanow für den Zaren halten und sich durch dessen Leugnen nicht irre machen lassen. Iwanow erhält sogar von dem Engländer einen Paß, den er aber an den richtigen Peter ausliefert, als dieser auf die Nachricht von einem Aufstand der Strelitzen schnell nach Rußland abfahren muß. Der Zar verzeiht die Desertion seines jetzigen Freundes Iwanow und vermählt ihn mit der geliebten Marie.

**1. Akt.** Zimmerplatz auf einer Schiffswerft in Sardam (Chor der Zimmerleute und des Zaren Lied: „Auf Gesellen, greift zur Axt"). Iwanow ist auf Chateauneuf eifersüchtig, der Marien nachsteigt, doch die Geliebte besänftigt ihn (Arie: „Die Eifersucht ist eine Plage"). — Der Zar erhält durch Lefort die Kunde vom Aufstand der Strelitzen („Verraten! von Euch verraten" und Arie: Treu hing stets mein Herz an meinem ganzen Volke"). — Nun kommt der Bürgermeister, der sich für sehr weise hält, aber nicht einmal weiß, was er mit einem erhaltenen Befehle anfangen soll, einen gewissen Peter zu erspähen (Arie: „O sancta justitia, ich möchte rasen" mit der populär gewordenen Strophe: „O, ich bin klug und weise, und mich betrügt man nicht"). Er läßt durch die Glocke alle Zimmerleute zusammenrufen, kann aber nichts erfahren, obwohl sein Verdacht auf Iwanow ruht (Duett: Bürgermeister, Iwanow: „Darf ich wohl den Worten trauen"). Chateauneuf entdeckt den Zaren, der ihm Vorsicht empfiehlt (Finale: „Das Volk strömt zum Fest zusammen", und der Zar bestimmt dem französischen Gesandten einen Ort zum Stelldichein).

**2. Akt.** Garten einer Schenke (Hochzeitschor: „Hoch lebe die Freude" und Romanze Chateauneufs: „Lebe wohl, mein

stand'risch Mädchen"). Die Gäste ziehen sich zurück und an zwei gegenüberliegenden Tischen nehmen Bürgermeister und Syndham mit Iwanow und Chateauneuf und Lefort mit dem Zaren Platz (Sextett: „Zum Werk, das wir beginnen"). Die Gesandten haben sich alle verkleidet, um in den Verhandlungen mit dem echten und vermeintlichen Zaren nicht aufzufallen. Marie kommt mit den Gästen zurück und singt das Brautlied „Lieblich röten sich die Wangen". Die Festesfreude wird aber gestört durch einen Offizier, der dem Bürgermeister den Befehl bringt, der heimlichen Soldatenwerberei im Ort Einhalt zu thun. van Bett, der schon sehr angetrunken ist, will alle, auch sich selbst, verhaften lassen, um den Schuldigen dadurch zu erwischen. Jeder muß seinen Namen nennen, nur der Zar weigert sich (Finale: „Schon seit geraumer Zeit bemerk ich hier Gesichter").

**3. Akt.** Halle im Stadthaus. van Bett studiert mit einem Chor für Iwanow, den er immer noch für den Zaren hält, eine Cantate ein („Heil dem Tag, an welchem Du bei uns erschienen"), hat aber seine liebe Not, den Dummköpfen die Sache beizubringen. — Als der Zar kommt, den van Bett für einen Verbrecher hält, geht dieser mit dem Chor ab und nachdem Peter noch Marie getröstet, bleibt er allein (Lied: „Sonst spielt ich mit Zepter, mit Krone und Stern"). — Marie kommt nach des Zaren Abgang mit Iwanow und spottet ihn als falschen Zaren aus (Duett: „Darf eine nied're Magd es wagen"). — Zu Iwanow tritt der Zar, wütend darüber, daß der Hafen gesperrt ist, doch Iwanow giebt ihm einen vom englischen Gesandten erhaltenen Paß. Peter eilt damit fort, und als nun van Bett Iwanow mit seiner Cantate begrüßen will, öffnet sich der Vorhang des Hintergrundes und man erblickt das ausfahrende Schiff des Zaren, der Iwanow noch zum kaiserlichen Aufseher ernennt und ihm die Erlaubnis zur Heirat mit Marie giebt.

---

## Die Zauberflöte.

Oper in 2 Akten von Mozart. Text von E. Schikaneder.

Personen: Sarastro = Baß; Taminor = Tenor; Sprecher = Baß; drei Priester = Bässe; die Königin der Nacht = Sopran; Pamina, ihre Tochter = Sopran; drei Damen = Soprane; drei Knaben = Soprane; Papageno = Baß; Papagena = Sopran; Monostatos, ein Mohr = Tenor.

Wien 1791.

Der weise Isispriester Sarastro hat Pamina entführt, jedoch nur in der menschenfreundlichen Absicht, sie dem bösen Einfluß ihrer Mutter, der Königin der Nacht, zu entziehen. Diese gewinnt den jungen Prinzen Tamino, die Tochter aus Sarastros Gewalt zu befreien; Tamino erringt auch Pamina mit Mut und Treue, wird aber von Sarastros Milde und Weisheit überzeugt und ein Freund desselben, der ihn mit Pamina vereint.

**1. Akt.** Fels und Wald. Tamino wird von einer großen

Schlange verfolgt („Zu Hilfe! zu Hilfe! sonst bin ich verloren"). Als er ohnmächtig zusammensinkt, erscheinen drei schwarz gekleidete Damen und töten mit ihren Lanzen die Schlange („Stirb, Ungeheuer, durch unsere Macht") Die Damen schwärmen für den Prinzen, den jede gern für sich hätte und gehen dann wieder. Tamino erwacht, und der nur in Vogelfedern eingehüllte Papageno tritt auf Arie: „Der Vogelfänger bin ich, ja"). Von ihm erfährt Tamino die Nähe der Königin der Nacht und als Papageno sich brüstet, die Schlange getötet zu haben, erscheinen die drei Damen wieder und bestrafen seine Lüge, indem sie ihm ein Schloß vor den Mund legen; dann übergeben sie dem Prinzen ein Miniaturbild, das dieser mit Entzücken betrachtet (Arie: „Dies Bildnis ist bezaubernd schön"). Nun zeigt sich die Königin der Nacht den Augen Taminos und fordert ihn auf, das Original des Bildes, ihre Tochter, aus den Händen Sarastros zu befreien (Recitativ und Arie: „Zum Leiden bin ich auserkoren"). Tamino erhält von den Damen eine Zauberflöte, und der von dem Schloß wieder befreite Papageno ein Glockenspiel. Papageno soll Tamino begleiten, drei Knaben sollen sie führen und mit den Instrumenten sollen sie die Gefahren bannen (Quintett).

Verwandlung (eventuell auch 2. Akt, wenn die Oper in 3 Akte eingeteilt wird): Zimmer in Sarastros Palast. Pamina wird von dem Mohren Monostatos hereingeschleppt, dann aber kommt Papageno und kündet ihr den von der Mutter zur Befreiung gesandten Tamino an. (Duett: Monostatos, Pamina: „Du feines Täubchen nur herein"; Auftritt Papagenos und Duett mit Pamina: „Bei Männern, welche Liebe fühlen").

Verwandlung: Hain und Eingänge zu den Tempeln. Die drei Knaben führen Tamino herein („Zum Ziele führt Dich diese Bahn"). Als Tamino in den Tempel will, wird er von zwei Thüren zurückgewiesen, an der dritten erscheint ein Priester, der ihm Sarastro in seiner wahren Gestalt schildert („Wo willst Du kühner Fremdling hin"). Als Papageno Pamina bringt, wollen alle drei entfliehen, doch werden sie durch Monostatos daran gehindert („Ha, hab' ich Euch noch erwischt"). Auftritt Sarastros (Chor: Es lebe Sarastro"). Pamina gesteht zu seinen Füßen, daß sie habe fliehen wollen, weil der böse Mohr Liebe von ihr verlangt habe. Sarastro hebt sie freundlich auf, sagt, daß er sie zwar nicht zur Liebe zwingen, ihr aber auch nicht die Freiheit geben werde. Den Mohren läßt er bestrafen und Tamino mit Papageno in den Prüfungstempel führen.

**2. Akt.** Palmenhain. Der Priesterrat bestimmt, daß Tamino, wenn er die Prüfung bestehe, Pamina erhalten solle, da man sie der Mutter, die durch Aberglauben das Volk verwirrt, nicht zurückgeben will (Arie und Chor: „O Isis und Osiris").

Verwandlung: Vorhof des Prüfungstempels. Als erste

Prüfung ist Tamino und Papageno Schweigen auferlegt (Duett: Sprecher und Priester: „Bewahret Euch vor Weibertücken"). Die drei Damen kommen, die Prüflinge zu verleiten (Quintett: „Wie? Ihr an diesem Schreckensort?"). Tamino und Papageno bleiben fest, wenn letzterer auch in zweifelhafter Weise.

Verwandlung: Garten. Pamina schläft auf einer Bank. Monostatos schleicht zu ihr, sie mit Wonne betrachtend (Arie: „Alles fühlt der Liebe Freuden"). Als die Königin der Nacht erscheint und Pamina einen Dolch reicht, womit sie Sarastro töten soll (Arie: „Der Hölle Rache kocht in meinem Herzen"), tritt Monostatos zurück und lauscht. Wie er mit dem Geheimnis Pamina zur Liebe zwingen will, weist ihn der nahende Sarastro zurück und beruhigt Pamina (Arie „In diesen heil'gen Hallen").

Verwandlung: Eine Halle im Prüfungstempel. Durch abermaliges Schweigen müssen Tamino und Papageno sich bewähren. Papageno kann jetzt den Mund nicht mehr halten, aber Tamino bleibt fest, selbst als Pamina kommt und glaubt, er liebe sie nicht mehr, weil er nicht mit ihr redet (Arie Paminas: „Ach, ich fühl', es ist verschwunden").

Verwandlung (auch 3. Akt): Gegend mit Pyramiden (Chor: „O Isis und Osiris, welche Wonne"). Sarastro trennt Pamina von Tamino (Terzett: „Soll ich Dich, Teurer, nicht mehr sehen?") — Papageno möchte auch ein Weibchen haben (Arie: „Ein Mädchen oder Weibchen wünscht Papageno sich"). Schon bei der ersten Prüfung ist ihm ein altes Mütterchen entgegengetreten und nannte sich seine Braut. Sie kommt jetzt wieder und verwandelt sich in die junge und hübsche Papagena. Vorläufig muß das Pärchen aber noch warten

Verwandlung: Freie Gegend. Die drei Knaben verhindern Pamina am Selbstmord, den sie begehen will, weil sie Tamino treulos wähnt („Bald prangt, den Morgen zu verkünden"). Auch Papageno will sich das Leben nehmen, tanzt aber vergnügt, als auf den Rat der Knaben sein Glockenspiel Papageno herzaubert (Duett: „Pa-pa-pageno! Pa-pa-pagena!").

Verwandlung: Felsengegend mit Wasser- und Feuerhöhle. Geharnischte Männer führen Tamino herein („Der, welcher wandert diese Straße voll Beschwerde"). Pamina kommt dazu und ist glücklich, Tamino zu finden, der nun wieder mit ihr sprechen darf. Beide gehen vereint und mit Hilfe der Zauberflöte unberührt durch Feuer und Wasser; damit ist die Prüfung beendet, die Szene verwandelt sich in den Eingang zum Haupttempel, wo Sarastro das Paar willkommen heißt und vereint. (Eine Zwischenszene, wo der verräterische Monostatos mit der Königin der Nacht und deren Frauen erscheint, um den Tempel zu überfallen, bleibt bei der Aufführung gewöhnlich fort.)

# Nachtrag.

## Odysseus' Heimkehr.

Musik-Tragödie in einem Vorspiel und drei Akten von August Bungert. Text vom Componisten.

Personen: Odysseus = Bariton. Penelopeia, seine Gemahlin = Alt. Telemachos, ihr Sohn = Tenor. Laertes, Vater des Odysseus = Baß. Hyperion = Tenor. Antinoos = Tenor. Eurichochos = Bariton. Mentor = Baß. Eumäos = Baß. Theoklymenos = Baß. Phemios = hoher Bariton. Medon = Bariton. Leiodes = Bariton. Athene = Alt. Eurykleia Mezzosopran. Despoina = Mezzosopran. Melantho = Mezzosopran. Ort; Palast des Odysseus, Zeit; 10 Jahre nach Beendigung des trojanischen Krieges.

Dresden 1896.

**Vorspiel:** Meeresstrand auf Ithaka. Athene zieht singend vorüber. Die Freier verschwören sich gegen das Leben Telemachs. Hyperion schließt sich nach einigem Zögern an. Telemach besteigt ein Boot, um seinen Vater Odysseus zu suchen.

**1. Akt.** Grotte. Odysseus erwacht aus tiefem Schlaf und blickt um sich, ohne jedoch sein Vaterland wieder zu erkennen. Athene kommt ihm zu Hülfe und zerteilt die Nebel, so daß er freudetrunken seine Heimat begrüßt. Er erkennt den alten Eumäos wieder, hüllt sich jedoch in das Bettlergewand, das Athene zurückgelassen hat. Mit Entsetzen erkennt er die Veränderungen, die sich während seiner Abwesenheit vollzogen haben. Er giebt sich als ein Bote des Odysseus aus und Eumäos verspricht ihm, ihn zu Penelopeia zu führen. Die Boote Telemachs und der Freier nahen sich, Odysseus stürzt seinem Sohne, der von den Freiern bedrängt wird, zu Hülfe. Laertes verkündet die bevorstehende Rückkehr seines Sohnes.

**2. Akt.** Ein Garten am Meer. Chor der Mädchen und Freier. Verwandlung: Ein Saal in Odysseus Palast. Penelopeia beklagt, am Webstuhl sitzend, ihr grausames Geschick und, fleht um die Wiederkunft ihres Gemahls. Sie begrüßt in Hyperion den Freund ihres Sohnes, muß aber zu ihrem Leidwesen erkennen, daß auch er ihr in Liebe ergeben ist. Die hereinstürzenden Freier verlangen immer drin-

gender eine Entscheidung, und Penelopeia verspricht schließlich am nächsten Tage einen Wettkampf zu veranstalten, dessen Sieger sie die Hand zum Ehebunde reichen will.

**3. Akt.** Hofraum in Odysseus Palast. Penelopeia erscheint, um dem Wettkampf beizuwohnen, und bringt den Bogen des Odysseus mit, mit dem der Kampf ausgetragen werden soll. Zuerst versucht Telemach vergeblich, ihn zu spannen; auch den anderen Freiern gelingt es nicht. Da bittet sich Odysseus, der sich inzwischen seinem Sohne zu erkennen gegeben hat, den Bogen aus und vollendet spielend die gestellte Aufgabe. Einer der Freier schleudert eine Fußbank gegen den angeblichen Bettler. Hierdurch wird der Kampf zwischen Odysseus und seinen Getreuen einerseits und den Freiern andrerseits eröffnet. Odysseus bleibt Sieger. Die jubelnde Penelopeia stürzt in seine Arme.

---

## Der Pfeifertag.

Heitere Oper in 3 Akten von Max Schillings; Dichtung von Ferdinand Graf Sporck.

Personen: Schmasmann von Rappoltstein, oberster Pfeiferkönig im Elsaß = Baß. Herzland, seine Tochter = Sopran. Ruhmland, sein Sohn = Bariton. Velten Stacher, ein Pfeiffer = Tenor. Alheit, seine Schwester = h. Sopran. Jockel, Unterpfeiferkönig = Tenor. Weihdampf = Tenor, Surgand = Bariton, Henselin = Baß, Pfeiffer. Jost u. Jörg, Pfeifferknaben = Sopran u. Alt. Loder, Schankwirt = Baß-Bariton. Ort: Rappoltsweiler im Elsaß. Zeit: Ende des 15. Jahrhunderts.

**1. Akt.** Herrengarten vor dem Stadtthore.. Jost und Jörg ziehen trommelnd und pfeifend herum und laden zum Pfeifertage ein. Jockel mit den drei anderen Pfeifern, die den Pfeiferrat bilden, erscheint, und unter den üblichen Ceremonieen trägt Surgand die Legende vom Herrn Egenalf von Rappoltstein vor, dem der Pfeiferstand seine Erhebung aus niederer Stellung verdankt. Der spitzbübische Pfeiferrat ist in Sorgen, ob er auch wiedergewählt werden wird. Während der alte Jockel sehr siegesgewiß thut, fürchten die andern, daß Velten Stacher und sein Freund Rasbert (unter welchem Pfeifernamen sich der mit seinem Vater zerfallene Ruhmland verbirgt) gewählt werden könnten, die beide in hohen Gnaden ständen. Weihdampf hat es deshalb vorsorglich dem Ritter gesteckt, daß Velten es heimlich mit Herzland hält, und Velten hat Rappoltsteins Haus verlassen müssen, um mit Rasbert als „Berichtiger" über den Pfeiferstand Erkundigungen über den bevorstehenden Gerichtstag einzuziehen. — Der Pfeiferzug naht (Chor: „Gepriesen sei viel tausendfach") und wird von Rappoltstein und seiner Tochter

erwartet. Sie sucht die gute Laune ihres Vaters zu Gunsten seines verstoßenen Sohnes und ihres Liebhabers Velten auszunutzen, wird aber unwirrsch abgewiesen. Alheit erzählt Herzland, daß Velten und Ruhmland, von dem die Schwester nur eine dunkle Erinnerung hat, heute eintreffen würden, und gesteht ihr, daß sie ihn liebe.. Nachdem sie Herzland so vorbereitet hat, ruft sie die beiden jungen Männer, die sich in der Nähe verborgen halten, herbei (Quartett: „Sie muß es sein!"). Alle vier beraten, wie sie den Vater umstimmen könnten, und Velten, der überzeugt ist, daß man nur nach dem Tode anerkannt werde, beschließt unter dem Beifalle der anderen, sich bei passender Gelegenheit für tot ausgeben zu lassen, um so den Alten umzustimmen. Rappoltstein tritt herzu und begrüßt Velten kühl; seinen durch einen falschen Bart unkenntlichen Sohn erkennt er nicht. Von Velten erfährt er, daß der alte Jockel ein Spitzbube sei und nicht weiter Unterpfeiferkönig bleiben dürfe. — Der Pfeiferzug erscheint und begrüßt Rappoltstein, singt ein Lied von seinem Ahnen, erregt aber den Unwillen des Ritters durch einige anzügliche Bemerkungen, die ihn zu Gunsten seines Sohnes umstimmen sollen. Als darauf Velten in seinem Liede: „Als von Adams jungen Lippen" sogar deutlich auf seine Liebe zu Herzland anspielt, verweigert Rappoltstein den beiden „Berichtigern" den üblichen Ehrentrunk und geht zornig ab (Ensemble: „Der listige Biber").

**2. Akt.** Pfeiferherberge. Mädchen schmücken den Raum für den Pfeifertag aus (Chor: „Im Herbst am Frauentag"). Velten tritt auf und stellt über seine Lage Betrachtungen an („Du tolles Spielmannslos!"). Draußen zieht sich ein Gewitter zusammen; die Liebenden beschließen, es für ihr Vorhaben auszunutzen. Der Ritter bleibt nach wie vor hartnäckig, da weiß die lustige Alheit ihm das sonderbare Versprechen abzulocken, daß er Velten auf der Totenbahre mit seiner Tochter vermählen werde. — Der Pfeifertag beginnt, und Jockel schildert die Lage des Pfeiferstandes unter seiner Verwaltung in den rosigsten Farben, aber Ruhmland und Velten berichten ganz andre Dinge, und Jockels Rechnungslegung bestätigt ihre Angaben. Velten beschuldigt ihn direkt der Veruntreuung, und ein allgemeiner Aufruhr entsteht; da stürzt der Wirt hinein und meldet, daß bei dem furchtbaren Gewitterregen der Bach übergetreten sei, die Brücke weggerissen habe und das Haus bedrohe (Großes Ensemble: „Das ist der Herzen Jubelklang"). Bald ist kein Ausweg mehr zu finden; Velten steigt zum Fenster hinaus, um Rettung zu holen, gleich darauf meldet Ruhmland, er sei vom Blitze erschlagen worden. Die Wassermassen stürzen ins Haus; allgemeiner Aufruhr.

**3. Akt.** Schloßhof. Velten liegt „tot" auf einer Bahre, die

Verbündeten sind um ihn versammelt, lachen, trinken und scherzen mit ihm. Der Trauerzug der Pfeifer betritt den Schloßhof; Rappoltstein, der den munteren Velten stets gern gehabt hat, ist in tiefer Trauer. Herzland im Hochzeitsschmucke kommt mit ihren Mädchen und fordert ihren schaudernden Vater auf, sie seinem Versprechen gemäß mit Velten zu vermählen. Unter großen Ceremonieen geschieht dies, und als Velten um sein Jawort gefragt wird, springt er vergnügt auf und stürzt in Herzlands Arme. Rappoltstein fügt sich in das Unvermeidliche, und als darauf sein Sohn sich ihm zu erkennen giebt, vergiebt er auch ihm in der Freude des Herzens und legt seine und Alheits Hände ineinander. Der Pfeiferrat wird abgesetzt, und Velten wird Pfeiferunterkönig.

---

## Pique-Dame.

Oper in 3 Akten von Peter Tschaikowsky. Text nach Puschkins Novelle von M. Tschaikowski. Deutsch von A. Bernhard.

Personen: Hermann = Tenor. Graf Tomsky = Bariton. Fürst Jeletzky = Bariton. Czekalinsky = Tenor. Schurin = Baß. Tschaplitzky = Tenor. Narumoff = Baß. Festordner = Tenor. Gräfin *** = Mezzosopran. Lisa, iher Enkelin = Sopran. Pauline, deren Freundin = Alt. Gouvernante = Mezzosopran. Mascha, Dienerin = Sopran. — Ort: Petersburg. Zeit: Ende des 18. Jarhhunderts.

**1. Akt.** Ein großer Sommergarten. Zahlreiche Spaziergänger, Männer, Frauen und Kinder bewegen sich singend und spielend umher. Mehrere Offiziere, darunter Czekalinsky, Ssurin, Tomsky und Hermann, unterhalten sich vom vergangenen Spielabende, wobei Hermann, der stets nur zusieht, durch sein blasses und finsteres Aussehen aufgefallen ist. Er gesteht seinem Freunde Tomsky, daß er liebe, aber bei seiner Armut keine Aussicht habe, die vornehme Geliebte, die er außerdem nicht einmal näher kennt, heimzuführen, er weiß aber, daß er sterben muß, wenn er sie nicht gewinnt. Sie treffen den Fürsten Jeletzky und beglückwünschen ihn zu seiner Verlobung, aber als Hermann erfährt, daß die Braut Lisa, das von ihm selbst angebetete Mädchen ist, erschrickt er heftig (Quintett: „Mir graut es"). Der alten Gräfin und ihrer Enkelin ist der finstere, bleiche Mann schon wiederholt aufgefallen, und Lisa hat bereits ein tieferes Interesse für ihn gefaßt. Einen sehr ungünstigen Eindruck macht aber die Gräfin auf die Offiziere, und von Tomsky erfahren sie ihre Geschichte. Als junges, schönes Mädchen war sie eine leidenschaftliche Spielerin gewesen und hatte in Paris all ihr Geld verloren. Ein Graf, dessen Bewerbungen sie bisher

zurückgewiesen hatte, versprach ihr, für ein Stelldichein die Namen und die Reihenfolge der drei Gewinnkarten zu nennen; nach langem Zögern verkaufte sie sich ihm, und gewann ein Vermögen. Ihrem späteren Manne und einem Galan hatte sie die Karten bereits genannt, als ein Geist, der ihr erschien, ihr verkündete, daß sie sterben müsse, wenn noch ein Mann, der sie liebe, sie zwänge, ihm die Karten zu verraten. Seitdem hieß sie überall „Pique-Dame". Die Zuhörer meinen, daß die alte, häßliche Mumie davor sicher sei, und fordern Hermann lachend auf, sich doch die Kenntnis der Gewinnkarten zu verschaffen. Ein Gewitter treibt die Spaziergänger ins Haus, Hermann schwört, auf irgend eine Weise die Geliebte zu gewinnen.

Verwandlung. Lisas Zimmer. Das junge Mädchen vergnügt sich mit Pauline und anderen Freundinnen bei Gesang und Spiel (Duett: „Schon Abend"). Sie singt ein trauriges Lied („Noch unberührt von Sorgen"), aber die munteren Mädchen wollen davon nichts wissen und stimmen ein russisches Volkslied an („Nun Mariannchen"). Die eintretende Gouvernante verweist ihnen den Lärm und schickt die Freundinnen weg. Lisa soll ins Bett gehen, aber sie kann nicht schlafen; sie glaubt, ihren Bräutigam zu lieben, und kann doch Hermann nicht vergessen (Arie: „Wie heiß die Flut der Thränen"). Da erscheint Hermann auf der Veranda; sie will fliehen, aber er droht, sich auf der Stelle zu erschießen. Zögernd bleibt sie stehen und hört seine feurigen Liebesbeteuerungen weinend an. Vor der eintretenden Gräfin verbirgt er sich rasch; die Großmutter zürnt, daß Lisa noch wach ist, und befiehlt ihr, ins Bett zu gehen. Hermann muß wieder an die Prophezeihung mit den drei Karten denken, weist aber den Gedanken zurück. Als die Alte gegangen ist, setzt er seine Werbungen fort und Lisa giebt sich ihm endlich hin.

**2. Akt.** Maskenfest in einem vornehmen Hause. (Chor der Gäste: „Lachend und scherzend".) Die Offiziere wundern sich über Hermanns verändertes Benehmen; Surin meint, daß er die Kartenfolge entdecken wolle, Hermann selbst habe es ihm gesagt. — Auch dem Fürsten ist das veränderte Wesen seiner Braut aufgefallen, er beteuert ihr seine grenzenlose Liebe (Arie: „Ich liebe dich"). Hermann, der allein von allen ohne Maske ist, hat von Lisa einen Zettel bekommen, worin sie ihm mitteilt, daß sie ihn sprechen müsse. Wieder wünscht er, die drei Karten zu kennen, um reich zu werden und mit Lisa fliehen zu können. Die maskierten Freunde treten nach einander an ihn heran und flüstern ihm Andeutungen über die Kartengeschichte ins Ohr; er wird immer verwirrter. — Zwischenspiel „Die aufrichtige Schäferin". (Chloe weist den reichen Plutos

zurück und nimmt den armen, aber geliebten Daphnis zum Manne.) — Hermann kann den Gedanken an die Karten nicht los werden und wird immer entsetzter, als ihm fortwährend von maskierten Leuten Anspielungen darauf ins Ohr geflüstert werden. Endlich trifft er Lisa; diese giebt ihm den Gartenschlüssel, er soll durch das Schlafzimmer der Großmutter, die nicht dort anwesend sein würde, nachts zu ihr kommen.

Verwandlung. Schlafzimmer der Gräfin. Hermann tritt durch eine geheime Thüre ein und betrachtet das Bild der Gräfin, deren Los, wie er jetzt bestimmt weiß, mit dem seinigen verknüpft ist. Er hört Schritte und versteckt sich rasch hinter einem Vorhang; die Gräfin mit mehreren Dienerinnen tritt ein, begiebt sich in das anstoßende Boudoir, und kehrt im Nachtgewande zurück. Ihr Bett läßt sie sich auf dem Lehnstuhle zurecht machen und stellt dann, allein gelassen, Betrachtungen über Einst und Jetzt an (Lied: „Je crains de lui parler le nuit" aus Grétrys Oper „Richard Löwenherz"). Als sie eben im Einschlafen ist, tritt Hermann hervor und bittet sie flehentlich, ihm das Geheimnis der drei Karten mitzuteilen. Als sie ihn drohend zurückweist, will er sie mit der Pistole zur Aussage zwingen, aber schon ehe er losdrückt, fällt sie vor Schreck tot nieder — das Geheimnis der Karten ist mit ihr begraben! Lisa stürzt hinein, und als Hermann ihr in seiner Verwirrung von den Karten erzählt, ist sie empört, daß er nicht ihretwegen gekommen sei, und weist ihn als Mörder zürnend hinaus.

**3. Akt.** Hermanns Zimmer in der Kaserne. Lisa hat ihm geschrieben, daß sie sich wohl übereilt habe; wenn er unschuldig sei, solle er um Mitternacht an den Quai kommen. Draußen zieht ein Leichenzug vorüber, die alte Gräfin wird zu Grabe getragen. Ihr Geist erscheint Hermann und befiehlt ihm, Lisa zu heiraten und auf die Karten: „Drei, Sieben, Aß" zu setzen. Halb irrsinnig wiederholt er die Namen.

Verwandlung. Nachts am Kanal. Lisa erwartet Hermann (Arie: „Ach, ich erliege den Qualen"). Die Uhr schlägt Mitternacht, bald darauf kommt er und stürzt in ihre Arme (Duett: „Wir sind nun auf ewig vereint"). Beide wollen fliehen, aber zuerst soll sie ihm ins Spielhaus folgen, wo er das Gold gewinnen muß. Entsetzt hört sie seine irrsinnigen Reden an; er lacht, stößt sie von sich und läuft dann weg; verzweifelt stürzt sie sich ins Wasser.

Verwandlung. Spielhaus; Gäste beim Kartenspiele (Chor: „Laßt das Leben uns genießen"). Auch der Fürst ist zum ersten Male hier; er hat, wie er sagt, in der Liebe Unglück gehabt und hofft nun, im Spiele Glück zu haben. Tomsky muß ein lustiges Lied singen („Wenn die Mädchen hätten

Flügel"), dann folgt ein gemeinsames Spielerlied („Ob es regnet und schneit"). Hermann tritt ein; bei seinem Anblicke bittet der Fürst Tomsky, sein Sekundant zu sein. Alle erschrecken über Hermanns Anblick, er aber erklärt, zum ersten Male spielen zu wollen. Er setzt 40 000 Rubel auf die Drei und gewinnt; die Kameraden ahnen Unheil. Er setzt auf die Sieben und gewinnt wieder; die unheimliche Stille, die folgt, sucht er durch ein lustiges Lied („Das Leben gleicht dem Spiel") zu beseitigen. Keiner will weiter mit ihm spielen, nur der Fürst erklärt sich bereit dazu; Hermann ist verlegen. Als er sein Aß aufdeckt, erscheint der Geist der Gräfin; im Wahnsinn zieht er den Dolch und ersticht sich; sterbend bittet er den Fürsten um Verzeihung.

---

## Der Prinz wider Willen.

Oper in 3 Akten von Otto Lohse, Text von Rudolf Säuberlich.

Personen: Prinz Henry von Bearn. Henry de Contatot, Offizier im Heere des Prinzen. Jean Babinet, Fähnrich. Picardeau, Maire und Gastwirth. Madeleine, seine Tochter. Marie, sein Mündel. Pater Freau, Abt im Benediktinerkloster. Baptiste, ein Bürger. Lenoix, Schulmeister. Ort: Eine kleine Stadt in Bearn. Zeit: 1570.

**1. Akt.** Platz im Städtchen Mauleon. Picardeau teilt den ihn umdrängenden Bürgern aus einem Briefe mit, daß der Prinz die Stadt besuchen wolle, um zu sehen, ob die Papisten die Kalvinisten auch nicht bedrängten. Pater Freau wird von den meist kalvinistischen Bürgern verhöhnt, daß die Macht der Klerisei nun vorüber wäre. Picardeau verweist es ihnen und liest weiter, daß der Prinz incognito kommen würde, was den guten Leuten viel Kopfzerbrechen macht, da sie nun nicht wissen, wie sie ihn anreden sollen. Baptiste meint, in solchem Falle müsse man ihn „Henry Cognito" nennen, und Picardeau läßt ein Bild aus seiner Wohnung holen, das den Prinzen als Kind darstellt und sehr ähnlich sein soll. Es wird genau beschrieben und besehen; alle meinen, daß sie ihn nun bestimmt erkennen werden, und rüsten sich zum Empfange (Chor: „Wir wollen schon schaffen"). Pater Freau bleibt allein zurück und schilt heftig auf die „Ketzer". Seine Laune ist heute ganz besonders schlecht, denn er hat die Nachricht erhalten, daß der Chevalier de Contatot nicht, wie es erst hieß, gefallen sei, vielmehr dieser Tage eintreffen werde, um die ihm vermachten Güter seines Onkels, des Herrn v. Broquet, die das Kloster schon als gute Beute betrachtet hatte, in Besitz zu nehmen. Seine Sache ist es nun, zu erforschen, ob Contatot wirklich das Testament erhalten hat, um es ihm wieder abzujagen; für alle Fälle hat

man ihm sogar ein „Schlafpulver" mitgeschickt. Nachdenklich geht er ab. Aus dem Wirtshause tritt Marie, des Wirts Mündel und klagt („Seit er Abschied nahm"), daß ihr Liebster, der Fähnrich Jean Badinet, ihr keine Nachricht gebe. Da kommt er aber schon um die Ecke und stürzt in ihre Arme (Duett: „Wie soll mein Herz"). Sie hat schlimme Tage durchgemacht. Des verstorbenen Herrn v. Broquet Haushofmeister wurde eines Tages blutend im Walde aufgefunden und in ihr Haus gebracht. Er konnte nur noch einige Worte: „Testament — Broquets Neffe" stammeln, dann starb er. Jean will die Botschaft sofort seinem Herrn Contatot bringen und begütigt ihre Schmollen darüber (Arie: „Auch wenn's in ihren Augen grollt"). Da kommt Contatot selbst schon an und begrüßt seine Heimat (Arie: „Wie sind' ich dich wieder"). Jean berichtet ihm das eben Gehörte und Contatot erwidert, daß der Clerus die Güter in Besitz genommen habe und schon dafür sorgen werde, daß das Testament verschwunden bleibe. Er will in Flandern Kriegsdienste nehmen (Duett: „Soldatenblut und Jugendmut"). — Madeleine tritt auf (Lied: „Der Vater meint"), und begrüßt ihren alten Jugendfreund Jean herzlich; sie bringt ihm und Contatot Wein (Quartett: „Berauschend Feuer"). — Inzwischen kommt der Festzug der Bürger und begrüßt Henry Contatot als vermeintlichen Prinzen („Herr Incognito"). Contatot, der rasch eine Neigung für Madeleine gefaßt hat, geht darauf ein und läßt sich die Huldigungen gefallen.

**2. Akt.** Garten. Marie und Madeleine spinnen (Duett: „Surre, mein Rädchen") und necken sich mit ihren Liebsten. Picardeau hört, daß Marie es mit Jean hält und will davon nichts wissen, da Jean ihm nicht gesetzt genug ist. In Wahrheit hat er selbst es auf sein Mündel abgesehen, während Madeleine diese Verbindung auf alle Fälle verhindern will. Als alle weg sind, erscheint der Prinz (Arie: „Schön war sie"). Er hat Madeleine einmal gesehen und will sie wiedersehen. Picardeau gegenüber giebt er sich für den Sekretär des Prinzen aus und will über das Testament Nachforschungen anstellen; als er aber nichts herausbekommt, giebt er sich als der Prinz selbst zu erkennen. Natürlich glaubt ihm Picardeau nicht und zeigt ihm „Herrn Cognito" als den richtigen Prinzen. — Madeleine mit Contatot treten auf. Sie bittet um seine Vermittelung in Maries Angelegenheit bei Picardeau, was ihm als Prinzen ja nicht schwer sein könne. Er erklärt, daß er garnicht der Prinz sei, findet aber keinen Glauben (Duett: „Ja, er steckt voll Schelmerei"). Doch will er thun, was er kann, bittet aber auch um ihre Vermittelung bei seiner Herzensangelegenheit. Als sie merkt, worum es sich handelt, glaubt sie, daß er sie verspotten will, er überzeugt sie aber von seiner ernstlichen Absicht, auch daß

er wirklich nicht der Prinz sei, und vollständig einig gehen sie ab. Picardeau stellt Marie nach und wird von Jean dabei belauscht, auch Pater Freau schleicht sich heran, um sie über die letzten Worte des verstorbenen Haushofmeisters auszufragen („Hier im Garten muß sie sein"). Jean verkleidet sich als Gespenst, um den Alten zu erschrecken, und der Prinz, der Contatot mit Madeleine belauscht hat, erregt dessen Eifersucht, da Contatot ihn in der Dunkelheit nicht erkennt (Terzett: „Ein Kuß ist bald ersetzt"). Beide fechten, endlich erkennt Contatot den Prinzen und bittet ihn um Verzeihung. Beide hüllen sich gleichfalls in weiße Laken. Picardeau ist aus Angst vor Jean in einen Sumpf geflüchtet und kommt ganz beschmutzt an, auch Pater Freau flüchtet vor den ihn verfolgenden weißen Gestalten. Die Nachbarn kommen zusammengelaufen, der Prinz giebt allerlei Erklärungen, hält aber sein Incognito aufrecht, wobei Contatot ihn unterstützt (Sextett: „Nun hab' ich selber mich bekannt").

**3. Akt.** Platz, wie im 1. Akte. Grollend hat Picardeau dem Wunsche des angeblichen Prinzen in die Heirat Maries mit Jean eingewilligt (Chor der Hochzeitsbitter: „Wir gratulieren"). Marie dankt Madeleine für ihre Hilfe; Madeleine ist sehr unglücklich, da sie nun doch überzeugt ist, daß der angebliche Prinz mit ihr ein falsches Spiel treibt („Alles war Trug und Lüge"). Der wirkliche Prinz klärt sie über alles auf, bittet sie aber, bis morgen sein Geheimnis noch wahren zu wollen (Quartett: „Darum schweigen"). — Picardeau hat keinen Hochzeitsrock, da der seinige ganz verdorben ist, und zieht den Staatsrock des verstorbenen Haushofmeisters, der ihm viel zu eng ist und zerreißt. Er giebt ihn ärgerlich den Mädchen, und diese finden im Futter das gesuchte Testament. Allgemeines Staunen und Frohlocken. — Der Hochzeitszug ordnet sich, und alle ziehen in die Kirche. Nur der Prinz bleibt zurück (Arie: „Weihevolle, ernste Töne) und wird vom Pater Freau, der ihn noch für Contatot hält, belehrt, daß das Testament keinen Wert habe. Während beide trinken, schüttet der Pater ihm Pulver in den Becher, aber Contatot, der eben aus der Kirche kommt, hat dies gesehen und teilt es dem Prinzen mit. Pater Freau bittet um Gnade, muß aber selbst den Becher austrinken, der zu seinem Glücke wirklich nur ein Schlafpulver enthält, was sofort wirkt. Der Heirat zwischen Madeleine und Contatot steht nun auch nichts mehr im Wege und nach dem Chore „Geborgen von Sorgen" fällt der Vorhang.

# Ratbold.

Oper in 1 Akte von Reinhold Becker. Text von Felix Dahn.

Personen: Frau Wiarda, Schifferswitwe = Mezzosopran. Ratbold = Bariton, u. Uwe = Tenor, ihre Söhne. Atta, Uwes Braut = Sopran. Der Strandwart = Baß. Ort: Friesische Nordseeküste. Zeit: Gegenwart.

Vor der Hütte Wiardas am Strande. Die Einwohner des Dorfes eilen einem einfahrenden Schiffe entgegen und begrüßen ihre zurückkehrenden Angehörigen. Wiarda trauert um ihren seit 4 Jahren verschollenen Sohn Uwe; Atta muß ihr das schottische Volkslied „Der treue Johnie" singen. Auch sie bewahrt ihm Treue und will nie ihre Hand einem andern reichen (Lied: „Wie weilet so fern"). Der düstere Ratbold tritt zu ihr und wiederholt seine Werbungen, die sie schon so oft zurückgewiesen hat. Als er auch jetzt keine Erhörung findet, dringt er ganz außer sich auf sie ein, sie stößt ihn zurück (Duett: „O bittre Qualen!"). Auf dem Meere will er seinen Schmerz zu vergessen suchen, während ein heftiger Gewittersturm im Anzuge ist. Der Strandwart hält von seinem erhöhten Platze aus Umschau (Lied: „Der Strandwart hält viel schwere Wacht") und entdeckt bald ein Schiff, das schwer mit dem Sturme ringt; nur ein Mann klammert sich auf dem Deck noch fest, die andern sind bereits hinabgespült. Entsetzt sehen die Dorfbewohner zu: es ist nicht möglich, noch Hilfe zu bringen. Da kommt Ratbold und besteigt trotz aller Mahnungen seiner Mutter und Attas sein Boot, um den Unglücklichen zu retten. Unter inbrünstigen Gebeten der Zurückbleibenden vollbringt er das Rettungswerk und trägt den bewußtlosen Schiffbrüchigen auf den Strand: es ist sein Bruder Uwe. Während dieser wieder zu sich kommt und von den Seinigen stürmisch begrüßt wird, steht Ratbold finster beiseite (Ensemble: „Vorüber sind die Leidenstage") und weist Uwes Dank zurück. Ihn peinigen Gewissensqualen, denn er hat Uwe, um ihn zu beseitigen, zu der gefährlichen Reise veranlaßt, und als er in dem Schiffbrüchigen seinen Bruder erkannte, hat er einen Augenblick daran gedacht, ihm ein nasses Grab zu bereiten. Er hat das böse Gelüst besiegt, kann aber nicht mehr unter Menschen weilen, besteigt sein Boot und fährt in die stürmische See hinaus.

## William Ratcliff.

Oper in 4 Akten von Pietro Mascagni, Dichtung nach Maffeis Uebersetzung des gleichnamigen Heineschen Dramas, deutsch bearbeitet von Emil Taubert.

Personen: Mac-Gregor, schottischer Edelmann = Baß. Maria seine Tochter = Sopran Graf Douglas, ihr Bräutigam = Bariton William Ratcliff = Tenor. Leslie, sein Freund = Tenor. Margarethe Marias Amme = Mezzosopran. Tom, Inhaber einer Diebesherberge = Baß. Willie, sein Sohn = Sopran. Ort: Schottland. Zeit: um 1820.

**1. Akt.** Die an Starrsucht leidende, halbtolle Margarethe singt die alte schottische Ballade von Edward, während Mac-Gregor die Hände Marias und ihres Verlobten Douglas in einander legt. Auf die Frage des Grafen nach der Alten antwortet Mac-Gregor ausweichend und erklärt, er könne sie trotz ihres wunderlichen Wesens nicht aus dem Hause schicken. Auf Marias Frage nach seinen Reisen u. s. w. erzählt ihr Douglas von dem üppigen, schwelgerischen Leben in London, von den Londoner Bettlern, Verbrechern u. a. Auf der Reise zur Heimat war er, als er nachts allein im Walde ritt, von drei Strolchen angefallen worden; er wäre der Uebermacht erlegen, wenn ihm nicht ein Unbekannter zu Hilfe gekommen wäre. Der Retter entzog sich jedoch jedem Danke und ritt rasch davon. Maria ist während der Erzählung blaß geworden und in Ohnmacht gefallen, die Alte murmelt wieder tolle Sprüche („Püppchen, Du kleine") und wird von Mac-Gregor streng zurechtgewiesen. Als die Frauen gegangen sind, erklärt Mac-Gregor seinem Schwiegersohne den Grund von Marias leicht erregter Phantasie. Ein Student aus Edinburg, Namens William Ratcliff, hatte sie mit Liebesanträgen verfolgt, war aber von ihr abgewiesen worden. Zweimal war sie seitdem verlobt gewesen, und beide Male war kurz vor der Hochzeit der Verlobte am Schwarzensteine tot aufgefunden worden. Der Mörder — natürlich war es Ratcliff — war, wie Maria später gestand, beide Male nachts darauf, zu ihr ins Fenster gestiegen und hatte ihr die Verlobungsringe, die er den Getödteten abgenommen hatte, mit einer zierlichen Verbeugung überreicht. Douglas brennt vor Verlangen, sich mit dem Mörder zu messen, und sein Wunsch wird sofort erfüllt, denn Lesley bringt ihm Ratcliffs Herausforderung, und er sagt zu, am Schwarzenstein zu erscheinen.

**2. Akt.** Diebesherberge. Ratcliff sitzt brütend in einer Ecke, während der spitzbübische Wirt sich bemüht, seinem Sohne das Vaterunser beizubringen, um, wie er Ratcliff erklärt, ihn zum guten Christen zu erziehen. Da der Knabe,

durch Ratcliffs Anblick verwirrt, fortwährend stockt, schickt der Vater ihn weg. Tom beklagt heuchlerisch sein sündhaftes Leben unter Hinweis auf mehrere schlafend umherliegende Spitzbuben, aber Ratcliff erklärt ihm, daß die Hungrigen ein Recht hätten, den Satten einen Teil ihres Ueberflusses abzunehmen. Lesley erscheint und richtet die Botschaft des Grafen Douglas aus. Er ermahnt den Freund, von seiner gefährlichen Rachelust abzulassen und nach dem sicheren London zu gehen, aber Ratcliff erzählt ihm, wie Maria ihn schnöde zurückgewiesen habe, nachdem sie vorher die Seine geworden wäre; er habe vergessen wollen und sei geflohen, aber es habe ihn wieder zurückgezogen und er habe geschworen, daß er jeden Verlobten Marias töten werde. Die Geister der Erschlagenen erscheinen ihm, und von Entsetzen gepackt, eilt er davon, da die Stunde des Zweikampfes gekommen ist. Der Wirt stiehlt seinen schlafenden Gästen rasch noch das Geld aus der Tasche, und diese — erwacht — ziehen aus, um einen gefangenen Freund auf seinem letzten Wege zu begleiten.

**3. Akt.** Wilde Gegend am Schwarzenstein. Ratcliff tritt auf, grübelt über sein Schicksal nach und erhitzt seine Phantasie noch mehr durch den Gedanken, daß Douglas vielleicht jetzt gerade Maria küssen werde. Douglas erscheint und erkennt in Ratcliff seinen Lebensretter wieder. Er bittet um seine Freundschaft, als er aber erfährt, wen er vor sich hat, stellt er sich ritterlich zum Kampfe. Ratcliff kämpft tapfer, aber die Geister der Erschlagenen lähmen seinen Arm und besiegt fällt er zu Boden. Douglas verzichtet großmütig darauf, ihn zu töten, und meint, daß sie jetzt quitt seien. Ratcliff bleibt allein zurück; wutschnaubend schwört er furchtbare Rache und stürzt, wie von Furien verfolgt, fort.

**4. Akt.** Mac-Gregors Schloß. Die Trauung steht bevor, aber Maria wird von bösen Ahnungen gepeinigt. Sie gesteht der alten Margarete, daß sie Douglas nur achtet, nicht liebt, und die Amme sagt es ihr auf den Kopf zu, daß sie Ratcliffs Bild noch im Herzen trage, ebenso wie es ihre Mutter gemacht habe. Auf Marias verwunderte Frage erzählt die Alte ihr folgendes: Marias Mutter hatte Edward Ratcliff, Williams Vater, geliebt, aber als er sie einst beim Gesange der Ballade „Was ist vom Blut dein Schwert so rot“ überraschte und einfiel: „Ich hab' geschlagen mein Liebchen tot“, wurde sie von solchem Grauen ergriffen, daß sie ihn nicht mehr sehen wollte und Mac-Gregor heiratete. Aus Verzweiflung nahm auch Edward eine ungeliebte Frau, aber noch nach Jahr und Tag umschlich er Mac-Gregors Schloß, um die Geliebte zu sehen. Dabei wurde er einst von Mac-

Gregor überrascht und niedergestochen. Marias Mutter starb vor Schreck nach wenigen Tagen, und Margarete, die einzige Mitwisserin, wurde darüber halb wahnsinnig. Während Maria noch ganz starr dasitzt, stürzt Ratcliff bleich und blutend hinein. Sie überwindet ihren Abscheu vor dem Mörder und verbindet seine Wunde mit ihrem Brautschleier; um ihn zu beruhigen, küßt sie sein Auge, und ergriffen stürzt er ihr zu Füßen. Da schrickt sie auf, Entsetzen packt sie über das was sie gethan, und sie sich weigert, will er sie töten, daß sie ihn begleite; als sie sich weigert, will er sie töten, sie flieht in ein Nebengemach, er eilt ihr nach und stößt ihr das Schwert ins Herz. Die wahnsinnige Alte murmelt dazu ihr Lied: „Mein Liebchen hab' ich geschlagen tot!" Der auf den Lärm herbeieilende Mac-Gregor wirft sich dem Mörder entgegen, fällt aber von Ratcliffs Hand, dann eilt dieser ins Nebenzimmer und erschießt sich über Marias Leiche. Die herbeistürzenden Gäste und Diener erfahren von Margarete den Hergang.

---

## Regina, oder „Die Marodeure".

Romantische Oper in 3 Akten von Albert Lortzing.
Umarbeitung des Textes von Adolf L'Arronge.

**Personen:** Jobst Zadeck, herrschaftlicher Verwalter = Baß. Regina, seine Tochter = Sopran. Reinhard, Gutsinspektor = Tenor. Wolfram, Waldhüter = Bariton. Steffen Balder = Tenor. Lise = Sopan, beide in Zadecks Diensten. Barbara, Steffens Mutter = Mezzosopran. Ruprecht, ein Landstreicher = Baß. — Ort: Das Hirschberger Thal in Schlesien. Zeit: Ende August 1813.

**1. Akt.** Platz vor dem herrschaftlichen Schlosse. Die Feldarbeiter, die lange keinen Lohn bekommen haben, weigern sich weiterzuarbeiten; Steffen sucht sie vergeblich zu begütigen. Reinhard kommt hinzu und erinnert sie an die Güte ihres Herrn, der stets für sie gesorgt habe, bis der Krieg es ihm unmöglich machte. (Arie: „Denkt Eures Herrn, daß Blut geflossen") Seinem Zureden gelingt es endlich, sie zu beruhigen. Regina, die alles mit angehört hat, dankt ihm für die Vermittlung und klagt, daß der wilde Wolfram sie mit Liebesanträgen verfolge. Reinhard würde ihr gern ein Schutz sein, fürchtet aber, daß ihr Vater ihm, dem armen, elternlosen Manne, die Hand der Tochter verweigern werde, und theilt ihre froheren Hoffnungen nicht. Er will ihn heute noch fragen, wenn er von seiner Reise zurückkehrt, und dann in den Krieg ziehen. (Duett: „Es klopft mein liebend Herz".) Zadeck erscheint und berichtet unter großem Jubel von einem Siege der

Preußen; erfreut über Reinhards erfolgreiche Thätigkeit legt er die Hände beider Liebenden ineinander. (Quintett „O Freudentag"!) Wolfram tritt auf und klagt, daß er, der Zadeck, einst vom Tode gerettet habe, nun mit leeren Worten abgespeist werde. Er will sich rächen und Regina nötigenfalls mit Gewalt zwingen, die Seine zu werden. (Arie: „In Armut auferzogen".) — Die Landleute, die inzwischen von Zadeck ihren Lohn erhalten haben, veranstalten einen Tanz, da meldet Steffen, daß ein Haufen bewaffneter Männer im Walde umherschlichen. Seine Warnung wird von Zadeck nicht beachtet, aber plötzlich brechen die Marodeure hervor und verlangen Geld. Wolfram zeigt, daß er über sie Macht hat und erklärt Zadeck, daß er ihn zum zweiten Male retten würde, wenn er ihm seine Tochter zum Weibe gäbe. (Ensemble: „Entsetzen und Schrecken".) Als Zadeck sich weigert, entspinnt sich ein Kampf, die Bauern werden von der Uebermacht zurückgedrängt, die Marodeure zünden das Schloß an und plündern es, Wolfram reißt Regina mit sich, Reinhard sinkt verwundet zu Boden.

**2. Akt.** Bauernhütte, in der Mitte durch ein Wand geteilt. Barbara singt ein Lied („Früh am Morgen"); in ihre Hütte dringt Wolfram mit den Marodeuren und fordert Barbara unter Drohungen auf, für Regina zu sorgen. Den flehentlichen Bitten des Mädchens gegenüber bleibt er taub. (Arie: „Von einer lieben Mutter auferzogen") und droht ihr mit Gewalt, wenn sie nicht freiwillig Reinhard entsage. Die Marodeure müssen das Haus und seine Bewohner bewachen, er selbst geht weg, um einen sicheren Platz für seine Beute zu suchen. Inzwischen hat Steffen, den Zadeck seiner Tochter nachgesandt hat, einen Plan zur Flucht entworfen. Die Marodeure haben sich an dem geraubten Wein gütlich gethan und ziehen sich vor einem heraufziehenden Gewitter ins Haus zurück, (Chor: „Der Teufel halt' das länger aus"), Steffen schenkt ihnen fleißig ein (Lied: „Was ist das Beste auf der Welt") und als alle trunken hingetaumelt sind, verläßt er mit den Frauen das Haus.

**3. Akt.** Freie Gegend. Eine Schaar Freiwilliger tritt auf (Chor: „Ertönet, Jubellieder"; Zadeck irrt umher und sucht seine Tochter, auch Reinhard tritt hinzu und bittet die Leute, ihm beizustehen, den Räuber zu bestrafen. Da kommt Steffen angekeucht und erzählt, daß Wolfram ihn auf der Flucht mit den Frauen getroffen und Regina wiederum geraubt habe. Den Ort, wo er sie hingebracht hat, kennt er, es ist eine einsame verfallene Burg im Walde; alle folgen ihm sofort nach.

Verwandlung: **Burgruine.** Wolfram macht den

Marodeuren Vorwürfe: daß sie nicht besser aufgepaßt haben und Steffen haben entwischen lassen. Da meldet Ruprecht, daß eine Schaar Bewaffneter mit Reinhard an der Spitze sich nähern. Regina jubelt auf, aber Wolfram bedeutet sie, daß er den alten Turm, der eine Menge Pulver berge, im Notfalle in die Luft sprengen werde, damit sie wenigstens nicht lebend in die Hände seines Nebenbuhlers fiele. Draußen beginnt der Kampf und zieht sich immer näher, Regina ist allein geblieben. (Arie: „Es nahet der Entscheidung Augenblick.") Im Glauben, daß die Räuber gesiegt hätten, ergreift sie die Fackel und will schon den Turm in die Luft sprengen, als sie Reinhards Stimme zu vernehmen glaubt. Wolfram kehrt fliehend zurück, und da er seine Rache nicht hat befriedigen können, stürzt er mit der Fackel auf den Thurm zu. Regina ergreift sein Gewehr und schießt ihn nieder, zu gleicher Zeit dringen ihre Befreier von allen Seiten ein. Im Turme finden sie den aus dem Schlosse geraubten Silberschatz und übergeben ihn Zadeck. Draußen zieht die schlesische Armee vorüber. Schlußchor: „Hoch unser Heer!"

---

## Das Unmöglichste von Allem.

Komische Oper in 3 Akten und einem Vorspiele von Anton Ursprung, Text nach Lope de Vega's Komödie „El major imposibile".

Personen: Die Königin. Roberto, Edelmann. Diana, seine Schwester. Celia, ihre Zofe. Lisardo, Rat der Königin. Ramon, sein Diener. Fulgencio. Robertos Haushofmeister. Perdillo. Catarina; beide in Robertos Diensten. Ort: Um und in Madrid. Zeit: Mitte des 17. Jahrhunderts.

**Vorspiel.** Das Innere eines Zeltes in einem Lager. Die Königin entläßt nach dem siegreich beendeten Kriege ihr Heer und ermahnt die Ritter, jetzt Herzenseroberungen zu machen. Als Roberto meint, daß die Väter, Brüder und Gatten den Sieg nicht leicht machen würden, erwidert sie, kein Weib, das sich selbst bewahre, könne von einem Manne erobert werden, aber ein Liebe begehrendes Weib zu behüten, sei das Unmöglichste von Allem. Roberto bestreitet dies in Bezug auf seine Schwester Diana, die trotz aller Liebeskünste und -Listen uneinnehmbar bleiben werde. Die Wette wird angenommen, und Lisardo, der Diana garnicht kennt, macht sich trotzdem anheischig, sie zu einer bestimmten Frist zu gewinnen.

**1. Akt.** Zimmer bei Roberto. Dieser verspricht seinen alten Haushofmeister Fulgencio, der die junge Celia heiraten möchte, dabei behilflich zu sein, wenn er Diana auf Schritt und Tritt bewachen wolle. Der verliebte Alte, der seiner Sache

bei Cecilia sicher zu sein glaubt, rühmt seine Schlauheit („Herr, ich hab' mich vorgesehn.") und unterrichtet dann auch Robertos Dienstleute Pedrillo und Catarina, wie sie sich etwa eindringenden Bewerbern gegenüber zu verhalten hätten. Diese begreifen ihn so gut, daß sie seine Vorschriften in sehr fühlbarer Weise gleich an ihm erproben. (Duett: „Ist es so gut?") — Diana klagt, daß sie ihres Bruders Herz verloren habe, da er kaum noch mit ihr spreche und unfreundlich zu ihr sei. („O laß' mich weinen"). Celia verspricht ihr, den Grund zu erforschen, wozu ihr der verliebte Fulgencio verhelfen soll. („Daß Männergrillen"). Während Diana sich hinter einer Tapete verbirgt, geht sie gleich ans Werk und weiß den Alten durch ihre Zärtlichkeit so kirre zu machen, („Duett: „Das Geheimnis ihr zu sagen") daß er ihr die ganze Geschichte mit der Wette verrät. — Diana, die Alles gehört hat, beschließt, ihrem Bruder ein Schnippchen zu schlagen; („Wer in aller Welt") sie kennt Lisardo nicht, hofft aber, daß er ihren Erwartungen entsprechen werde. Inzwischen hat Lisardo nicht geruht. Sein verschlagener Diener Ramon erscheint bei Diana als französischer Kaufmann und bietet ihr seine Waren an. Er weiß die Wachsamkeit des herumschnüffelnden Fulgencio zu täuschen und steckt ihr listig Lisardos Bild zu. Während Celia die Aufmerksamkeit des Alten ablenkt, giebt Diana Ramon auch ihr Bildnis und gestattet ihm, wiederzukommen. (Quartett: „So möge bis zu 1000 Jahr"). — Die Königin zieht mit dem Heere in die Stadt, und alles eilt an die Fenster. Fulgencio sucht Diana vergeblich daran zu hindern, („O geht nicht ans Fenster!") und bald hat sie Lisardo im Gefolge der Königin erkannt. Roberto hat ihren Gruß bemerkt und kommt zornig in das Zimmer. („Welche Schmach!") Er findet Lisardos Bild und schmäht seine Schwester mit harten Worten. Celia erklärt, sie habe das Bild gefunden, und da dessen Verlust zugleich auf der Straße ausgerufen wird — natürlich hat Celia dies rasch ins Werk gesetzt — ist Roberto beruhigt und bittet seine Schwester um Verzeihung. (Quartett: „Heute gings noch glimpflich.")

**2. Akt.** Saal bei Hofe. Lisardo berichtet der Königin von seinen bisherigen Erfolgen. („Dürft' dem Engelantlitz nahen"). Ramon hat schon wieder neue Pläne ausgeheckt. Er will Roberto als Abgesandter von dessen Vetter, auf den er sehr stolz ist, edle Pferde zum Geschenke bringen und als Stallknecht bei ihnen bleiben; so hofft er, auch Lisardo Eintritt zu verschaffen. — Roberto ist des Aufpassens müde und will Diana dem albernen Feniso, der sie schon lange liebt, vermählen; er versichert der Königin, daß sie ihm gehorchen werde. Die Königin läßt Lisardo holen, teilt ihm dies mit, erinnert ihn daran, daß die festgesetzte Frist bald abgelaufen sei, und befiehlt

ihm, die Vorbereitungen für die Verlobung zu treffen. Lisardo erschrickt heftig. (Quintett: „Herr, ihr geht auf Freiersfüßen".)

Verwandlung. Garten bei Roberto mit anstoßendem Hofraume. Ramon übergiebt als Abgesandter des vornehmen Vetters einen Brief, und während Roberto ihn liest, giebt er Diana, die ihn gleich erkannt hat, ein Kästchen, das angeblich Schmucksachen vom Vetter, in Wahrheit aber einen Brief von Lisardo enthält, worin dieser um ein Liebeszeichen bittet. Roberto geht weg, indem er die Pferde bewundert, („Die Rosse schau'!") und so findet Ramon nicht nur Zeit, die Antwort gleich entgegenzu-Kofferträger Lisardo sei. Diesem gelingt es durch eine List Ramons, sich ungesehen zu verbergen, um einen günstigen Augenblick abzupassen. — Roberto teilt seiner Schwester mit, daß sie Fenisо heiraten solle; sie weigert sich, und als in demselben Augenblicke Fenisо selbst erscheint und ihr zu Füßen sinkt, hat sie nur spöttische Worte für ihn. Der alberne Mensch glaubt lauter Komplimente zu hören, wird aber in seinen weiteren Werbungen durch eine Anzahl Sänger unterbrochen, die auf Dianas Veranlassung erschienen sind und ein von ihr veranlaßtes Lied singen, das ihre eigene Lage kennzeichnet. („Hochgepriesen sei die Mutter"). Roberto zürnt ihr wegen ihres Benehmens und geht mit Fenisо, der sich ganz als glücklicher Bräutigam fühlt, ab. — Diana trifft im dunklen Garten mit Lisardo zusammen; (Liebesduett: „Hallen, Lauben") Ramon hält sich inzwischen an Celia schadlos. Da Lisardo keinen andern Rückweg hat, muß er List und Gewalt anwenden. Celia lockt Fulgencio von der Gartenpforte weg, und der vermummte Lisardo erzwingt sich mit der gespannten Pistole von den zitternden Dienern den Ausweg. Roberto kommt zu spät und beschuldigt seine Schwester, einen Buhlen in ihrem Schlafgemach gehabt zu haben. Sie will in ein Kloster gehen (Sextett: „Schenkt ihr Frieden, stille Mauern?"), Roberto willigt ein.

**3. Akt.** Zimmer bei Roberto. Die Dienerschaft ist noch ganz voll von dem nächtlichen Abenteuer. Diana, jetzt doppelt streng bewacht, beklagt ihr Loos und verzweifelt an einem günstigen Ausgange. („Sinkt ihr nieder, Hoffnungssterne?") Von draußen her tönt Lisardos Stimme, („Senke, Nacht, nun dichte Schleier") gleich darauf hört man Ramons Hilferufe. Wankend kommt er ins Zimmer und stellt sich todkrank. Catarina wird zu einem Arzte gesandt, den Pedrillo schickt Fulgencio in der Aussicht, als Erbe des Sterbenden eingesetzt zu werden, zum Notar, er selbst soll einen Priester holen, weigert sich aber. So muß denn Ramon ihm selbst beichten. („Hab' den größten Narr'n im Lande"). Währenddessen schleichen die Frauen da-

von, und auch Ramon springt plötzlich ganz gesund auf und macht, daß er wegkommt.

Verwandlung: Straße; es ist Nacht. Die Flüchtlinge treffen mit Lisardo zusammen und erzählen ihm, wie sie entkommen sind. Plötzlich stehen sie Roberto und Fenisо gegenüber. Lisardo wird erkannt und lügt ihnen betreffs der Damen etwas vor; die Umstände bringen es mit sich, daß Roberto selbst seine Schwester in Lisardos Haus geleitet.

Verwandlung. Saal bei Hofe. Die zur Wette gestellte Frist ist abgelaufen und die Königin hat ihren Hofstaat um sich versammelt, nur Roberto und Diana vermißt sie. Endlich erscheint Roberto, der die Wette gewonnen zu haben erklärt, da Diana nur den von ihm gewählten Mann heiraten werde. Da stürzt Fulgencio in den Saal, erzählt, daß Diana geflohen sei, und erkennt Ramon als Helfer sofort wieder. Roberto durchschaut rasch das ganze Ränkespiel und fordert Lisardo wütend zum Kampfe heraus. Dieser aber rechtfertigt sich und erklärt, daß Diana sich in der sicheren Hut der Königin befinde. Diana wird gerufen, und da die Königin selbst entscheidet, daß Roberto die Wette verloren habe, bleibt diesem nichts übrig, als sich zu fügen. Ramon und Celia werden gleichfalls ein glückliches Paar und bestätigen auch ihrerseits die Wahrheit des Spruches: Eine Frau, die liebt, zu hüten, ist das Unmöglichste von Allem.

---

## Die versunkene Glocke.

Musikdrama in 5 Akten von Heinrich Zoellner. Text nach dem gleichnamigen Märchendrama Gerhart Hauptmanns vom Komponisten.

Personen: Heinrich, ein Glockengießer = Bariton. Magda, sein Weib = Sopran. Kinder beider = Mezzosoprane. Der Pfarrer = Tenor. Der Schulmeister = Baß. Der Barbier = Baß-Bariton. Die alte Wittichen = Alt. Rautendelein = Sopran. Der Nickelmann = Baß. Waldschrat = Tenor-Buffo. Ort: Riesengebirge.

**1. Akt.** Bergwiese mit einer Baude. — Rautendelein sitzt auf dem Rande eines Ziehbrunnens, aus dem bald der Nickelmann auftaucht. Der hinzukommende Waldschratt erzählt, daß er die Glocke, die in der neuen Gebirgskapelle aufgehangen werden sollte, in den Abgrund gestürzt hat. Nun erscheint Heinrich, der sich nach diesem Unglück verstiegen hat und vor dem Häuschen ohnmächtig zusammenbricht. Die alte Wittichen findet ihn und holt Rautendelein herbei. Heinrich erwacht und entbrennt in heißer Liebe zu dieser. Als Pfarrer, Schulmeister und Barbier dem verirrten Glocken-

gießer zu Hilfe kommen wollen, zieht sie einen Zauberkreis, um ihn, den die Wittichen erst wieder entfernen muß, damit Heinrich in das Thal getragen werden kann. — Elfenreigen. — Rautendelein schlägt die Anträge des Nickelmanns aus und flieht in das Menschenland.

**2. Akt.** Altdeutscher Wohnraum im Hause des Glockengießers. — Die Nachbarin bereitet Magda auf den Unfall Heinrichs vor. Barbier und Schulmeister tragen ihn auf einer Bahre herein. Als er aus der Bewußtlosigkeit erwacht, deutet er symbolisch seine Unzufriedenheit mit sich selbst und seinem bisherigen Leben an. Magda geht, um eine wunderthätige Frau zu holen. Rautendelein tritt ein und giebt durch ihren Zauber Heinrich neue Lebenskraft.

**3. Akt.** Verlassene Glashütte im Gebirge. — Nickelmann klagt dem Waldschratt, daß Rautendelein sich einem Menschen in Liebe zugewandt habe. Diese weist die Zudringlichkeiten der beiden zurück. Der Pfarrer versucht, Heinrich, der jetzt — bei Rautendelein im Gebirge lebt, zu Frau und Kindern zurückzurufen, wird aber abgewiesen.

**4. Akt.** Dieselbe Dekoration. Heinrich arbeitet in seiner neuen Werkstatt mit Unterstützung von 6 Zwergen. Als er sich schlafen legt, wird er im Traum von Gewissensangst befallen. Rautendelein tröstet ihn. — Elfenchor. — Die Menschen aus Heinrichs Heimatsdorf ziehen heran, um den „Ehebrecher, Kirchenschänder" zu steinigen, werden aber von ihm verjagt. Nun glaubt er zwei Kinder zu sehen, die ein Krüglein schleppen. Als sie nahe sind, wähnt er in ihnen seine Kinder, die ihm die Thränen seines aus Gram gestorbenen Weibes bringen. Von Reue gepackt, verläßt er Rautendelein, um zu den Menschen zurückzukehren.

**5. Akt.** Dekoration wie im ersten Akt. Rautendelein hat sich dem Nickelmann ergeben. Heinrich, der das von ihm gebaute Werk in Flammen aufgehen sieht, versucht noch einmal in die Höhe zu dringen. Er findet aber den Weg nicht mehr und sinkt erschöpft am Brunnenrande nieder. Noch einmal schließt er Rautendelein in die Arme, dann stirbt er.

## Der Vicomte von Letorières.

Komische Oper in 3 Akten von Bogumil Zepler. Text nach dem gleichnamigen Bayard-Blum'schen Lustspiel von Emil Taubert.

Personen: Der Prinz von Soubise = Bariton. Prinzessin von Soubise = Mezzosopran. Desperières = Baß. Veronika, seine Schwester = Alt. Baron Tibull – Tenor. Hermine, seine Schwester = Sopran. Joseph, Vicomte von Letorières = Tenor. Pomponius = Bariton. Grevin = Tenor. Marianne, seine Frau = Sopran. Polizeileutnant = Tenor. Zwei Soldaten = Baß. Ort: Paris und Schloß des Prinzen von Soubise. Zeit: zweites Drittel des vorigen Jahrhunderts.
Hamburg 1899.

**1. Akt.** Mit Hilfe eines Hofmeisters Pomponius hat Joseph Vicomte von Letorières die Schule verlassen, um sich mit seiner Geliebten Hermine zu vereinen. Bei seinem Auftreten singt er das Regenlied. Deshalb hat ihn sein Oheim enterbt und Tibull, Herminens Bruder, zum Erben eingesetzt. Dieser hat nun einen Haftbefehl gegen Joseph erwirkt, wird aber selbst verhaftet, da dieser ihn vor der Polizei als den Vicomte von Letorières bezeichnet. Joseph geht zum Gericht, um den Prozeß zu seinen Gunsten zu wenden.

**2. Akt.** Arbeitszimmer bei Desperières in Chatou. Tibull und der Vicomte kommen zum Parlamentsrat Desperières, jeder, um ihn zu seinen Gunsten zu stimmen. Der Vicomte gewinnt Desperières' Schwester und ihn selbst durch Schmeichelei für sich. Als er allein bleibt („Hermine, nur für Dich, für Dich") entdeckt er Desperières Geheimnis im Bücherschrank: Wein hinter den Pappdeckeln. Marianne glaubt Desperières allein, schleicht sich hinzu und verrät den Alten dem Vicomte „Kunde seit Jahren ist uns der Alte" und „Vor Jahren war's, da träumte mir"). Pomponius und er Vicomte verstecken sich, um Desperières bei seinem Gelage zu überraschen. Marianne kommt auf das verabredete Zeichen mit den Mädchen herein. Der Vicomte sich trunken stellend, ebenfalls. Durch den Lärm erwacht Veronica. Der Vicomte gewinnt alle für sich und überredet Desperières, zu seinen Gunsten zu stimmen.

**3. Akt.** Park des Marschalls Soubise. Gavotte der Gäste („In des Parkes geheimem Wehen"). Marianne bringt den verwundeten Vicomte, in den sich die Prinzessin verliebt und ihm helfen will. Als sie jedoch durch Tibull erfährt, wer der Kranke ist, zürnt sie ihm. Sie erklären sich in einem Duett ihre Liebe, („An Eurer Huld hängt mein Geschick"). Die Prinzessin, um ihn an sich zu fesseln, verheiratet ihn mit Hermine; der König segnet den Bund.

## Werther.

Lyrisches Drama in 3 Akten von J. Massenet, Text nach Goethes Roman von E. Blau, P. Millet und G. Hartmann, deutsch von Max Kolbeck.

Personen: Werther = Tenor. Albert = Bariton. Der Amtmann = Baß. Schmidt und Johann, seine Freunde = Baß und Tenor. Lotte, seine Tochter = Sopran. Sophie, deren Schwester = Mezzosopran. Brühlmann = Bariton. Käthchen = Mezzosopran. Sechs kleinere Kinder des Amtmanns. Ort: Umgegend von Wetzlar. Zeit: 1772.

**1. Akt.** Terrasse vor dem Hause des Amtsmanns. Dieser übt mit seinen sechs kleinen Kindern ein Weihnachtslied „Heilige Nacht"; sie sind unaufmerksam und singen falsch, er meint, daß sie bei Lotte aufmerksamer wären. Johann und Schmidt treten hinzu und freuen sich über den Gesang; auf ihre Frage nach Lotte berichtet Sophie, daß sie an ihrem Ballkleide nähe. Aus dem Gespräche erfährt man, daß auch Werther auf den Ball kommen werde, obwohl er immer so still in sich gekehrt und traurig sei. Die beiden Freunde gehen ins Wirtshaus und fordern den Amtmann auf, nachzukommen. Albert, Lottes Verlobter wird bald zurückerwartet; Alle rühmen ihn als tüchtigen und braven Mann. Werther nähert sich unbemerkt dem Hause; („Wie süß, zu weilen hier") von innen tönt der Gesang der Kinder heraus, gerührt denkt er an sein Kindheit. Lotte im Ballkleide erscheint, von den jubelnden Kindern umgeben — und besorgt ihnen ihr Abendbrot. Der Amtmann bemerkt Werther, ruft ihn heran und stellt ihn seiner Tochter vor; Werther bleibt, ganz in ihren Anblick versunken, stehen. Andre Ballgäste unter ihnen Bühlmann und Käthchen, ein schwärmerisches Liebespaar, versammeln sich und verlassen mit Lotte und Werther das Haus; Sophie bleibt mit dem Vater allein zurück und überredet ihn, den Freunden ins Wirtshaus zu folgen. Als er weg ist, kommt Albert von einer langen Reise zurück. Seine erste Frage an Sophie ist die nach Lotte; er freut sich, daß sie an ihn gedacht hat und zieht sich zurück, um sie am Morgen zu überraschen. Es ist Nacht geworden; Lotte kommt Arm in Arm mit Werther heran. Er hat sie nach Hause begleitet und soll sie jetzt verlassen, kann sich aber nicht losreißen, sondern macht ihr stürmische Liebeserklärungen. („Entfliehen muß die Wonne.") Sie weist ihn sanft zurück, gerät aber allmählich bei seinen stürmischen Werbungen in Verwirrung. Dann gedenkt sie gerührt der Mutter, deren letzter Wunsch die Verbindung ihrer ältesten Tochter mit Albert gewesen war, und ist erschrocken, daß sie um Werthers willen zum ersten Male ihren Eid gebrochen

habe. Werther will entsagen und nimmt verzweifelt von ihr Abschied.

**2. Akt.** Platz vor dem Wirtshause. Johann und Schmidt zechen und kümmern sich nicht um den Chorgesang, der aus der Kirche ertönt. Sie gehen ins Wirtshaus; Lotte und Albert, die seit 3 Monaten verheiratet sind, treten auf, sie erwidert seine Zärtlichkeiten mit einfacher Herzlichkeit, und beide betreten die Kirche. Werther hat sie aus der Ferne mit quälender Unruhe angesehen und bricht verzweifelt zusammen („Ein andrer ihr Gemahl!"). Albert, der aus der Kirche kommt, tritt zu ihm heran und teilt ihm mit, daß er alles wisse, alles begreife und alles vergebe. Werther dankt ihm und bittet ihn sein Freund zu sein. Sophie kommt mit einem Blumenstrauße angelaufen, (Lied: „Ganz in der Früh'") ihre Fröhlichkeit macht Werther nur noch trauriger, und Alberts versteckte Anspielungen, daß er um Sophie werben solle, bleiben unbeachtet. Eine Unterredung, die er darauf mit Lotte hat, überzeugt Werther, daß sie ihre Pflicht gegen Albert kennt und nicht von ihr abweichen will; sie weist seine Liebesbeteuerungen mit Nachdruck zurück. Um ihn zu beruhigen, ladet sie ihn jedoch zum Weihnachtsfeste ein. Werther sucht sich zu beherrschen, („Ich will mich männlich fassen") vermag aber Sophies Aufforderung, seine Pflichten als Tänzer bei einem ländlichen Feste gegen sie zu erfüllen, nicht zu entsprechen und läßt das Mädchen weinend zurück. So finden Lotte und Albert sie, und an Lottes Benehmen bei dem Gehörten erkennt ihr Mann, daß nicht alles so ist, wie es sein sollte.

**3. Akt.** Zimmer in Alberts Hause. Lotte sitzt wenige Stunden vor der Weihnachtsbescheerung an ihrem Arbeitstische. Sie weiß jetzt, daß sie Werther liebt, und liest entzückt und erschreckt zugleich von neuem seine glühenden Liebesbriefe, die mit dunklen Andeutungen von einem furchtbaren Ende schließen. Das harmlose Geplauder der eintretenden Sophie, die mit dem Auge der Liebe mehr gesehen hat, als Lotte denkt, kann sie nicht zerstreuen; die Einladung, da Albert verreist ist den Abend im Vaterhause zu verleben, nimmt sie zerstreut an — sie erwartet Werther. Als sie allein ist, bricht sie zusammen („Luft, mir ist schwül"). Da erscheint Werther, bleich und abgezehrt, an der Thüre. In langen Ausführungen sprechen sie sich aus (Lied: „Was bin ich aufgewacht?"), immer leidenschaftlicher drängt er auf sie ein, kaum vermag sie zu widerstehen. Sie leugnet es nicht, daß sie ihn liebt, kämpft aber den schweren Kampf siegreich durch, weist ihn vorwurfsvoll zurück und entflieht. Werther stürzt verzweifelt fort. Albert kehrt zurück; er merkt, daß etwas

vorgegangen ist, und Lotte kann ihre Verlegenheit nicht verbergen. Da bringt ihm ein Bote einen Brief, worin Werther ihn um seine Pistolen bittet, da er eine Reise vorhabe. Lotte ahnt seine Absicht, wagt aber nichts zu sagen; Albert zwingt sie, dem Boten die Pistolen selbst zu übergeben und verläßt zornig das Haus, auch Lotte stürzt fort, um womöglich Werther noch an seinem Vorhaben zu hindern.

Verwandlung: Werthers Zimmer. Werther liegt tötlich verwundet auf der Diele; Lotte stürzt hinein und wirft sich entsetzt über ihn. Mit den zärtlichsten Liebesworten bringt sie ihn ins Bewußtsein zurück und macht sich die heftigsten Vorwürfe, daß sie an seinem Tode schuld sei. Zum ersten und zugleich letzten Male dürfen sich beide einander hingeben (Duett: „Fort mit Hangen und Bangen"). Draußen hört man die Kinder ihr Weihnachtslied singen, und unter seinen Klängen stirbt Werther in Lottes Armen.

---

## Zanetto.

Lyrisches Drama in 1 Akte von Pietro Mascagni. Text nach „Le passant" von F. Coppée von G. Targioni-Tozzetto und G. Menasci. Eine deutsche Uebersetzung ist nicht erschienen.

**Personen:** Zanetto = Tenor; Silvia = Sopran. — **Ort:** Nähe von Florenz.

Mondlandschaft, links ein kleiner Palast. Silvia lehnt sich auf die Brüstung der Terrasse und klagt, daß sie hier in ihrer Zurückgezogenheit von Langeweile geplagt werde. Sie, die ohne Liebe nicht leben kann, hat, obwohl sie viel umschwärmt wird, niemand, den sie zu lieben vermöchte, und hat nicht einmal Thränen, die diesen Schmerz lindern könnten. Da naht sich Zanetto, der zur Laute ein zu ihrer Stimmung passendes trauriges Lied singt; aufmerksam lauscht sie und steigt die Terrasse hinab. Zanetto setzt sich, ohne sie zu sehen, auf eine Bank, um dort zu übernachten, da er in seiner ärmlichen Kleidung in keinem Gasthause Unterkunft gefunden hat. Er schläft ein; Silvia faßt ihn bei der Hand, und als er erwacht, glaubt er zu träumen. Auf seine Frage erklärt sie, daß sie ein guter Geist sei und ihm helfen wolle. Er erzählt ihr, daß er sich als fahrender Sänger nur wohl fühle, wenn er jeden Tag unter einem andern — gleichviel welchem — Dache Unterkunft finde, mit seiner Kunst gern gesehen und gut gespeist würde. Von der Liebe will er nichts wissen, da er frei bleiben möchte; woher er stammt, kann er nicht sagen. Zum ersten

Male steigt jetzt in ihm der Wunsch auf, hier zu bleiben und Silvia Schwester nennen zu dürfen. Silvia redet ihm vor, sie sei eine arme Witwe und könne ihn nicht hier behalten; er erwidert, daß er morgen in Florenz bei der bekannten Silvia vielleicht mehr Glück haben werde, wenn er ihre Schönheit in Liedern priese. Bei seiner Frage, ob sie ihn gern ziehen lasse, ist sie betroffen und warnt ihn vor der Gefahr, die ihm bei Silvia drohe. Er soll weiterziehen und im Frühjahre, wenn er irgendwo ein schönes, fleißiges Mädchen fände, bei dieser bleiben. Zanetto sieht, daß sie eifersüchtig auf Silvia ist, und will ihrem Rate folgen. Sie treibt zum Aufbruche und schenkt ihm einen schönen Ring zum Andenken; Zanetto aber, der hieraus ersieht, daß sie nicht arm sein kann, verschmäht das Almosen und bittet nur um eine Blume aus ihrer Hand. Er erhält sie und geht; Silvia blickt ihm eine Zeit lang nach, bricht dann in Thränen aus und ist glücklich, daß sie wieder weinen kann.

17.II.68

BRIGHAM YOUNG UNIVERSITY
3 1197 22086 6039

# Date Due

All library items are subject to recall at any time.

| | | |
|---|---|---|
| MAY 0 4 2006 | | |
| FEB 02 2006 | | |
| | | |
| | | |
| | | |
| | | |
| | | |
| | | |
| | | |
| | | |
| | | |
| | | |
| | | |
| | | |
| | | |
| | | |

Brigham Young University